॥ नमामि गुरु तारणम् ॥

श्री तारण तरण वीतराग जिन सिद्धांत पर आधारित
पाठ्यक्रम

ज्ञानोदय

: प्रकाशक :

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

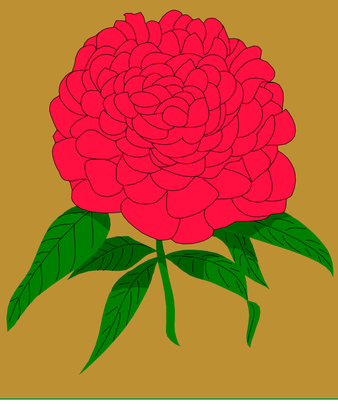

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
पाठ्यक्रम

प्रथम वर्ष (प्रवेश)

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय पाठ्यक्रम

: रचनाकार :

श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्यजी महाराज
पंडित प्रवर श्री दौलतराम जी
अध्यात्म रत्न बाल ब्र.श्री बसन्त जी महाराज

ज्ञानोदय

: प्रेरणा स्रोत :

श्रद्धेय अध्यात्म रत्न बाल ब्र.श्री बसन्त जी महाराज

: निर्देशक :

युवा साधक श्रद्धेय बाल ब्र.शांतानन्द जी

: विशिष्ट सहयोग :

युवा रत्न श्रद्धेय बाल ब्र.श्री आत्मानंद जी
आत्म साधक श्र.ब्र.श्री परमानंद जी
बाल ब्र.श्री राकेश जी

: मार्गदर्शक :

विदुषी बहिन बाल ब्र. श्री उषा जी

: संयोजन-समन्वयन :

पं.वीरेन्द्रकुमार जैन, गंजबासौदा
पं.राजेंद्रकुमार जैन, अमरपाटन
एवं समस्त तारण तरण श्रीसंघ

: अनुमोदना :

स.र.श्रीमंत सेठ डालचंद जैन *(पूर्व सांसद, सागर)*
(अध्यक्ष- अ.भा.ता.त.जैन तीर्थक्षेत्र महासभा)

: संपादक मंडल :

पं.जयचंद जैन, छिंदवाड़ा
डॉ.प्रो.उदयकुमार जैन, छिंदवाड़ा
राजेन्द्र सुमन, सिंगोड़ी *(सं.तारण ज्योति)*
डॉ.श्रीमती मनीषा जैन, छिंदवाड़ा
श्रीमती सविता जैन, छिंदवाड़ा
पं.विजय बहादुर जैन, हरपालपुर

: प्रकाशक :

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

मूल्य २००/-

प्रस्तावना

अध्यात्म सुमनों की सुरभि से साधना का उपवन सदा सुरभित होता रहा है। संतों की साधना और साहित्य इस आध्यात्मिक वसुंधरा की संस्कृति को शाश्वत पहचान देती है। साहित्य का स्वर्णकाल भक्तिमय, संतमय था। विशेष रूप से चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तो अनेक संतों द्वारा निःसृत, अनुभूत दर्शन, योग, सिद्धांतों की परिचायक है। वीतरागी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ऐसे ही संत शिरोमणि हैं। जिन्होंने स्वयं वीतराग धर्म की निश्चय साधना करते हुए शुद्धात्मानुभव रूप चौदह ग्रंथों में जैनागम का सारभूत सृजन किया है। उनकी यह वाणी स्वप्रसूत ज्ञानगंगा है, जिसने भारतीय साहित्य वाङ्मय में आध्यात्मिक परंपरा को नवीन मार्ग दिया है। रत्नराशियों की तरह आभावान यह चौदह ग्रंथ किसी जीव के मोक्षगमन में प्रेरणा बन जाये तो कोई आश्चर्य नहीं। अतः श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान ने मुक्ति प्रेरक, सहकारी इन ग्रंथों को श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम का आधार बनाया है। इस आधार की भावभूमि जैनाचार्यों की मूल परंपरा को अनुश्रुत करती है। तीर्थंकरों की दिव्य देशना, गणधरों की वाणी, आचार्यों की लिपियों ने संत पुरुषों को यह गंगधारा सौंपी है; वहीं आज घर-घर में प्रवाहित करने का लक्ष्य इस ज्ञानयज्ञ की महत्वाकांक्षा है। इक्कीसवीं सदी, भौतिकता, विदेशी संस्कृति, संस्कारों का तिरोहित होता जाना आज के समय की शोचनीय चिन्ता है। इस प्रभाव ने संसार, देश व समाज में आध्यात्मिक, धार्मिक संस्कारों को धूमिल किया है। अतः पुनः आध्यात्मिक क्रांति का शंखनाद करते हुए श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान पंचवर्षीय पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा, प्रयोग, आचरण, स्वाध्याय और प्रचार के साधन के माध्यम से जैनागम, सिद्धांत एवं आम्नाय में दक्ष करने हेतु इस कर्तव्य-रथ पर आरूढ़ है।

अखिल भारतीय तारण तरण दिगंबर जैन समाज का यह प्रथम अद्भुत चरण है। अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पूज्य श्री बसन्त जी की प्रबल प्रेरणा से ही श्रीसंघ के मार्गदर्शन में श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय का यह स्वरूप धर्मनगरी छिन्दवाड़ा में साकार हुआ है। सत्य तो यह है कि आत्मसाधक चिंतक ब्र. बसन्त जी ने आचार्य प्रवर श्री जिन तारण-तरण की दिव्य देशना को जन-जन तक पहुँचाने का विचार वर्षों से संजोया था, वह श्रीसंघ तथा विद्वत्जनों के अपूर्व सहयोग से मूर्त रूप ले रहा है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय पत्राचार माध्यम से देश, समाज के समस्त वर्गों में स्वाध्याय की रुचि जाग्रत कर, उन्हें शास्त्री की गरिमामय उपाधि से अलंकृत करेगा। समाज में प्रचलित आचरण-अध्यात्म एवं परम्परा से संबंधित समस्त भ्रांतियों का उन्मूलन कर सम्यक् आचरण का प्रयास करना भी इसका एक लक्ष्य है। आधुनिक शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से शिक्षण-प्रशिक्षण, वक्ता-श्रोता गुणों का विकास इस लक्ष्य का सहायक होगा। इस ज्ञानरथ-ज्ञानयज्ञ का महती लक्ष्य अध्यात्म जाग्रति, अध्यात्म प्रभावना, भारतीय संस्कृति की मूल मोक्षदायिनी वृत्ति का विकास करना है। संसार के समस्त जीवों में संयम,

सद्ज्ञान, सद्चारित्र जागृत हो। नैतिकता, स्वाध्याय, विनम्रता की वृत्ति का विकास हो। परंपराओं का सम्यक् आगम प्रेरित आचरण, पूज्य-पूजक विधान का ज्ञान, गुरुवाणी की प्रभावना के संस्कारों का विकास हो। मानव मात्र के जीवन में यह पाठ्य योजना आध्यात्मिक बीजारोपण कर परम आनंद में निमित्त बने। इसके लिये श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान कृत संकल्पित है। इस हेतु बहुमूल्य सुझाव भी आमंत्रित हैं।

इस पवित्र धर्म-प्रभावना-उपक्रम में पूज्य बा. ब्र. श्री बसन्त जी की प्रेरणा, श्रद्धेय बा. ब्र. श्री आत्मानंद जी, श्रद्धेय बा. ब्र. श्री शांतानंद जी, श्रद्धेय ब्र. श्री परमानंद जी, बा. ब्र. श्री अरविंद जी विदुषी बा. ब्र. बहिनश्री उषा जी, बा. ब्र. सुषमा जी, ब्र. मुन्नी बहिन जी, ब्र. आशारानी जी, बा. ब्र. संगीता जी एवं समस्त तारण तरण श्री संघ सदैव प्रथम स्मरणीय हैं। समाज के श्रेष्ठीजन, विद्वानों, चिंतकों, लेखकों तथा प्रत्यक्ष-परोक्ष तन-मन-धन से सहयोग करने वाले सदस्यों, संयोजकों तथा समस्त साधर्मी बंधुओं, प्रवेशार्थियों का भी श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान आभार व्यक्त करता है। जिनका सहयोग ही इस ज्ञानयज्ञ की सफलता है।

श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान
संचालन कार्यालय - श्री तारण भवन,
संत तारण तरण मार्ग,
छोटी बाजार, छिंदवाड़ा (म. प्र.) ४८०००१

समस्त प्रवेशार्थी पंच वर्षीय पाठ्यक्रम पूर्ण कर अपने जीवन को सम्यग्ज्ञानमय बनायें एवं समाज की गरिमा बढ़ायें इन्हीं शुभकामनाओं सहित.......

अध्यक्ष - स. र. श्रीमंत सेठ सुरेशचंद जैन, सागर	संगठन सचिव - दिलीप जैन (अधि.)छिंदवाड़ा
कार्यकारी अध्यक्ष - सिंघई ज्ञानचंद जैन, बीना	संगठन सचिव - स. से. विकास समैया, खुरई
उपाध्यक्ष - भरत जैन परासिया	संगठन सचिव- पं. विजय मोही, पिपरिया
उपाध्यक्ष - सतीश कुमार समैया, जबलपुर	प्रचार सचिव - राजेन्द्र सुमन, सिगोड़ी
उपाध्यक्ष - कैलाश जैन, अमरवाड़ा	प्रचार सचिव - तरुण कुमार गोयल, छिंदवाड़ा
उपाध्यक्ष - किशोर कुमार जैन, शिरपुर	परामर्शदाता - महेन्द्र जैन, राजनांदगांव
महासचिव - पं. जयचंद जैन, छिंदवाड़ा	परमर्शदाता - पं. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल
कोषाध्यक्ष - शांत कुमार जैन, छिंदवाड़ा	परमर्शदाता - महेश कुमार जैन, परासिया
कोषाध्यक्ष - सुभाषचंद जैन, स्टेट बैंक छिं.	परामर्शदाता - संजय जैन, धुलिया
सचिव - पं. राजेन्द्र कुमार जैन, अमरपाटन	परामर्शदाता - मोतीलाल जैन, शिरपुर
सचिव - प्रदीप जैन स्नेही, छिंदवाड़ा	परामर्शदाता - नवनीतलाल जैन, शिरपुर
सचिव - श्रीमती मीना जैन, चौपड़ा	परामर्शदाता - प्रदीप कुमार जैन, चन्द्रपुर

सम्पादकीय ...

'परोपकाराय सतां विभूतयः' सज्जनों की विभूतियों का उपयोग भी परोपकार के लिए होता है। भारतभूमि में सदियों से वीतरागी संतों ने वीतरागता पूर्वक, वीतराग भावना का पोषण किया है। इसी परम्परा में जैनागम की मूल आम्नाय को धरोहर के रूप में सौंपने वाले वीतरागी गुरुवर आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण-तरण ने भेद विज्ञान को वास्तविक ज्ञान और वीतरागता को वास्तविक चारित्र बताया है।

'दिप्त दिप्ति तं दिस्ट समु, दिप्त दिस्ट समभेउ।' अर्थात् प्रतिसमय प्रकाशित शुद्धात्म दर्शन से आत्मा, परमात्मा बन जाता है। श्री कुंदकुंदाचार्य देव ने कहा है- 'किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले। सिज्झिहहि जे वि भविया, तं जाणह सम्ममाहप्पं।' आचार्य श्री अमृतचंद्र देव भी यही समझाते हैं कि 'भेद विज्ञानतः सिद्धा सिद्धा ये किल केचन।' वास्तव में एक आत्मा ही उपादेय है, एकमात्र वही ध्येय है, ज्ञेय है, आराध्य है। यही सत्य है। अमूल्य समय रहते हुए आत्मपद प्राप्ति की इसी सीख को पंडित प्रवर दौलतराम जी कहते हैं- 'यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अब तो त्याग निज पद बेइये। कहा रच्यो पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै। अब दौल ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाँवमत चूकौ यहै॥ विद्वानों का यह मत-एकमत है। अतः बा. ब्र. श्री बसन्त जी भी कहते हैं- 'निज को स्वयं निज जान लो, पर को पराया मान लो। यह भेदज्ञान जहान में, निज धर्म है पहिचान लो।'

सत्य की प्राप्ति एक व्यक्तिगत प्रक्रिया है और सत्य का प्रचार सामाजिक प्रक्रिया। सत्य की प्राप्ति के लिए अपने में सिमटना आवश्यक है और सत्य के प्रचार के लिए जन-जन तक पहुँचना। अध्यात्म रत्न बा. ब्र. श्री बसन्त जी ने जब इस सत्य को जन-जन तक पहुँचाने का उद्देश्य बनाया तो वर्षों के विचार मंथन से श्री तारण-तरण मुक्त महाविद्यालय धर्म नगरी छिंदवाड़ा में साकार हुआ है। मुक्त महाविद्यालय की पत्राचार प्रणाली द्वारा घरों-घर ज्ञान-प्रभा निष्णात होगी। ज्ञानयज्ञ के इस पुनीत लक्ष्य की पूर्ति हेतु यह प्रवेश पाठ्यक्रम 'ज्ञानोदय' संशोधित द्वितीय संस्करण आपके हाथों में पुस्तकाकार समर्पित है। पंचवर्षीय पाठ्यक्रम के वटवृक्ष में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी द्वारा सृजित चौदह ग्रंथों सहित छहढाला, श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका, द्रव्य संग्रह, तत्वार्थ सूत्र, अध्यात्म अमृत कलश, गुणस्थान परिचय आदि की शाखाएँ हैं। देव गुरु शास्त्र पूजा, मंदिर विधि, प्रतिष्ठा विधि, बारह भावनाएँ, तारण समाज साधक परिचय इस वृक्ष के सुरभित पत्र पुष्प हैं। मूल में हमारी श्रद्धा का सिंचन है, जो वृहदाकार सम्यक्ज्ञान, चारित्र को परिपुष्ट करेगा।

'ज्ञानोदय' का प्रथम अध्याय जैनागम के सिद्धांतों और अखिल भारतीय तारण तरण दिगं. जैन समाज की मूल आम्नाय का परिचय है। ज्ञान विज्ञान भाग एक एवं दो पूर्व से ही तारण तरण दिगं. जैन पाठशालाओं के सतत् पाठ्यक्रम में सम्मिलित है। इसकी प्रश्नोत्तर व संवाद शैली हृदयग्राही है जो विद्यार्थी को तर्कनिष्ठ बनाती है। ज्ञानोदय का दूसरा अध्याय विचारमत का प्रसिद्ध ग्रंथ श्री मालारोहण जी है। श्रीमद् तारण स्वामी जी ने बत्तीस गाथाओं में जिनवर कथित आत्मस्वरूप और सम्यक्दर्शन की महिमा को समवशरण की दिव्य देशना के रूप में वर्णित किया है। श्री महावीर

भगवान तथा राजा श्रेणिक का यह गेय संवाद गीति–नाट्य परंपरा का विलक्षण उदाहरण है। इसका स्वाध्याय बुद्धिपूर्वक आत्म तत्त्व का निर्णय करने में सहकारी है। ज्ञानोदय का तीसरा अध्याय छहढाला है। जैनदर्शन के मूल को समग्रतः सूक्ष्म दृष्टि से देखने की शैली विकसित करने वाला यह ग्रंथ पंडित प्रवर श्री दौलतराम जी की गेय कवित्व शक्ति का परिचायक है। वीतरागता का पोषण तथा विज्ञान के रूप में उसकी स्थापना; नई संस्कृति की विकृति में रत होनहारों के हृदय परिवर्तन में सहकारी सिद्ध होगी। इस अध्याय को प्रश्नोत्तर शैली में संजोया गया है।

ज्ञानोदय का चौथा अध्याय सरस अध्याय है। श्री जिन तारण तरण कृत विशाल ग्रंथ श्री भय खिपनिक ममलपाहुड़ जी की देव दिप्ति, ध्यावहु, धर्म दिप्ति, चेतक हियरा फूलना तथा जिनेन्द विंद छंद गाथा इसकी विषय वस्तु है। वास्तव में सहजानुभूति सहज ज्ञान योग है। ममल स्वभाव में संयुक्तता, ज्ञान से ज्ञान का अवलंबन परम पद की सिद्धि का उपाय है। ऐसा जानकर जिज्ञासु भव्य जीव मोक्ष पथ पर अग्रसर होंगे। देव गुरु शास्त्र धर्म के सत्स्वरूप को निरूपित करने वाले बा. ब्र. श्री बसन्त जी कृत देव वंदना, गुरु स्तुति, जिनवाणी का सार, धर्म का स्वरूप उक्त भावों को परिपुष्ट करते हैं।

सभी अध्याय अध्ययन सुविधा और परिक्षोपयोगी दृष्टि से प्रश्नोत्तर शैली में लिखे गए हैं। विषय वस्तु की स्पष्टता हेतु चित्र, रेखाचित्र, छायाचित्र, शास्त्रोक्त उद्धरण, सूक्तियों को विषयानुरूप संपादित किया गया है। जो विद्यार्थियों को तथ्य सम्पन्न बनायेगा। परीक्षा योजना, मॉडल प्रश्न–पत्र देकर पाठ्यक्रम की आवश्यकतानुसार संयोजित किया गया है।

ज्ञानोदय वास्तव में ज्ञान के उदय का पर्याय बने इस हेतु अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसन्त जी ने इसमें अपनी चिंतन साधना के अनमोल रत्न पिरोये हैं। पूर्व प्रकाशित पुस्तक के अनछुए, अनकहे पहलुओं को सारगर्भित कर परिष्कृत किया गया है। जो कुछ आवश्यक था, संपादकों ने उसे संशोधित करने का प्रयास किया है तथापि त्रुटियाँ होना संभावित है। जिनका निदान पाठकों, सुधीजनों के चिंतन से ही अपेक्षित है। इस कार्य के संपादन में अनेक कर्मठ हाथों, चित्रकारों विचारवान बौद्धिक मस्तिष्कों का बहुमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है। उसके लिये हम सभी के प्रति कृतज्ञ हैं।

डॉ. श्रीमती मनीषा जैन
(उप प्राचार्य)
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा (म.प्र.)

वर्तमान की आवश्यकता.....

तारण पंथ आध्यात्मिक क्रांति की देन है। तारण समाज अध्यात्म प्रधान समाज है। प्रत्येक मोक्षार्थी पुरुष का एक मात्र लक्ष्य संसार के दुःखों से मुक्त होने का रहता है, और यह आध्यात्मिक मार्ग इस लक्ष्य की पूर्ति में सबसे बड़ा सहायक हैं इस संदर्भ में स्मरणीय है –

ज्ञानानन्द स्वभावी हो तुम, देखो खिला बसन्त है।
आतम शुद्धातम पहिचानों, यही तो तारण पंथ है ॥

सोलहवीं शताब्दी के महान अध्यात्मवादी संत युग चेतना के प्रथम गायक युग दृष्टा आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने आज से लगभग ५५० वर्ष पूर्व संपूर्ण देश के भव्य जीवों के लिये बिना किसी भेदभाव के आत्म कल्याण का पथ प्रशस्त किया था। भारत कृतज्ञ है कि उसकी गोदी में एक ऐसा नक्षत्र करुणा और ज्ञान का संदेश लेकर आया जिसने अपनी महानता से भारत को महान बना दिया। मिथ्यात्व के गहन अंधकार में बाह्य क्रियाकांडों और आडम्बरों में उलझे जनमानस को आत्म कल्याण का यथार्थ मार्ग बताया।

वर्तमान में तारण समाज में धार्मिक शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। हमारी नई पीढ़ी को सुसंस्कारित करने हेतु शिक्षा ही सबसे बड़ा माध्यम है। धार्मिक आधार विचारों की शून्यता को दूर करने के लिये यही एक साधन है। विगत १५ – २० वर्षों से हम इस पवित्र कार्य के लिये प्रयासरत हैं। जो साकार हो रहा है। सन् २००९ में श्रीमद् तारण तरण ज्ञान संस्थान के अंतर्गत श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की स्थापना की गई। यह महाविद्यालय पत्राचार के माध्यम से संपूर्ण देश में समाज के समस्त वर्गों में स्वाध्याय की रुचि को जाग्रत कर प्रवेशार्थियों को शास्त्री की उपाधि से अलंकृत करने के लिये कृत संकल्पित है। इसके माध्यम से हम समाज में प्रचलित समस्त भ्रान्तियों का उन्मूलन करने का भी प्रयास कर रहे हैं। हमारा लक्ष्य समाज में अच्छे वक्ता ओर श्रोता के गुणों का विकास करना भी है।

पंचवर्षीय पाठयक्रम में जो विषय दिये हैं वे बहुत ही सटीक हैं, जिनके अध्ययन से प्रवेशार्थियों को जीवन के लिये कल्याणकारी ज्ञानोपार्जन की सुविधा होगी। महाविद्यालय में अध्ययन करने हेतु देश के कोने – कोने से प्रवेशार्थियों द्वारा प्रवेश लेने का जो उत्साह है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।हम सभी प्रवेशार्थियों को मंगल भावना के साथ धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिन्होंने महाविद्यालय में प्रवेश लेकर अध्ययन करने का संकल्प किया है, आप पंचवर्षीय पाठयक्रम पूर्ण कर सम्यग्ज्ञान के लक्ष्य को उपलब्ध करें, हमारी शुभकामनायें आपके साथ हैं।

आप सभी का जीवन मंगलमय हो, इन्हीं मंगल भावनाओं सहित.....

सिंघई ज्ञानचंद जैन
बीना

श्रीमंत सुरेशचंद जैन
सागर

प्रेरणा....

भारतीय संस्कृति इस बात पर विश्वास करती है – '' सा विद्या या विमुक्तये '' विद्या वही है जो मुक्ति का कारण है।

शिक्षा का समग्र व्यक्तित्व के निर्माण में अद्वितीय स्थान है। लौकिक शिक्षा व्यक्ति के इहलौकिक जीवन विकास के पथ को प्रशस्त करती है जबकि आध्यात्मिक शिक्षा निराकुलता की प्राप्ति, दुःखों से मुक्ति, शांति और आनन्द के रहस्यों को उद्‌घाटित करती हुई आत्मोन्नति के द्वार खोलती है।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय सम्यग्ज्ञान से आलोकित परम आत्म विद्या को उपलब्ध करने हेतु स्थापित किया गया है। पंचवर्षीय पाठयक्रम के माध्यम से प्रवेशार्थी यथार्थ वस्तु स्वरूप से परिचित होंगे, जिससे वर्तमान में व्यवहारिक और सामाजिक जीवन सम्यग्ज्ञान से आलोकित होगा। पत्राचार पद्धति पर आधारित देश में अनेकों महाविद्यालय और विश्वविद्यालय संचालित किये जा रहे हैं। धार्मिक क्षेत्र में भी यह प्रयोग सफल हो रहे हैं। लाखों परिवार अपने – अपने धर्म से संबंधित मुक्त महाविद्यालयों में प्रवेश लेकर अपनी परम्परानुसार इष्ट के प्रति जानकारी उपलब्ध कर धन्यता का अनुभव करते हैं। व्यक्ति की अंतरंग श्रद्धा और समर्पण इस दिशा में अत्यंत सहयोगी होते हैं।

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय छिंदवाड़ा का अत्यंत उन्नत लक्ष्य है। इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति के लिये सभी प्रवेशार्थी पाँच वर्ष तक अबाधगति से निरंतर अध्ययन करें। श्रद्धा, भक्ति, संकल्प शक्ति और समर्पण ही विकास का पथ प्रशस्त करता है।

सभी का जीवन सम्यग्ज्ञानमय हो ऐसी अनेक शुभकामनाओं सहित.....

ब्र. बसन्त

ज्ञान समान न आन जगत में, सुख को कारण

सच्चा ज्ञान ही सुख का कारण है। स्वाध्याय से इस लोक और परलोक में सुख प्रापत होता है। स्वाध्याय की रुचि में प्रत्येक वर्ग में जागृत हो इसी उद्‌देश्य से मुक्त महाविद्यालय के माध्यम से पंचवर्षीय पाठ्यक्रम प्रारंभ किया गया है। प्रथम वर्ष में सभी ने इस ओर गहरी रुचि दिखाई है। आगे भी हम इस क्रम को बनायें रखें और पंचवर्षीय पाठ्यक्रम को पूरा करें। नये विद्यार्थी और खासतौर पर नवयुवक वर्ग स्वाध्याय के क्रम को बनाने हेतु महाविद्यालय से जुड़ें। सभी वर्ग से विनम्र अपील है कि प्रवेश पत्र भरकर ज्ञानार्जन के प्रथम सोपान में कदम रखें।

शुभकामनाओं सहित......

तरुण गोयल
प्रचार सचिव

प्रदीप स्नेही
सचिव

प्राक्कथन

सोलहवीं शताब्दी के महान अध्यात्मवादी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज संसार के प्रत्येक प्राणी मात्र के लिये अध्यात्म मार्ग की पावन प्रेरणा प्रदान करने वाले वीतरागी संत थे, जिन्होंने जगत के जीवों को संसार से तिरने का मार्ग बताया। आचार्य प्रवर ने चौदह ग्रंथों की रचना करके भारतीय अध्यात्म दर्शन की निष्ठा को प्रतिष्ठित किया है।

इस पंचम काल में जहाँ सभी ओर भौतिकता की चकाचौंध है ; वहीं श्री जिन तारण स्वामी के बताये मार्ग से जन-जन को परिचित कराने के लिये तारण तरण श्रीसंघ एवं अखिल भारतीय तारण समाज की शुभ भावनानुसार शाश्वत तीर्थक्षेत्र सिद्धभूमि श्री सम्मेदशिखर जी में आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज की जन कल्याणकारी वाणी की प्रभावना एवं जिनवाणी का प्रचार-प्रसार करने के निमित्त तारण भवन अध्यात्म केन्द्र की स्थापना की गई है। जो समाज की महान ऐतिहासिक उपलब्धि है। इसके उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रथम चरण में छिंदवाड़ा में श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की स्थापना की गई है।

जो लोग जीवन को बिना उद्देश्य के जीना चाहते हैं एवं समाज को अन्य परम्पराओं की बेड़ियों में बांधना चाहते हैं, उन सभी की भ्रान्तियों को दूर करने के लिये इस महाविद्यालय द्वारा पंचवर्षीय विशेष पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। इस पाठ्यक्रम में अध्यात्म दर्शन का सम्पूर्ण विधि विधान अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पूज्य श्री बसन्त जी महाराज ने अपने चिंतन साधना और प्रश्नोत्तर शैली में पिरोया है। अध्यात्म दर्शन करने वाले मुमुक्षु जीवों के लिये सद्गुरु के अभिप्राय को ध्यान में रखकर इस पाठ्यक्रम को सरल भाषा में बोधगम्य तथा रुचिकर बनाने का भरसक प्रयास किया गया है। प्रत्येक अध्याय में ऐसी सभी बातों का विस्तार से वर्णन किया गया है, जिन्हें अत्यंत साधारण समझकर छोड़ दिया जाता है। इससे पठनीय सामग्री अत्यंत रुचिकर बन गई है।

अध्यात्म रत्न बाल ब्र. श्री बसन्त जी महाराज, जो आध्यात्मिक ज्ञान ध्यान में तल्लीन आत्म चिंतक, हमारी समाज के सूर्य हैं, ने श्रीमद् जिन तारण स्वामी की देशना को जन-जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से इस महाविद्यालय की अधोसंरचना का विचार मन में संजोया था, जो आज मूर्त रूप में आपके सामने है। इसमें उनके साथ युवा साधक श्रद्धेय बाल ब्र. श्री शांतानन्द जी महाराज, बाल ब्र. विदुषी बहिन श्री उषा जी, बाल ब्र. श्री राकेश जी एवं समस्त श्रीसंघ का सहयोग उन्हें मिला है।

इस महाविद्यालय के माध्यम से मानव समाज में नियम धर्म का पालन, धर्म के नाम पर घृणा फैलाने वालों का हृदय परिवर्तन, रूढ़ियों, कुरीतियों और थोथी मान्यताओं का उन्मूलन हो, आत्मा से परमात्मा कैसे बनें, पूजा कैसे करें, आध्यात्मिक व चारित्रिक दृढ़ता प्राप्त हो और गुरुवाणी का जन-जन में प्रचार हो इस हेतु अध्यात्म रत्न बाल ब्र. पूज्य श्री बसन्त जी महाराज द्वारा किया गया प्रयास अभिनंदनीय है। हम सभी इन आदर्शों को अपनी जीवन चर्या में उतारने का संकल्प करें।

मानव मात्र के जीवन में अध्यात्म दर्शन का प्रादुर्भाव हो, इसका पठन कर सभी जीवों की अध्यात्म दृष्टि बने ऐसी मंगल भावना है।

डॉ प्रो. उदयकुमार जैन
प्राचार्य
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिन्दवाड़ा (म.प्र.)

डालचंद जैन (पूर्व सांसद)
अध्यक्ष– विश्व अहिंसा संघ, नई दिल्ली
अध्यक्ष– मध्यप्रदेश स्वतंत्रता संग्राम सेनानी
फेडरेशन भोपाल (म.प्र.)

निवास : श्रीमंत भवन, बी. एस.जैन मार्ग
राजीव नगर, सागर (म.प्र.)
नि: २६८०२७,२६८०५९
आ. २६८०४९, २६८०१७
फैक्स : (०७५८२) २६८०७९ तार : बालक
email : sagarmp@hotmail.com

अध्यात्म रत्न बा.ब्र. बसंत जी
संस्थापक
श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय
छिंदवाड़ा

सादर जय तारण तरण

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय की योजना प्रारंभ कर श्री तारण तरण दिग. जैन समाज में एक नया युग प्रारंभ करने की दिशा में अच्छी पहल की शुरुआत की है। हम इसकी सराहना करते हुए स्वागत करते हैं। हमारी समाज में धर्म के ज्ञान धन की वृद्धि हो, इस योजना में समाज के सभी विद्वानों का सहयोग प्राप्त हो।
योजना की सफलता की कामना करता हूँ।

सादर भावनाओं के साथ

आपका शुभेच्छु

डालचन्द जैन

(डालचंद जैन)

ज्ञानोदय समर्पित है.....

जिन जिनयति जिनय जिनेंदु जिनय पौ जिनय मओ।

जिन जिनयति कम्मु अनंतु कमल रुइ पर्म पओ॥

कमल कलिय जिनु उत्तु न्यान रस रमन पओ।

तं विंद रमन विन्यान रमन सु मुक्ति गओ॥

की

अनवरत ज्ञानधारा प्रवाहित करने वाले

आचार्य प्रवर

श्रीमद् जिन तारण तरण स्वामी जी के प्रति,

जिनके,

स्वानुभूति से प्रस्फुटित अमृत वचन

दैदीप्यमान रत्नमणि के समान

ज्ञानानुभव प्रकाशित कर रहे हैं।

साथ ही,

उनकी विशुद्ध आम्नाय को सहेजने वाले

विविध कलाओं में निष्णात

धर्म दिवाकर पूज्य श्री ब्र. गुलाबचंद जी महाराज,

समाज रत्न पूज्य श्री ब्र. जयसागर जी महाराज,

अध्यात्म शिरोमणी पूज्य श्री ब्र. ज्ञानानन्द जी महाराज

सहित

धर्म प्रभावक जागृत चेतनाओं के प्रति .

अनुक्रमणिका ...

क्र.	विवरण		रचनाकार	पृष्ठ क्रमांक
०१.	नियमावली		–	I
०२.	परीक्षा योजना		–	II
०३.	प्रार्थना		–	III
०४.	अध्याय एक : ज्ञान विज्ञान भाग एक		ब्र. बसन्त	०१ – २१
	पाठ – १	पंच परमेष्ठी		०१ – ०२
	पाठ – २	तीर्थंकर और भगवान		०३ – ०४
	पाठ – ३	तारण पंथ का मूल आचार		०५ – ०७
	पाठ – ४	इंद्रियाँ और जीव		०८ – ०९
	पाठ – ५	सदाचार		१० – १२
	पाठ – ६	वस्तु विज्ञान		१२ – १४
	पाठ – ७	गतिबोध		१५ – १६
	पाठ – ८	तत्व मंगल		१७ – १८
	पाठ – ९	आओ सीखें		१९ – २१
०५.	अध्याय एक : ज्ञान विज्ञान भाग दो		ब्र. बसन्त	२२ – ४२
	पाठ – १	आचार्य तारण तरण परिचय		२२ – २४
	पाठ – २	श्रावक परिचय		२५ – २६
	पाठ – ३	देव पूजा विधि		२७ – २८
	पाठ – ४	षट् आवश्यक परिचय		२९ – ३०
	पाठ – ५	विचारमत–एक क्रांति		३१ – ३२
	पाठ – ६	मंदिर विधि परिचय		३३ – ३५
	पाठ – ७	विनय बैठक परिचय		३६ – ३७
	पाठ – ८	बृहद् मंदिर विधि परिचय		३८ – ३९
	पाठ – ९	अनुयोग परिचय		४० – ४२
०६.	अध्याय दो : श्री मालारोहण जी		श्रीमद् जिन तारण तरण	४३ – ८२
०७.	अध्याय तीन : छहढाला		पण्डित दौलतराम	८३ – १४४
०८.	अध्याय चार : श्री ममलपाहुड़जी		श्रीमद् जिन तारण तरण	१४५ – १७४
०९.	अध्याय चार : देव गुरु शास्त्र पूजा		ब्र. बसन्त	१७५ – १८८
१०.	मॉडल प्रश्न पत्र ०१ – ०४		–	१८९ – १९२

नियमावली

०१. महाविद्यालय द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम में पंजीयन हेतु सभी इच्छुक विद्यार्थी पात्र हैं, जाति बंधन नहीं है।
०२. एक वर्षीय पाठ्यक्रम के अंतर्गत दिये जाने वाले ४ अध्यायों का पूरा अध्ययन करना अनिवार्य होगा।
०३. सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु न्यूनतम आयु सीमा १५ वर्ष रहेगी।
०४. विद्यार्थियों की संख्या के आधार पर परीक्षा केन्द्र निर्धारित किये जावेंगे। प्रत्येक परीक्षा केन्द्र में न्यूनतम २५ परीक्षार्थी होना अनिवार्य है।
०५. परीक्षा परिणाम की अंकसूची वार्षिक परीक्षा के पश्चात् डाक द्वारा भेजी जावेगी एवं मेरिट में आने वाले प्रथम दस छात्रों के लिये विशेष पुरस्कार प्रदान किये जावेंगे। जिसमें ग्रुप के प्रवेशार्थी रहेंगे।
०६. प्रमाण-पत्र मात्र तीसरे वर्ष तथा पाँचवें वर्ष की परीक्षा के पश्चात् प्रदान किये जावेंगे।
०७. पांचवें वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले परीक्षार्थियों को 'शास्त्री' उपाधि से अलंकृत किया जावेगा।
०८. आवेदन पत्र प्राप्त होने पर महाविद्यालय द्वारा नामांकन क्रमांक भेजने के पश्चात् पाठ्यक्रम के अनुसार विद्यार्थी को अपनी पढ़ाई स्वयं करना होगी, केन्द्र द्वारा अध्ययन हेतु पाठ्य सामग्री भेजी जावेगी।
०९. विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से अपने सामाजिक और धार्मिक कार्यों में सक्रिय रहना अपेक्षित रहेगा।
१०. समय-समय पर महाविद्यालय द्वारा निर्देशित नियमों का पालन करना।
११. प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवेश शुल्क ३५०/ रु. होगी जो एक मुश्त देय होगी, जिसमें प्रवेश शुल्क, पाठ्य सामग्री एवं परीक्षा शुल्क सम्मिलित है। अगली कक्षा में प्रवेश हेतु समिति द्वारा निर्धारित शुल्क परीक्षा परिणाम घोषित होने के बाद एक माह में देय होगी।
१२. महाविद्यालय कार्यालय से पत्र व्यवहार करने के लिये अपने नामांकन क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
१३. अलंकरण समारोह तीर्थक्षेत्रों के वार्षिक आयोजन में या अन्य किसी भव्य समारोह में सम्पन्न किया जावेगा।
१४. महाविद्यालय से संबंधित समय-समय पर दी जाने वाली जानकारी और समाचार संत श्री तारण ज्योति एवं तारण बंधु में प्रकाशित किये जावेंगे।
१५. विशेष जानकारी के लिये महाविद्यालय के निर्देशक,प्राचार्य एवं उपप्राचार्य महोदय से संपर्क करें।

– विद्यार्थियों के वर्ग विभाग एवं प्रोत्साहन योजना –

दर्शन ग्रुप – (१५ वर्ष से २५ वर्ष तक बालक एवं बालिका वर्ग के लिये) (१० वीं कक्षा उत्तीर्ण होना अपेक्षित है)
ज्ञान ग्रुप – (२६ वर्ष से ४० वर्ष तक वयस्क पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये)
ममल ग्रुप – (४१ वर्ष से अधिक के प्रौढ़ पुरुष एवं महिला वर्ग के लिये)
उपरोक्त प्रत्येक वर्ग में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जायेगा।

– प्रवेश एवं परीक्षा का समय –

(१) इच्छित पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन-पत्र पूर्ण रूप से भरकर संचालन कार्यालय तारण भवन छिंदवाड़ा के पते पर भेजें। (२) आवेदन-पत्र संचालन कार्यालय को ३० अप्रैल तक प्राप्त होना आवश्यक है। (३) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय में प्रवेश १ मई से प्रारंभ होगा। (४) प्रवेशार्थियों के लिये महाविद्यालय का शुभारंभ १ जुलाई से होगा। (५) वार्षिक परीक्षा परिणाम डाक द्वारा प्रेषित किये जावेंगे। (६) वार्षिक परीक्षा मई माह में संपन्न होगी। (७) परीक्षा परिणाम जून माह में घोषित किया जावेगा।

– प्रवेशार्थियों के लिये आवश्यक नियम (प्रथम वर्ष) –

(१) प्रतिदिन जिनवाणी दर्शन करना।

परीक्षा योजना

१. श्रीमद् तरण तरण ज्ञान संस्थान द्वारा संचालित श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय के पंचवर्षीय पाठ्यक्रम में प्रत्येक वर्ष में एक बार परीक्षा होगी । परीक्षार्थी को परीक्षा में चार प्रश्न–पत्र देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न–पत्र में न्यूनतम ३३% अंक प्राप्त होने पर ही उत्तीर्ण घोषित किया जावेगा ।
अंकों का प्रतिशत/श्रेणी निम्नानुसार निर्धारित होगा –

परीक्षा योजना

अंक	श्रेणी	ग्रेड
०–३२	–	D अनुत्तीर्ण
३३–४४	तृतीय	C उत्तीर्ण
४५–६९	द्वितीय	B उत्तीर्ण
७०–८४	प्रथम	A उत्तीर्ण
८५–१००	विशेष योग्यता	A+उत्तीर्ण

परीक्षा योजना

२. प्रत्येक प्रश्न–पत्र में पूर्णांक १०० होंगे। प्रश्न–पत्र में दो अंकों वाले वस्तुनिष्ठ, चार अंकों वाले (३० शब्दों में) लघु उत्तरीय प्रश्न, ६ अंकों वाले (५० शब्दों में) दीर्घ उत्तरीय तथा १० अंक का एक निबंधात्मक प्रश्न होगा। प्रत्येक प्रश्न–पत्र का ब्लू प्रिंट निम्नानुसार होगा। जिसमें कुल सात प्रश्न (१०० अंक) होंगे।

प्रश्न क्रमांक	वस्तुनिष्ठ प्रश्न २ अंक	लघु उत्तरीय ४ अंक	दीर्घ उत्तरीय ६ अंक	निबंधात्मक १० अंक	प्रश्नों का योग
	रिक्त स्थान, सत्य/असत्य, सही जोड़ी/विकल्प	परिभाषा, प्रकार, अंतर	अंतर, परिचय, व्याख्या, सारांश	परिचय, निबंध	
	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	प्रश्न संख्या	
प्रश्न १	५	–	–	–	५
प्रश्न २	५	–	–	–	५
प्रश्न ३	५	–	–	–	५
प्रश्न ४	५	–	–	–	५
प्रश्न ५	–	५	–	–	५
प्रश्न ६	–	–	५	–	५
प्रश्न ७	–	–	–	१	१
	२०X२=४०	५X४=२०	५X६=३०	१X१०=१०	३१ प्रश्न
अंकों का योग	४०	२०	३०	१०	१०० अंक

प्रार्थना

नमामि गुरु तारणम्

मोक्ष पथ प्रदर्शकम्, नमामि गुरु तारणम्।
नमामि गुरु तारणम्, नमामि गुरु तारणम्॥

वीर श्री नन्दनं, पुष्पावती जन्मनं॥
गढ़ाशाह प्रमुदितम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

दीक्षा तप साधनम्, सेमरखेड़ी वनम्॥
ध्यान धारि निर्मलम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

मिथ्या मद मर्दनम्, मोह भय विनाशनम्॥
स्याद्वाद भूषितम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

आत्म ज्ञान दायकम्, मोक्ष मार्ग नायकम्॥
सत्य पथ प्रकाशकम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

धर्म पथ प्रचारितं, ज्ञानामृत वर्षणम्॥
सूखा निसई शुभम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

ज्ञान भाव स्थितम्, समाधि वेतवा तटम्॥
निसई तीर्थ वंदनम्, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

वीतराग जगद् गुरुम्, युगकवि सु निर्मलम्॥
ब्रह्मानंद मोक्षदं, नमामि गुरु तारणम्....मोक्ष पथ प्रदर्शकम्.....

व्यक्तिगत व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक

सर्वप्रथम पद्मासन, अर्द्ध पद्मासन या सुखासन में बैठें, मेरुदंड सीधा रहे, नासाग्र दृष्टि हो। ऐसी मुद्रा में बैठें पश्चात् संकल्प करें कि - मेरे भीतर अनंत ज्ञान का, अनंत शक्ति का, अनंत आनंद का सागर लहरा रहा है, उसका साक्षात्कार करना मेरे जीवन का परम लक्ष्य है। संकल्प के पश्चात् २ मिनिट श्वासोच्छ्वास पर ध्यान दें, पश्चात् श्वास को गहरे करें एवं ॐ मंत्र का उच्चारण करें (अपने श्वासोच्छ्वास प्रमाण, श्वास को छोड़ते समय ३/४ श्वास में ओ और १/४ श्वास में म् का उच्चारण करें) इसके बाद शांत मौन होकर शून्य ध्यान में आत्म स्वरूप में निमग्न हो जायें।

अंत में-३ बार ॐ नमः सिद्धं एवं ३ बार ॐ शांति मंत्र का उच्चारण करके अपने इष्ट शुद्धात्म देव को विनय भक्ति पूर्वक प्रणाम करके ध्यान पूर्ण करें।

ज्ञान विज्ञान भाग -१

पाठ -१

पंच परमेष्ठी

णमो अरिहंताणं	-	अरिहंतों को नमस्कार।
णमो सिद्धाणं	-	सिद्धों को नमस्कार।
णमो आइरियाणं	-	आचार्यों को नमस्कार।
णमो उवज्झायाणं	-	उपाध्यायों को नमस्कार।
णमो लोए सव्वसाहूणं	-	लोक में सब साधुओं को नमस्कार।

प्रश्न - परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो परम पद में स्थित हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न - अरिहंत परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिन्होंने चार घातिया कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्रकट किया है जो अठारह दोषों से रहित और अनन्त चतुष्टय सहित होते हैं, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न - सिद्ध परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिन्होंने आठ कर्मों का नाश कर, आठ गुण प्रकट कर लिए हैं, उन अशरीरी परमात्मा को सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न - आचार्य परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो साधु शुद्ध रत्नत्रय की भावना से पाँच आचारों का स्वयं पालन करते हुए संघ के साधुओं से पालन कराते हैं, जो संघ के नायक होते हैं और शिक्षा-दीक्षा देते हैं उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं। (पंचाचार - दर्शनाचार, ज्ञानाचार, वीर्याचार, तपाचार, चारित्राचार)

प्रश्न - उपाध्याय परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो साधु रत्नत्रय की भावना सहित ज्ञान का स्वयं अभ्यास करते हैं, जिन कथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक होते हैं, निःकांक्ष भाव से संघ के अन्य साधुओं को शिक्षा देते हैं उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न - साधु परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो समस्त पाप-परिग्रह का त्याग कर निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो जाते हैं तथा रत्नत्रय की साधना करते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न - अरिहंत सिद्ध परमेष्ठी में बड़े कौन से परमेष्ठी हैं ?

उत्तर - अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी में, सिद्ध परमेष्ठी बड़े होते हैं; क्योंकि वे अशरीरी, समस्त कर्मों से रहित पूर्ण शुद्ध मुक्त परमात्म पद में स्थित हैं।

प्रश्न - सिद्ध परमेष्ठी बड़े है फिर अरिहंतों को पहले नमस्कार क्यों किया जाता है ?

उत्तर - अरिहंत परमात्मा की दिव्य ध्वनि खिरती है जिससे संसार के समस्त जीवों को मोक्ष मार्ग का

उपदेश प्राप्त होता है तथा जगत के जीव आत्म कल्याण का मार्ग प्राप्त करते हैं एवं सिद्ध परमात्मा का ज्ञान भी अरिहंत परमेष्ठी के निमित्त से होता है इसलिए अरिहंत परमेष्ठी को पहले नमस्कार किया जाता है।

प्रश्न – **शरीर सहित और शरीर रहित कौन–कौन से परमेष्ठी होते हैं ?**

उत्तर – सिद्ध परमेष्ठी शरीर रहित और अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधु यह चार परमेष्ठी शरीर सहित होते हैं।

प्रश्न – **मुक्त और संसारी कितने परमेष्ठी हैं ?**

उत्तर – सिद्ध परमेष्ठी मुक्त हैं तथा शेष चार परमेष्ठी संसारी हैं।

प्रश्न – **परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करने से क्या लाभ है ?**

उत्तर – परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करने से यह बोध होता है कि यह पाँच पद ही परम इष्ट हैं, अन्य कोई भी संसारी पद इष्ट नहीं है। परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करने से भगवान बनने का पुरुषार्थ जाग्रत होता है तथा यह ज्ञान होता है कि आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति विद्यमान है।

प्रश्न – **अरिहंत परमेष्ठी आदि पद आत्मा में होते हैं या अन्यत्र होते हैं ?**

उत्तर – अरिहंत परमेष्ठी आदि पाँचों ही पद आत्मा के निज पद हैं, इन पाँच पदों में से कोई भी पद आत्मा को छोड़कर अन्यत्र नहीं होते।

प्रश्न – **पंच परमेष्ठी की शरण में जाने से क्या लाभ है ?**

उत्तर – जो जीव व्यवहार से पंच परमेष्ठी की शरण और निश्चय से निज आत्मा की शरण लेता है, वह जीव संसार के जन्म–मरण से छूटकर अविनाशी मुक्ति पद को प्राप्त करता है।

पंच परमेष्ठी के १४३ गुण

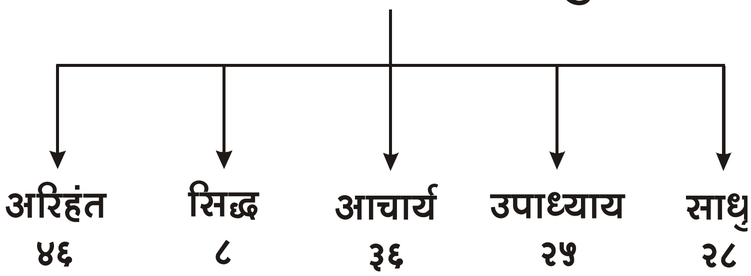

पाठ – २

तीर्थंकर और भगवान

प्रश्न – तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं, धर्मतीर्थ की स्थापना करते हैं, जिनके तीर्थंकर नाम कर्म की पुण्य प्रकृति का उदय होता है, जिनके समवशरण लगते हैं तथा गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण कल्याणक मनाये जाते हैं उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

प्रश्न – तीर्थंकर परमात्मा ने क्या उपदेश दिया है ?

उत्तर – तीर्थंकर परमात्मा ने द्रव्य की स्वतंत्रता, पुरुषार्थ से मुक्ति एवं वस्तु स्वरूप का यथार्थ निर्णय कर अपने आत्म स्वरूप को पहिचानने और जन्म–मरण के दु:खों से मुक्त होने का उपदेश दिया है।

प्रश्न – तीन पद के धारी कितने और कौन–कौन से तीर्थंकर हुए ?

उत्तर – शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ यह तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती, कामदेव और तीर्थंकर पद के धारी हुए।

प्रश्न – क्या सभी तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक होते हैं ?

उत्तर – तीर्थंकरों के २,३ और ५ कल्याणक होते हैं, भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के गर्भ आदि पाँचों कल्याणक होते हैं। विदेह क्षेत्र में यदि कोई गृहस्थ अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करे और उसी भव में उसका उदय हो तो दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण यह तीन कल्याणक मनाये जाते हैं और यदि कोई जीव मुनि अवस्था में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करे और उसका उदय हो तो केवलज्ञान और निर्वाण दो कल्याणक मनाये जाते हैं।

प्रश्न – कल्याणक किसे कहते हैं ?

उत्तर – तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण के समय देव उत्सव मनाते हैं, इस निमित्त से भव्य जीवों के अन्तर में धर्म की महिमा जाग्रत होती है और जगत के जीवों को आत्म कल्याण करने की प्रेरणा प्राप्त होती है इसलिए देवों द्वारा मनाये जाने वाले उत्सव को कल्याणक कहते हैं।

प्रश्न – तीर्थंकर और अरिहंत भगवान में क्या अन्तर है ?

उत्तर – चार घातिया कर्मों से रहित और अनन्त चतुष्टय सहित सभी केवलज्ञानी, सर्वज्ञ परमात्मा अरिहंत भगवान कहलाते हैं, उनमें जिन अरिहंत परमात्मा को तीर्थंकर नाम कर्म की सातिशय पुण्य प्रकृति का उदय होता है उन्हें अरिहंत तीर्थंकर कहते हैं, इनमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

अरिहंत भगवान	तीर्थंकर अरिहंत भगवान
१. अरिहंत अनेक होते हैं।	प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में तीर्थंकर अरिहंत भगवान २४ ही होते हैं।
२. इनकी माता को १६ स्वप्न नहीं आते।	इनके गर्भ में आने से पूर्व माता को १६ स्वप्न आते हैं।

३. इनके कल्याणक नहीं होते।	इनके कल्याणक होते हैं।
४. इनकी दिव्य ध्वनि खिरने का नियम नहीं है।	इनकी दिव्य ध्वनि नियम से खिरती है।
५. इनका समवशरण नहीं होता, गंध कुटी अर्थात् लघु समवशरण होता है।	इनका समवशरण होता है, विशेष धर्म प्रभावना होती है।

तीर्थंकर विशेष परिचय

क्र.	तीर्थंकर	माता का नाम	पिता का नाम	जन्म स्थान	चिन्ह	वर्ण	पूर्ण आयु
०१.	ऋषभनाथ	श्री मरुदेवी	श्री नाभिराय	अयोध्या	बैल	पीत	८४ लाख पूर्व
०२.	अजितनाथ	श्री विजयादेवी	श्री जितशत्रु	अयोध्या	हाथी	पीत	७२ लाख पूर्व
०३.	संभवनाथ	श्री सुषेणादेवी	श्री जितारि	श्रावस्ती	घोड़ा	पीत	६० लाख पूर्व
०४.	अभिनन्दननाथ	श्री सिद्धार्था	श्री संवर	अयोध्या	बंदर	पीत	५० लाख पूर्व
०५.	सुमतिनाथ	श्री सुमंगला	श्री मेघप्रभ	अयोध्या	चकवा	पीत	४० लाख पूर्व
०६.	पद्मप्रभु	श्री सुसीमा	श्री धारणाराजा	कौशाम्बीपुर	कमल	रक्त	३० लाख पूर्व
०७.	सुपार्श्वनाथ	श्री पृथिवी	श्री सुप्रतिष्ठ	वाराणसी	स्वास्तिक	हरित	२० लाख पूर्व
०८.	चन्द्रप्रभु	श्री लक्ष्मीमति	श्री महासेन	चन्द्रपुरी	चन्द्रमा	धवल	१० लाख पूर्व
०९.	पुष्पदंत	श्री रामा	श्री सुग्रीव राजा	काकन्दीपुर	मगर	धवल	०२ लाख पूर्व
१०.	शीतलनाथ	श्री सुनन्दा देवी	श्री दृढ़रथ	भद्रिलापुर	कल्पवृक्ष	पीत	०१ लाख पूर्व
११.	श्रेयांसनाथ	श्री वेणुदेवी	श्री विष्णुराज	सिंहपुरी	गैंडा	पीत	८४ लाख वर्ष
१२.	वासुपूज्य	श्री विजया	श्री वसुपूज्य	चम्पानगरी	भैंसा	रक्त	७२ लाख वर्ष
१३.	विमलनाथ	श्री आर्य/जयश्यामा	श्री कृत वर्मा	कपिलापुरी	सुअर	पीत	६० लाख वर्ष
१४.	अनन्तनाथ	श्री सर्वयशा	श्री सिंहसेन	अयोध्या	सेही	पीत	३० लाख वर्ष
१५.	धर्मनाथ	श्री सुव्रता	श्री भानुराज	रत्नपुरी	वज्रदंड	पीत	१० लाख वर्ष
१६.	शांतिनाथ	श्री ऐरादेवी	श्री विश्वसेन	हस्तिनापुर	हिरण	पीत	०१ लाख वर्ष
१७.	कुन्थुनाथ	श्री देवी/श्रीमती	श्री सूर्यसेन	हस्तिनापुर	बकरा	पीत	९५ हजार वर्ष
१८.	अरहनाथ	श्री मित्रा	श्री सुदर्शन	हस्तिनापुर	मछली	पीत	८४ हजार वर्ष
१९.	मल्लिनाथ	श्री प्रभावती	श्री कुंभराज	मिथिलापुर	कलश	पीत	५५ हजार वर्ष
२०.	मुनिसुव्रतनाथ	श्री पद्मावती	श्री सुमित्र	राजगृही	कछुआ	श्याम	३० हजार वर्ष
२१.	नमिनाथ	श्री वर्मिला	श्री विजयराज	मिथिलापुर	नीलकमल	पीत	१० हजार वर्ष
२२.	नेमिनाथ	श्री शिवादेवी	श्री समुद्रविजय	शौरीपुर	शंख	श्याम	०१ हजार वर्ष
२३.	पार्श्वनाथ	श्री वामादेवी	श्री अश्वसेन	वाराणसी	सर्प	हरित	१०० वर्ष
२४.	महावीर	श्री त्रिशला	श्री सिद्धार्थ	कुण्डलपुर	सिंह	पीत	७२ वर्ष

पाठ – ३

तारण पंथ का मूल आचार

प्रश्न – तारण पंथ किसे कहते हैं और तारण पंथी कौन होता है ?

उत्तर – संसार से तिरने के मार्ग को अर्थात् मोक्षमार्ग को तारण पंथ कहते हैं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तारण पंथी होता है क्योंकि वह सम्यग्दर्शन पूर्वक मोक्षमार्ग में आचरण करता है।

प्रश्न – तारण पंथ का मूल आचार क्या है ?

उत्तर – सात व्यसनों के त्यागपूर्वक अठारह क्रियाओं का पालन करना तारण पंथ का मूल आचार है।

प्रश्न – व्यसन किसे कहते हैं और कौन–कौन से होते हैं ?

उत्तर – बुरी आदत को व्यसन कहते हैं, व्यसन सात होते हैं :–

१. जुआँ खेलना २. माँस खाना ३. शराब पीना ४. वेश्यागमन करना ५. शिकार खेलना ६. चोरी करना ७. परस्त्री सेवन करना।

दोहा – जुआं खेलना मांस मद, वेश्या और शिकार।
चोरी परस्त्री गमन, सातों व्यसन निवार ।।

इन सात व्यसनों का नियम पूर्वक त्याग करना चाहिये।

प्रश्न – अठारह क्रियायें कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर –

धर्म की श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व	–	१
अष्ट मूल गुणों का पालन करना	–	८
चार प्रकार का दान देना	–	४
रत्नत्रय की साधना करना	–	३
पानी छानकर पीना	–	१
रात्रि भोजन त्याग	–	१
कुल	–	१८

प्रश्न – धर्म की श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान व्यवहार सम्यक्त्व है; तथा भेदज्ञान पूर्वक अपने आत्म स्वरूप की अनुभूतियुत श्रद्धा निश्चय सम्यक्त्व है। इसी को धर्म की श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न – मूलगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – प्रथम भूमिका में पालन किये जाने वाले गुणों को मूलगुण कहते हैं।

प्रश्न – मूलगुणों के पालन करने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – पाँच उदम्बर (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर) और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) के त्याग पूर्वक जीव के विशुद्ध गुणों का प्रकट होना मूल गुणों के पालन करने का अभिप्राय है।

प्रश्न – दान किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने और पर के उपकार के लिए पद के अनुसार चार प्रकार का दान पात्रों को देना दान कहलाता है।

प्रश्न – पात्र कितने और कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – पात्र तीन होते हैं – उत्तम, मध्यम, जघन्य।
१. उत्तम पात्र – महाव्रती वीतरागी साधु।
२. मध्यम पात्र – देशव्रती प्रतिमाधारी श्रावक।
३. जघन्य पात्र – अव्रती सम्यक्दृष्टि श्रावक।
इन पात्रों को चार प्रकार का दान विनय और भक्ति पूर्वक देना चाहिये।

प्रश्न – रत्नत्रय की साधना करने का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – आत्मा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मयी है। अपने आत्म स्वभाव की साधना करना ही निश्चय से रत्नत्रय की साधना है। व्यवहार से आत्मा का श्रद्धान, स्व– पर का यथार्थ निर्णय करना तथा स्वरूप के लक्ष्य पूर्वक व्रतादि का पालन करते हुए अपने स्वरूप में स्थिर होने का पुरुषार्थ करना रत्नत्रय की साधना कहलाती है।

प्रश्न – पानी छानकर क्यों पीना चाहिये ?

उत्तर – पानी छानकर पीने से अहिंसा धर्म का पालन होता है, बिना छने पानी में असंख्यात जीव होते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार बिना छने पानी की एक बूंद में ३६४५० सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। इन जीवों की हिंसा से यथाशक्ति बचने के लिए पानी छानकर पीना चाहिये।

प्रश्न – श्रावक को भोजन कब करना चाहिये ?

उत्तर – श्रावक को 'अनस्तमितं बे घड़ियं च ' अर्थात् सूर्य डूबने से २ घड़ी (४८ मिनिट) पहले भोजन कर लेना चाहिये। सूर्य अस्त होने के बाद रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिये।

प्रश्न – रात्रि भोजन करने से क्या हानि है ?

उत्तर – रात्रि भोजन करने से गृद्धता अधिक होती है एवं राग की तीव्रता से अनेक जीवों की हिंसा होती है। सूर्य के प्रकाश के कारण बहुत से छोटे–छोटे जीव अपने घरों से बाहर नहीं निकलते वे रात्रि के अंधेरे में बाहर निकलते हैं जो भोजन के साथ ही पेट में चले जाते हैं जिससे तरह–तरह के रोग भी पैदा हो जाते हैं, इसलिये रात्रि भोजन नहीं करना चाहिये।

प्रश्न – रात्रि भोजन के संबंध में वैज्ञानिकों का क्या मत है ?

उत्तर – वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रात्रि में भोजन करना हानिकारक है, वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि रात्रि में वृक्ष विषैली हवा छोड़ते हैं जिससे वातावरण तो दूषित होता ही है, भोजन भी विषैला हो जाता है, जिससे अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं।

प्रश्न – रात्रि भोजन के बारे में डॉक्टर क्या कहते हैं ?

उत्तर – रात्रि भोजन के बारे में डॉक्टरों का कहना है कि सोने से छह घंटे पहले भोजन कर लेना चाहिये, इस मत से भी रात्रि भोजन का निषेध हो जाता है।

प्रश्न – रात्रि में भोजन क्यों नहीं करना चाहिये ?

उत्तर – १. रात्रि भोजन से स्वास्थ्य बिगड़ता है। २. पाचन शक्ति खराब हो जाती है।
३. हिंसा का दोष लगता है। ४. जीव, धर्म से दूर हो जाता है।
५. प्रमाद और मन की चंचलता बढ़ती है।

प्रश्न – आयुर्वेदिक शास्त्र का रात्रि भोजन के बारे में क्या कहना है ?

उत्तर – आयुर्वेदिक शास्त्र भी रात्रि भोजन की सलाह नहीं देते, बल्कि आयुर्वेदिक शास्त्रों के अनुसार रात्रि भोजन से अधिक हानियां हैं।

जैसे – रात्रि में भोजन करते समय–

१. जूं खा लेने से जलोदर रोग हो जाता है।
२. मकड़ी खा जाने से कुष्ट रोग हो जाता है।
३. मक्खी खा जाने से वमन (उल्टी) हो जाती है।
४. कीड़ा खा जाने से पित्त निकल आता है।
५. बाल खाने से स्वर भंग हो जाता है।
६. चींटी खा जाने से बुद्धि मंद हो जाती है।
७. सर्प और छिपकली के विष से प्राण भी चले जाते हैं।

इस प्रकार रात्रि भोजन धार्मिकता, स्वास्थ्य और आचरण आदि सभी अपेक्षाओं से हानिकारक है।

पाठ सार

सात व्यसन को जो तजे, होवे श्रद्धावान ।
अष्टमूल गुण पालता, देता दान महान ॥
रत्नत्रय की साधना, पीवे पानी छान ।
रात्रि भोजन न करे, तारण पंथी जान ॥

महिमामय मंत्र – ॐ नमः सिद्धं

महामंत्र है यह, जपाकर जपाकर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं ।
रहे स्मरण में मंत्र यह निरंतर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं ॥
गुरुदेव तारण को जहर जब पिलाया। अमृत हुआ विष, कर कुछ न पाया॥
मंत्र की अगम है महिमा ध्याओ शाँत होकर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं .....
गुरुदेव को जब नदी में डुबाया। बने तीन टापू, देव यशोगान गाया॥
अलौकिक क्षमा के सागर बोले थे गुरुवर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं .....
सिद्ध प्रभु जैसे सदाकाल शुद्ध हैं। वैसे ही मेरा आतम, सदा शुद्ध बुद्ध है॥
स्वानुभूति करते हुए बोलो सभी नर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं .....
कहने लगे एक दिन विरउ ब्रह्मचारी। कौन सा मंत्र है कल्याणकारी॥
तो बोले थे ज्ञानी तारण तरण गुरुवर, ॐ नमः सिद्धं ॐ नमः सिद्धं .....

ॐ नमः सिद्धं मंत्र आत्मा के सिद्ध स्वरूप का अनुभव कराने वाला विशिष्ट मंत्र है। एक समय की आत्मानुभूति संसार के बंधनों से छूटने का उपाय है। यह अद्भुत कार्य ॐ नमः सिद्धं मंत्र के आराधन से होता है।

पाठ – ४

इन्द्रियाँ और जीव

प्रश्न – इन्द्रिय किसे कहते हैं, इंद्रियाँ कितनी होती हैं ?

उत्तर – जिन चिह्नों से संसारी जीव की पहिचान होती है उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। इंद्रियाँ पाँच होती हैं – स्पर्शन (त्वचा), रसना (जीभ), घ्राण (नासिका), चक्षु (आँख), कर्ण (कान)।

प्रश्न – स्पर्शन इंद्रिय किसे कहते हैं, इसके कितने विषय हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा छूकर पदार्थ का ज्ञान होता है उसे स्पर्शन इन्द्रिय कहते हैं। स्पर्शन इंद्रिय के आठ विषय हैं –
हल्का, भारी, कड़ा, नरम।
रूखा, चिकना, ठंडा, गरम ॥

प्रश्न – रसना इन्द्रिय किसे कहते हैं, इसके कितने विषय हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा चखकर पदार्थ का ज्ञान होता है उसे रसना इन्द्रिय कहते हैं। इसके पाँच विषय हैं – खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला।

प्रश्न – घ्राण इन्द्रिय किसे कहते हैं, इसके कितने विषय हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा सूंघकर पदार्थ का ज्ञान होता है उसे घ्राण इन्द्रिय कहते हैं। इसके दो विषय हैं – सुगन्ध और दुर्गन्ध।

प्रश्न – चक्षु इन्द्रिय किसे कहते हैं, इसके कितने विषय हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा देखकर पदार्थ का ज्ञान होता है उसे चक्षु इन्द्रिय कहते हैं। इसके पाँच विषय हैं – काला, पीला, नीला, लाल, सफेद।

प्रश्न – कर्ण इन्द्रिय किसे कहते हैं, इसके कितने विषय हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा सुनकर पदार्थ का ज्ञान होता हैं उसे कर्ण इन्द्रिय कहते हैं। इसके दो विषय हैं – सुस्वर और दुःस्वर।

प्रश्न – ऐसी कौन सी इन्द्रिय है जो दो कार्य करती है ?

उत्तर – रसना इन्द्रिय दो कार्य करती है – स्वाद लेना और बोलना।

प्रश्न – एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन जीवों को एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है उन्हें एकेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।

प्रश्न – दो इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन जीवों को स्पर्शन और रसना यह दो इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें दो इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – लट, केंचुआ, जोंक आदि।

प्रश्न – तीन इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन जीवों को स्पर्शन, रसना और घ्राण यह तीन इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें तीन इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – चीटीं, जूं ,खटमल, बिच्छू आदि।

प्रश्न – चार इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन जीवों को स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु यह चार इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें चार इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – मक्खी, मच्छर, भौंरा, बर्र, ततैया आदि।

प्रश्न – पाँच इन्द्रिय जीव किसे कहते हैं।

उत्तर – जिन जीवों को स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण यह पाँच इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें पाँच इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – गाय, हाथी, मनुष्य, देव, नारकी आदि।

प्रश्न – पंचेन्द्रिय जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद हैं –सैनी (संज्ञी पंचेन्द्रिय) और असैनी (असंज्ञी पंचेन्द्रिय)।

प्रश्न – सैनी पंचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस जीव को पाँच इन्द्रिय और मन होता है, जो शिक्षा और उपदेश को ग्रहण कर सकते हैं उन्हें सैनी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – मनुष्य, सिंह, हाथी, मेंढक आदि।

प्रश्न – असैनी पंचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस जीव को पाँच इन्द्रियाँ होती हैं लेकिन मन नहीं होता, जो शिक्षा और उपदेश को ग्रहण नहीं कर सकते उन्हें असैनी पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे – पानी का सांप और कोई–कोई तोता आदि।

प्रश्न – एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों में सैनी–असैनी का भेद बताओ ?

उत्तर – १. एकेन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक के जीव असैनी होते हैं क्योंकि उनको मन नहीं होता है।

२. मनुष्य, देव, नारकी सैनी ही होते हैं क्योंकि इनके मन होता है।

३. पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कोई–कोई जीव मन रहित असैनी होते हैं, शेष मन वाले सभी जीव सैनी होते हैं।

प्रश्न – पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के कितने और कौन – कौन से भेद हैं ?

उत्तर – पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के तीन भेद हैं –

१. जलचर – जो जल में रहते हैं, जैसे – मछली, मगर, कछुआ आदि।

२. थलचर – जो पृथ्वी पर चलते फिरते हैं, जैसे – हाथी, गाय, घोड़ा आदि।

३. नभचर – जो आकाश में उड़ते हैं, जैसे – चिड़िया, तोता, मैना, कबूतर आदि।

पाठ – ५

सदाचार

दिनेश – भाई साहब ! जय तारण तरण ।।

जिनेश – जय तारण तरण दिनेश ! तुम्हारी पाठशाला की पढ़ाई कैसी चल रही है ?

दिनेश – पाठशाला की पढ़ाई ठीक चल रही है । कल गुरुजी ने अभक्ष्य त्याग और सदाचार के बारे में समझाया था, इस विषय को पुनः आपसे समझना है ।

जिनेश – हाँ–हाँ बहुत अच्छा ! जिज्ञासा होने पर ही धर्म की समझ प्रगट होती है । देखो भाई नैतिकता का पालन और अभक्ष्य पदार्थों का सेवन नहीं करना ही सदाचार है ।

दिनेश – अभक्ष्य किसे कहते हैं, उसके भेदों के बारे में समझायें ?

जिनेश – जो पदार्थ खाने योग्य नहीं होते उन्हें अभक्ष्य कहते हैं । बाईस प्रकार के अभक्ष्य प्रसिद्ध हैं, मैं छंद के द्वारा अभक्ष्य के नाम बताता हूँ ।

दिनेश – हाँ, भाई साहब, अवश्य बतायें । छंद से तो जल्दी समझ में आ जाएगा और याद भी जल्दी हो जायेगा ।

जिनेश – अच्छा तो सुनो –

ओला, घोरबड़ा, निशिभोजन, बहुबीजा, बैंगन, संधान ।
बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, जो फल होय अजान ।।
कन्दमूल, माटी, विष, आमिष, मधु, माखन, अरु मदिरापान ।
फल अति तुच्छ, तुषार, चलित रस, जिनमत ये बाईस अखान ।।

दिनेश – इस छंद का अर्थ बतायें तो बहुत अच्छा होगा ।

जिनेश – ओला (बर्फ), दही बड़ा (यह द्विदल है अर्थात् उड़द, मूंग, चना, मसूर आदि जिनके समान दो टुकड़े हो जाते हैं ऐसे अन्न से बनी चीजों को दूध, दही, मही के साथ खाने से द्विदल होता है, द्विदल में मुख की लार का संयोग होने से अनेक जीव उत्पन्न हो जाते हैं ।

रात्रि भोजन । बहुबीजा – ऐसे फल जिनके बीजों का अलग–अलग स्थान न हो जैसे –कुचला, बैंगन, कचरिया, टमाटर आदि । बैंगन, अचार, पाँच उदम्बर फल तथा जिसे पहिचानते न हों ऐसा अज्ञात फल । कन्दमूल – मूली, गाजर, प्याज, लहसुन, शकरकंद आदि । मिट्टी, विष, मधु, मांस, मक्खन, मदिरा, तुच्छ फल । जिस शाक या फल में बीज न आये हों । तुषार, चलित रस – जिसका स्वाद बदल गया हो । यह बाईस अभक्ष्य कहलाते हैं ।

दिनेश – क्या अभक्ष्य के दूसरे प्रकार से भी भेद होते हैं ?

जिनेश – हाँ, अभक्ष्य के दूसरे प्रकार से पाँच भेद होते हैं –

१. बहु त्रस घात अभक्ष्य, २. बहु स्थावर घात अभक्ष्य
३. प्रमादकारक या मादक अभक्ष्य ४. अनिष्टकारक अभक्ष्य
५. अनुपसेव्य अभक्ष्य ।

दिनेश – यह तो बहुत अच्छी तरह समझ में आ गया कि अभक्ष्य के दूसरे प्रकार से भी भेद हैं, लेकिन

इनका स्वरूप समझ में नहीं आया।

जिनेश – वह भी समझ में आ जाएगा। देखो भाई ! जिन पदार्थों के खाने से अनेक त्रस जीवों का घात होता है, उन्हें बहु त्रस घात अभक्ष्य कहते हैं। जैसे – पाँच उदम्बर फल, घुना हुआ अनाज, डबलरोटी, फूलगोभी, मर्यादा रहित अचार, मर्यादा रहित पापड़ आदि ।

दिनेश – और बहु स्थावर घात अभक्ष्य क्या होता है ?

जिनेश – जिन पदार्थों के सेवन से अनन्त स्थावर जीवों का घात होता है उन्हें बहु स्थावर घात अभक्ष्य कहते हैं। जैसे – मूली, गाजर, लहसुन, प्याज, शकरकंद, आलू, अदरक आदि।

दिनेश – ओह ! एक रसना इन्द्रिय के विषय में फंसकर हम कितने जीवों की हिंसा कर रहे हैं !

जिनेश – भाई, यही तो समझना है कि जीव इन्द्रियों के विषय में फंसकर ही असंयम और पाप करता है। इन्द्रियों पर काबू पाना ही संयम कहलाता है।

दिनेश – बहुत अच्छा, अब प्रमाद कारक अभक्ष्य के संबंध में समझायें ?

जिनेश – जिन पदार्थों के खाने या सेवन करने से प्रमाद तथा विषय विकार बढ़ता है और नशा चढ़ता है उन्हें प्रमादकारक या मादक अभक्ष्य कहते हैं।
जैसे – शराब, गांजा, भांग, अफीम आदि।

दिनेश – बीड़ी, तम्बाकू, पाउच आदि भी अभक्ष्य हैं क्या ?

जिनेश – हाँ – बीड़ी, तम्बाकू, सिगरेट, पाऊच आदि सभी नशीली चीजें हैं, इसलिये यह सब भी मादक अभक्ष्य ही हैं।

दिनेश – यह अनिष्टकारक अभक्ष्य क्या होता है ?

जिनेश – जो पदार्थ भक्ष्य होने पर भी प्रकृति के विरुद्ध हों, उन्हें अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे – हैजा के रोगी को जल, वायु रोगी को चने की दाल, खांसी वाले को दही, घी आदि।

दिनेश – अरे ! जल, चने की दाल, घी आदि पदार्थ तो भक्ष्य हैं, फिर भी उन्हें अभक्ष्य कहा जा रहा है।

जिनेश – जैन दर्शन आत्मा को स्वस्थ रखने के साथ–साथ शरीर को भी स्वस्थ रखने की कला सिखाता है। जल आदि पदार्थ सेवन करने योग्य होने पर भी रोग के समय सेवन करने पर हानिकारक हैं, इसलिये उन्हें अनिष्टकारक कहा गया है।

दिनेश – और यह अनुपसेव्य अभक्ष्य का क्या स्वरूप है ?

जिनेश – जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हों उन्हें अनुपसेव्य अभक्ष्य कहते हैं। जैसे – पान का उगाल, मूत्र, लार आदि।

दिनेश – अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से हिंसा तो होती ही है, क्या और भी हानियाँ होती हैं ?

जिनेश – अभक्ष्य पदार्थों के सेवन करने से बहु हिंसा का दोष लगता है, इसके साथ–साथ और भी हानियाँ हैं। जैसे – हेय, उपादेय का ज्ञान नहीं रहता, मन चंचल रहता है, बुद्धि भ्रमित रहती है, पुण्य क्षय होता है, पाप बढ़ता है और अन्त में नरक आदि दुर्गतियों के दुःख भोगना पड़ते हैं।

दिनेश – ओह ! अभक्ष्य पदार्थों के सेवन से इतना अहित होता है, मेरा तो हृदय कांप गया। वास्तव में हिंसा आदि पापों से बचने के लिए अभक्ष्य का त्याग कर नैतिकता एवं सदाचार का पालन करना चाहिये। सदाचार से ही सद्गति प्राप्त होती है और जीवन सुखमय बनता है।

जिनेश – सदाचार की महिमा ही ऐसी है कि सदाचार, पतित मनुष्य को भी उन्नति के मार्ग में लगा देता

है। सदाचारी जीवन बनाने के लिए इन्द्रियों पर संयम रखते हुए अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करना चाहिये। यह सदाचार ही अध्यात्म साधना का प्रवेश द्वार है।

दिनेश – भाई साहब, आपसे बहुत प्रेरणा प्राप्त हुई। सदाचार का यथार्थ स्वरूप समझ में आया इसी प्रकार मार्गदर्शन देते रहियेगा।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न – १ अभक्ष्य किसे कहते हैं, भेद सहित बताइये ?

प्रश्न – २ कन्दमूल कौन सा अभक्ष्य है ?

प्रश्न – ३ अभक्ष्य भक्षण से कौन–कौन सी हानियाँ होती हैं ?

प्रश्न – ४ सदाचार क्या है ?

प्रश्न – ५ सदाचार का क्या महत्व है ?

पाठ – ६

वस्तु विज्ञान

प्रश्न – संसार में मूलतः कितनी वस्तुएँ हैं ?

उत्तर – संसार में मूलतः दो वस्तुएँ हैं – जीव और अजीव।

प्रश्न – जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें जानने देखने की शक्ति होती है उसे जीव कहते हैं।
जैसे – चींटी, मनुष्य, गाय, देव आदि।

प्रश्न – अजीव किसे कहते हैं।

उत्तर – जिसमें देखने जानने की शक्ति नहीं होती है उसे अजीव कहते हैं।
जैसे – टेबिल, पेन, थाली, अलमारी आदि।

प्रश्न – जीव कौन सी इन्द्रिय से जाना जाता है ?

उत्तर – जीव ज्ञान स्वभावी चैतन्य तत्त्व है, वह इन्द्रियों के द्वारा नहीं जाना जाता, अनुभव में ही आता है। भेदज्ञान के द्वारा हम जीव को जान सकते हैं, उसकी पहिचान अनुभूति में ही होती है।

प्रश्न – अजीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – अजीव के पाँच भेद हैं – पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इनमें पुद्गल द्रव्य रूपी है, उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि पाये जाते हैं और धर्म, अधर्म, आकाश, काल अरूपी हैं, उनमें स्पर्शादि गुण नहीं होते।

प्रश्न – अजीव की विशेषता क्या है ?

उत्तर – अजीव में ज्ञान नहीं होता और वह सुख– दुःख का अनुभव नहीं करता यही अजीव की विशेषता है।

प्रश्न – आँख देखती है, कान सुनते हैं, फिर शरीर अजीव कैसे हो सकता है ?

उत्तर – आँख देखने में और कान सुनने में निमित्त मात्र हैं, जीव ही इन्द्रियों के माध्यम से देखता –सुनता है। जिस शरीर में से आत्मा निकल जाती है उस मृत शरीर के आँख, कान देखते–सुनते नहीं हैं इसलिये शरीर अजीव ही है।

प्रश्न – जीव और शरीर को भिन्न–भिन्न जानने के लिये क्या विचार करना चाहिये ?

उत्तर – १. मैं जीव हूँ , मुझमें ज्ञान–दर्शन चेतना है।
२. शरीर अजीव है, इसमें ज्ञान–दर्शन चेतना नहीं है।

प्रश्न – जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – जीव के दो भेद हैं – संसारी और मुक्त।

प्रश्न – संसारी जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीव कर्म सहित हैं और संसार में जन्म–मरण करते हैं उन्हें संसारी जीव कहते हैं।

प्रश्न – मुक्त जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन्होंने आठ कर्मों का नाश कर दिया है और संसार के जन्म–मरण आदि दु:खों से छूटकर मोक्ष प्राप्त कर लिया है, ऐसे सिद्ध परमात्मा को मुक्त जीव कहते हैं।

प्रश्न – संसारी जीव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – संसारी जीव के दो भेद हैं – स्थावर और त्रस।

जीव के भेद (संसारी और मुक्त)

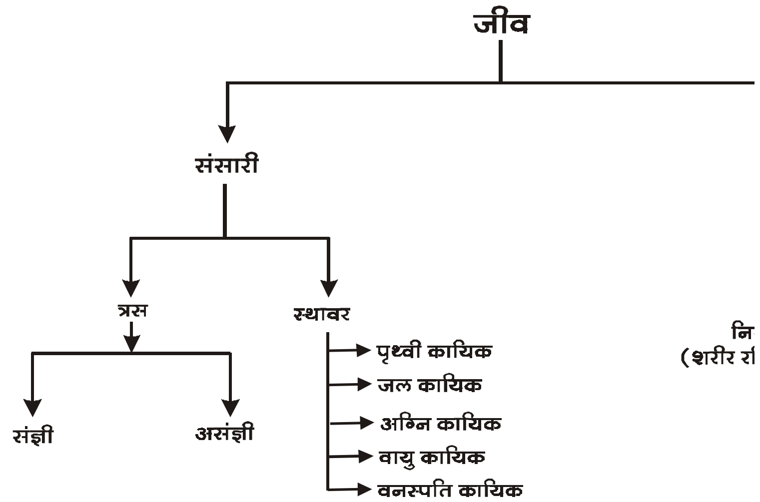

प्रश्न – स्थावर जीव किसे कहते हैं, वे कितने और कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – जिन जीवों को एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है उन्हें स्थावर जीव कहते हैं।
स्थावर जीव के पाँच भेद हैं –
१.पृथ्वी कायिक,२. जल कायिक, ३. अग्नि कायिक, ४. वायुकायिक,५. वनस्पति कायिक।

प्रश्न – पंच स्थावर जीवों का क्या स्वरूप है, उदाहरण सहित बताइये ?

उत्तर – १. पृथ्वी कायिक – पृथ्वी ही जिनका शरीर है उन्हें पृथ्वी कायिक जीव कहते हैं। जैसे – मिट्‌टी, पत्थर आदि।

२. जल कायिक – जल ही जिनका शरीर है उन्हें जल कायिक जीव कहते हैं। जैसे – पानी, बर्फ, ओला, ओस आदि।

३. अग्नि कायिक – अग्नि ही जिनका शरीर है उन्हें अग्निकायिक जीव कहते हैं। जैसे – अग्नि, अंगारे, दीपक की लौ आदि।

४. वायुकायिक – वायु ही जिनका शरीर है उन्हें वायुकायिक जीव कहते हैं। जैसे – हवा, आंधी, तूफान आदि।

५. वनस्पति कायिक – वनस्पति ही जिनका शरीर होता है उन्हें वनस्पति कायिक जीव कहते हैं। जैसे – वृक्ष, लता, घास आदि।

प्रश्न – त्रस जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय जीवों को त्रस जीव कहते हैं।

प्रश्न – विकलत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर – दो इन्द्रिय से चार इन्द्रिय तक जीवों को विकलत्रय कहते हैं।

प्रश्न – एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीव अलग–अलग इन्द्रिय वाले क्यों होते हैं ?

उत्तर – कर्म का उदय अलग–अलग होने से जीव अलग–अलग इन्द्रियों वाले होते हैं। जैसे–स्थावर नाम कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय स्थावर पर्याय धारण करते हैं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति काय में जन्म लेते हैं। त्रस नाम कर्म के उदय से जीव दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पाँच इन्द्रिय रूप त्रस पर्याय में जन्म लेते हैं। इस प्रकार कर्म के उदय की भिन्नता होने से जीव अलग–अलग इन्द्रियों वाले होते हैं।

जिनवाणी स्तुति

हे जिनवाणी माता, तुम जग कल्याणी हो।
सद्ज्ञान प्रदान करो, तुम शिव सुखदानी हो॥
मिथ्यात्व मोहतम का, चहुँ ओर अंधेरा है।
माँ तुम बिन इस जग में कोई नहीं मेरा है॥
भव पार करो नैया, तुम जिनवर वाणी हो ...
चहुँगति के दुःख भोगे, पल भर न सुख पाया।
अति पुण्य उदय से माँ, तव चरणों में आया॥
सुखमय कर दो मुझको, सुखमय हर प्राणी हो ...
आतम शुद्धातम है, तुमने ही बताया है।
रत्नत्रय की महिमा, सुन मन हरषाया है॥
मैं करुं सदा वंदन, तुम सब गुणखानी हो ...

रचयिता – ब्र. बसन्त

पाठ – ७
गति बोध

गति की परिभाषा और भेद –

जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं।

गति के चार भेद हैं – नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति।

नरकगति का स्वरूप, भेद और स्थान –

नरक गति नाम कर्म के उदय से नरक पर्याय में जन्म होने को नरक गति कहते हैं। इस गति में जन्म लेने वाले जीव नारकी कहलाते हैं। नरकों की सात भूमियाँ होती हैं – रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा, महातम प्रभा। यह सात नरक भूमियाँ इस पृथ्वी के नीचे–नीचे की ओर हैं। नरकों में तीव्र गर्मी, तीव्र सर्दी और अत्यन्त दुर्गन्ध रहती है। भूख–प्यास बहुत लगती है किन्तु अन्न का एक दाना और पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती। वहाँ की आयु कम से कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक ३३ सागर होती है। वहाँ दुःख ही दुःख हैं। आयु पूर्ण हुए बिना नारकी जीवों का मरण नहीं होता।

नरक में जाने का कारण –

सात व्यसनों का सेवन करना, बहुत आरंभ–परिग्रह में आसक्त रहना, हिंसादि पाप करना, तीव्र बैर विरोध के भाव रखना, मद्य–माँस आदि का सेवन करना। इन पाप परिणामों से जीव नरक में जाता है।

तिर्यंच गति का स्वरूप –

तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय से तिर्यंच पर्याय में जन्म होने को तिर्यंच गति कहते हैं। हाथी, घोड़ा,कुत्ता, बिल्ली, लट, चींटी, भौंरा आदि तिर्यंच गति के जीव हैं।

तिर्यंच गति के दुःख –

तिर्यंच गति में जन्म–मरण, भूख–प्यास, छेदन–भेदन,वध–बंधन, भारवहन आदि असंख्यात दुःख हैं।

तिर्यंच गति में जाने का कारण –

मायाचारी करना, परिग्रह में मूर्च्छित रहना, मिथ्या मार्ग का उपदेश देना, कपट भाव रखना, दुर्जन स्वभाव होना, कम भाव वाली वस्तु अधिक भाव वाली वस्तु में मिलावट करके बेचना, बड़ों का अपमान करना, दूसरों पर झूठा दोषारोपण करना इत्यादि कार्य करने से जीव तिर्यंच गति में जाता है।

मनुष्य गति का स्वरूप –

मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से मनुष्य पर्याय में जन्म लेने को मनुष्य गति कहते हैं। पुरुष –स्त्री, बालक–बालिका यह मनुष्य गति के जीव हैं।

मनुष्य गति के दुःख –

मनुष्य गति में गर्भ अवस्था और जन्म के अत्यंत दुःख हैं। बाल अवस्था में अज्ञानता का दुःख है तथा पराधीनता, भूख–प्यास, मानहानि, रोग, दरिद्रता, दासता, वृद्धावस्था आदि के दुःख प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं।

मनुष्य गति में जन्म लेने का कारण –

विनम्र होना, सरलता–सहजता होना, अल्प आरंभ, अल्प परिग्रही होना, मंद कषाय एवं भद्र प्रकृति होना, धर्म कार्य में रुचि होना, दया–दान परोपकार करना, मृदुभाषी होना, समता धारण करना आदि परिणाम मनुष्य गति में जन्म लेने के कारण हैं।

मनुष्य की विशेषता –

जो विचारवान, विवेकवान है और मन के द्वारा हेय–उपादेय, तत्त्व अतत्त्व एवं धर्म–अधर्म का स्वरूप समझने की जिसमें योग्यता है, यही मनुष्य की विशेषता है।

मनुष्यों का निवास –

मनुष्य अढ़ाई द्वीप–जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करार्धद्वीप में रहते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के आगे मनुष्य नहीं जा सकते।

देव गति का स्वरूप –

देव गति नाम कर्म के उदय से देव पर्याय में उत्पन्न होने को देवगति कहते हैं। भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देव गति के भेद हैं।

देव गति के दु:ख –

दूसरे देवों के ऐश्वर्य एवं ऋद्धियों को देखकर ईर्ष्या करना, अधिक से अधिक विषयों की चाह की दाह में जलना, मरण के ६ माह पूर्व गले की मंदार माला मुरझाने पर संक्लेश भाव करना आदि देवगति के दु:ख हैं।

देवगति में जन्म लेने का कारण –

स्वभाव में सरलता होना, व्रतों का पालन करना, सम्यक्त्व होना, सराग संयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा, बालतप, दान–पुण्य आदि के परिणामों से जीव देवगति में जाता है।

देव की विशेषता –

जो इच्छानुसार नाना प्रकार की विक्रिया करते हैं, आठ ऋद्धियों से युक्त होते हैं और जिनका प्रकाशमान दिव्य शरीर होता है, उन्हें देव कहते हैं।

चारों गतियों में सबसे अच्छी गति कौनसी है –

चारों गतियों में कोई गति अच्छी नहीं है। मनुष्य गति को सबसे अच्छी गति इसलिये कहा है क्योंकि मनुष्य गति से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस गति में जीव संयम तप को धारण करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है इसलिये मनुष्य गति सबसे अच्छी गति है। सबसे खराब तिर्यंच गति है क्योंकि वहाँ निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण होता है और ज्ञान का क्षयोपशम अक्षर के अनंतवें भाग प्रमाण रहता है। ज्ञान ही जीव का लक्षण है और वही तिर्यंच गति में सबसे कम होता है इसलिये तिर्यंच गति सबसे खराब गति है।

संसारातीत सिद्ध भगवान –

सिद्ध भगवान चारों गति के परिभ्रमण से मुक्त हैं इसलिये वे चार गतियों में से किसी भी गति के जीव नहीं हैं। कर्म रहित हो जाने से वे संसारातीत सिद्ध गति के जीव कहलाते हैं।

पंडित

कर्म अस्ट विनिर्मुक्तं, मुक्ति स्थानेषु तिस्टिते।
सो अहं देह मध्येषु, यो जानाति स पंडिता ॥

आठों कर्मों से रहित सिद्ध परमात्मा जो मुक्ति स्थान सिद्ध क्षेत्र में विराजते हैं, वैसा ही मैं सिद्ध स्वरूपी परमात्मा इस देह में विराजमान हूँ, जो तत्त्व ज्ञानी ऐसा जानता है वही पंडित है।

पाठ – ८

तत्त्व मंगल

देव को नमस्कार

तत्त्वं च नन्द आनन्द मउ, चेयननंद सहाउ ।
परम तत्त्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सुभाउ ॥

अर्थ – आत्म तत्त्व नन्द, आनंद मयी, चिदानन्द स्वभावी है, यही परम तत्त्व निर्विकल्प शुद्धात्मा है, ऐसे सिद्ध स्वभाव को मैं नमस्कार करता हूँ।

विशेष जानने योग्य –

देव को नमस्कार संबंधी यह गाथा आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री ममलपाहुड़ जी ग्रंथ के देवदिप्ति नामक पहले फूलना की पहली गाथा है। इस गाथा में सच्चे देव को नमस्कार किया गया है। व्यवहार से हमारे सच्चे देव अरिहंत और सिद्ध परमात्मा हैं। निश्चय से हमारा सच्चा देव निज शुद्धात्मा है। आचार्य इस गाथा में कहते हैं कि सच्चा देव नन्द, आनन्द मयी चिदानन्द स्वभाव वाला निर्विकल्प स्वरूप में रहता है। अरिहंत और सिद्ध भगवान इसी प्रकार अपने आनन्द स्वरूप में लीन हैं, हमारे आदर्श हैं इसलिये व्यवहार से सच्चे देव हैं। उन परमात्मा के समान मेरा आत्मा भी स्वभाव से परम शुद्ध तत्त्व, विंद पद स्वरूप है यही मुझे इष्ट आराध्य है इसलिये निश्चय से निज शुद्धात्मा हमारा सच्चा देव है। इसी शुद्धात्म स्वरूप मय सिद्ध स्वभाव का मैं ध्यान करता हूँ। साक्षात् भगवन्तों के स्वरूप का विचार कर अपने सिद्ध स्वभाव की शरण लेना ही सच्चे देव की यथार्थ वन्दना है।

गुरु को नमस्कार

गुरु उवएसिउ गुपित रुई, गुपित न्यान सहकार।
तारन तरन समर्थ मुनि, गुरु संसार निवार ॥

अर्थ – गुप्त रुचि अर्थात् जो आत्मा अनादिकाल से जानने में नहीं आया, ऐसे आत्म स्वभाव को जानने का जो उपदेश देते हैं। वे आत्म ज्ञान को प्राप्त करने का मार्ग बताते हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनि सच्चे गुरु हैं जो संसार सागर से स्वयं तिरने में और जगत के जीवों को तारने में निमित्त हैं।

विशेष जानने योग्य –

गुरु को नमस्कार संबंधी यह गाथा श्री ममलपाहुड़ जी ग्रन्थ के गुरू दिप्ति नामक तीसरे फूलना की पहली गाथा है। इस गाथा में सच्चे गुरु का स्वरूप बताया गया है। जो निर्ग्रन्थ साधु वस्तु स्वरूप का यथार्थ उपदेश देते हैं, जगत के जीवों को कल्याण का मार्ग बताते हैं, जिनके मन में संसारी कामना और कोई स्वार्थ नहीं हैं, जो निस्पृह आकिंचन्य वीतरागी साधु हैं वे सच्चे गुरु हैं। जो स्वयं संसार से तिरते हैं और दूसरे जीवों को तारने में निमित्त हैं इसलिये तारण तरण कहलाते हैं। निश्चय से निज अंतरात्मा हमारा सच्चा गुरु है। श्री गुरु तारण स्वामी जी ने स्वयं तिरने का और जगत के जीवों को संसार से पार होने का मार्ग प्रशस्त किया इसलिये

उन्हें तारण तरण कहते हैं। सच्चे गुरु काष्ठ की नौका की तरह होते हैं और कुगुरु पत्थर की नौका की तरह होते हैं इसलिये विवेक पूर्वक सच्चे गुरु की शरण में जाना चाहिये।

कहा भी है – ' पानी पिओ छानकर, गुरु बनाओ जानकर' गुरु का जीवन में बहुत महत्व है, बिना गुरु के ज्ञान नहीं होता है, श्री जिन तारण स्वामी जी ने कहा है –

जो बिन सुने सयानो होय।
तो गुरु सेवा करे न कोय ॥

धर्म को नमस्कार –

धम्मु जु उत्तउ जिनवरहिं, अर्थ तिअर्थह जोउ।
भय विनास भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ ॥

अर्थ – जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि प्रयोजनीय तिअर्थ अर्थात् रत्नत्रय स्वरूप को संजोओ यही धर्म है। जो भव्य जीव तिअर्थ का मनन और अनुभव करते हैं उनके भय विनश जाते हैं और भविष्य में उन्हें ममल ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है।

विशेष जानने योग्य –

धर्म को नमस्कार संबंधी यह गाथा श्री ममलपाहुड़ जी ग्रन्थ के धर्मदिप्ति नामक पाँचवें फूलना की पहली गाथा है। इसमें धर्म का स्वरूप बतलाया है। जिनेन्द्र भगवान की दिव्य देशना है कि तिअर्थमयी रत्नत्रय स्वरूप को संजोना ही धर्म है। तिअर्थ अर्थात् उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ और सहकार अर्थ। यह तीनों अर्थ क्रमशः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के सूचक हैं। अभिप्राय यह है कि रत्नत्रय की उपलब्धि होना ही धर्म है। रत्नत्रय आत्मा का स्वभाव है। आत्मा को देखना जानना–पहिचानना और अनुभव करना धर्म है। जो भव्य जीव रत्नत्रय स्वरूप आत्मा का चिंतन अनुभवन तथा साधना–आराधना करते हैं उनके भय विनश जाते हैं। वे जीव उत्तरोत्तर पंचम ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं।

धर्म की शरण से ही जीव, आत्मा से परमात्मा होता है। संसार में धर्म ही एकमात्र शरण लेने योग्य है। इसी से जीवन सुख–शांति–आनन्दमय बनता है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – शुद्धात्म देव से क्या अभिप्राय है ?
प्रश्न २ – गुरु का क्या स्वरूप है ?
प्रश्न ३ – धर्म का क्या स्वरूप है ?
प्रश्न ४ – तारण तरण किसे कहते हैं ?
प्रश्न ५ – तीन रत्नत्रय कौन से हैं ?

पाठ – १

आओ सीखें

धर्म एक है दो श्रुत ज्ञान, तीन चेतना चार हैं ध्यान ।
पाँच भाव छह लेश्या जान, सप्त शील धारे गुणवान ।।
आठ कर्म नौ लब्धिसार, दस प्राणों में जीव अपार ।
ग्यारह दस पूर्वी आचार्य, द्वादशांग पहिचानों आर्य ।।
तेरह महाव्रत चौदह ग्रन्थ, पन्द्रह योग जान लो सन्त ।
सोलह ध्यान नियम हैं सत्रह, आप्त, रहित हैं दोष अठारह ।।
जीव समास कहे उन्नीस, पुद्गल के गुण जानो बीस ।
भाव औदयिक हैं इक्कीस, तज दो सब अभक्ष्य बाईस ।।
करलो अब निज पर का ज्ञान, चौबीस ठाणा जीव स्थान ।
भव्य ! कषाय तजो पच्चीस, भव तरकर बैठो जग शीश ।।

विस्तार बोध

एक धर्म	–	आत्मा का स्वभाव ।
दो श्रुत ज्ञान	–	भाव श्रुत, द्रव्य श्रुत ।
तीन चेतना	–	कर्म चेतना, कर्मफल चेतना, ज्ञान चेतना ।
चार ध्यान	–	आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, शुक्ल ध्यान ।
जीव के पाँच भाव	–	औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक भाव ।
छह लेश्या	–	कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या ।
सप्त शील	–	तीन गुण व्रत, चार शिक्षा व्रत ।
आठ कर्म	–	ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय ।
नौ लब्धि	–	केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र ।
दस प्राण	–	पाँच इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण) तीन बल (मन, वचन, काय), आयु, श्वासोच्छ्वास ।
ग्यारह दस पूर्वी आचार्य	–	विशाख, प्रौष्ठिल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव, धर्मसेन ।
द्वादशांग	–	आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग, ज्ञातृधर्म कथांग, उपासकाध्ययन अंग, अंतःकृत दशांग, अनुत्तरोपपादिक अंग, प्रश्न व्याकरणांग, विपाक सूत्रांग, दृष्टि वादांग ।
तेरह महाव्रत	–	पाँच महाव्रत – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह । पाँच समिति– ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापना समिति । तीन गुप्ति– मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति ।

चौदह ग्रन्थ –	श्री मालारोहण जी, श्री पण्डित पूजा जी, श्री कमल बत्तीसी जी, श्री श्रावकाचार जी, श्री ज्ञान समुच्चय सार जी, श्री उपदेश शुद्ध सार जी, श्री त्रिभंगी सार जी, श्री चौबीस ठाणा जी, श्री ममलपाहुड़ जी, श्री खातिका विशेष जी, श्री सिद्ध स्वभाव जी, श्री सुन्न स्वभाव जी, श्री छद्मस्थ वाणी जी, श्री नाम माला जी।
पन्द्रह योग –	चार मनोयोग–सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभय मनोयोग। चार वचन योग–सत्य वचन योग, असत्य वचन योग, उभय वचन योग, अनुभय वचन योग। सात काय योग – औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियक, वैक्रियक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्माण।
सोलह ध्यान –	चार आर्त ध्यान – इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिंतवन, निदान बंध। चार रौद्र ध्यान – हिंसानंदी, मृषानंदी, चौर्यानंदी, परिग्रहानंदी। चार धर्म ध्यान – आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय, संस्थान विचय। चार शुक्ल ध्यान – पृथक्त्व वितर्क वीचार, एकत्व वितर्क वीचार , सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति, व्युपरत क्रिया निवृत्ति।
सत्रह नियम –	भोजन, षट्रस, जल, कुमकुम विलेपन, पुष्प, पान, गीत, संगीत, नृत्य, ब्रह्मचर्य, स्नान, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शयन, आसन, सचित्त वस्तु। (प्रतिदिन संकल्प करने के सत्रह नियम)।
अठारह दोष –	भूख, प्यास, रोग, बुढ़ापा, जन्म, मरण, भय, राग, द्वेष, गर्व, मोह, चिंता,मद, अचरज, निद्रा, अरति, खेद, स्वेद।
उन्नीस जीव समास –	पृथ्वीकाय बादर व सूक्ष्म, अपकाय बादर व सूक्ष्म, अग्निकाय बादर व सूक्ष्म, वायुकाय बादर व सूक्ष्म, नित्यनिगोद बादर व सूक्ष्म, इतर निगोद बादर व सूक्ष्म, सप्रतिष्ठित प्रत्येक, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय।
बीस विशेष गुण –	स्पर्श के आठ – हल्का, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठंडा, गरम। रस के पाँच – खट्टा, मीठा, कड़वा, चरपरा, कषायला। गंध के दो – सुगंध, दुर्गन्ध। वर्ण के पाँच – काला, पीला, नीला, लाल, सफेद।
इक्कीस औदयिक भाव –	गति चार – नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव। कषाय चार – क्रोध, मान, माया, लोभ। लिंग तीन – स्त्री, पुरुष, नपुंसक। मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व। लेश्या छह – कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल।
बाईस अभक्ष्य –	ओला, दहीबड़ा, रात्रिभोजन, बहुबीजा, बैंगन, अचार मुरब्बा, बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, अनजान फल, कंदमूल, मिट्टी, विष, मांस, शहद, मक्खन, मदिरा, अत्यंत तुच्छ फल, तुषार, चलित रस वाली वस्तुएँ।

चौबीस जीव स्थान – गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, सैनी, आहारक, गुणस्थान, जीव समास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, उपयोग, ध्यान, आश्रव, योनि, कुलकोडि।

पच्चीस कषाय – अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ।
अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ।
प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ।
संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।
नौ नो कषाय – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – आठ कर्म के नाम लिखिये।
प्रश्न २ – चौदह ग्रंथों के नाम लिखिये।
प्रश्न ३ – चार आर्तध्यान के नाम लिखिये।
प्रश्न ४ – चार रौद्रध्यान के नाम लिखिये।
प्रश्न ५ – पुद्गल के विशेष गुणों के नाम लिखिये। (कोई दस)
प्रश्न ६ – अभक्ष्य वस्तुओं के नाम लिखिये। (कोई दस)
प्रश्न ७ – नौ नो कषाय के नाम लिखिये।
प्रश्न ८ – चार कषायों के नाम लिखिये।

प्रेरणा गीत

बोल सको तो मीठा बोलो, कटुक बोलना मत सीखो ।
बचा सको तो जीव बचाओ, जीव मारना मत सीखो ।।
बदल सको तो कुपथ बदलो, सुपथ बदलना मत सीखो ।
बता सको तो राह बताओ, पथ भटकाना मत सीखो ।।
जला सको तो दीप जलाओ, हृदय जलाना मत सीखो ।
बिछा सको तो फूल बिछाओ, शूल बिछाना मत सीखो ।।
मिटा सको तो गर्व मिटाओ, प्यार मिटाना मत सीखो ।
कमा सको तो पुण्य कमाओ, पाप कमाना मत सीखो ।।
लगा सको तो बाग लगाओ, आग लगाना मत सीखो ।
बोल सको तो सच्चा बोलो, झूठ बोलना मत सीखो ।।

ज्ञान विज्ञान भाग -२

पाठ - १

आचार्य तारण तरण परिचय

परिचय

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज महान अध्यात्मवादी संत ज्ञानी महापुरुष थे। वे सोलहवीं शताब्दी में हुए थे। उनका जन्म मिति अगहन सुदी सप्तमी विक्रम सम्वत्१५०५ (ई. सन्१४४८) में पुष्पावती नगरी में हुआ था। पुष्पावती को वर्तमान में बिलहरी कहा जाता है, यह स्थान कटनी जिले में कटनी से १६ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है।

श्री तारण स्वामी के पिता का नाम श्री गढ़ाशाह जी और माता जी का नाम श्रीमती वीरश्री देवी था। तारण स्वामी के मामा श्री लक्ष्मण सिंघई सेमरखेड़ी में रहते थे। पाँच वर्ष की बाल्यावस्था में उनके माता-पिता उन्हें सेमरखेड़ी ले आये थे। उनकी शिक्षा सेमरखेड़ी और सिरोंज में हुई। धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे चंदेरी गये वहाँ भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति जी के सान्निध्य में धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया तथा स्वयं स्वाध्याय-मनन के द्वारा वस्तु स्वरूप का विशेष ज्ञान अर्जित किया।

तारण स्वामी बचपन से ही अत्यंत प्रज्ञावान और वैराग्यवान थे। ११ वर्ष की बाल्यावस्था में उन्हें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई। २१ वर्ष की किशोरावस्था में आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का संकल्प किया और सेमरखेड़ी के वन में स्थित गुफाओं में आत्म साधना करने लगे।

उनकी वैराग्य भावना निरन्तर वृद्धिंगत हो रही थी। संसार से विरक्ति एवं धर्म में अनुरक्ति होने से माँ की ममता और पिता की आशाएँ बहुत पीछे छूटती जा रहीं थीं फिर भी माता-पिता का आशीर्वाद उन्हें प्राप्त था। ३० वर्ष की युवावस्था में उन्होंने सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

आत्म निरीक्षण, धर्म आराधना करते हुए उन्होंने संयम-तप की कसौटी पर अपने आपको परख लिया। जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव को ज्ञान की साधना पूर्वक दूर किया और ६० वर्ष की उम्र में मिति अगहन सुदी सप्तमी, विक्रम सम्वत् १५६५ में उन्होंने वीतरागी मुनि दीक्षा धारण की। उनके वीतरागी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लाखों लोग उनके शिष्य बने। श्री नाममाला ग्रन्थ के अनुसार उनकी शिष्य संख्या तिरतालीस लाख पैंतालीस हजार तीन सौ इकतीस (४३,४५,३३१) है। आचार्य तारण स्वामी के शिष्यों के १५१ मण्डल थे। जिनके प्रमुख आचार्य श्री तारण स्वामी जी थे इसलिये उन्हें मण्डलाचार्य कहा जाता है।

- आध्यात्मिक क्रांति का उद्देश्य -

आचार्य श्री जिन तारण स्वामी ने जो आध्यात्मिक क्रांति की उसका उद्देश्य जन-जन को धर्म के नाम पर होने वाले आडम्बर और जड़वाद से मुक्त कर आत्म कल्याण का यथार्थ मार्ग प्रशस्त करना था। उन्होनें आगम में से शुद्ध अध्यात्म को निकाला। कुछ महानुभावों का मत है कि उस समय मुगलों का शासन था और उन लोगों द्वारा जैन धर्म और हिन्दू समाज के धार्मिक स्थलों पर आक्रमण कर मंदिरों को तोड़ा-फोड़ा जा रहा था इस कारण तारण स्वामी ने अध्यात्म का मार्ग अपना लिया किन्तु मुगलकालीन आक्रमण की घटनाओं से स्वामी जी की आध्यात्मिक क्रांति का संबंध नहीं है। वास्तविकता यह है कि

उन्होंने सच्चे देव, गुरु, शास्त्र और धर्म के स्वरूप को यथार्थ रूपेण समझकर आत्मकल्याण करने की देशना दी और धर्म को जाति-पांति के बंधन से परे मनुष्य मात्र को समझाया। इससे सिद्ध होता है कि देव, गुरु, धर्म की आराधना में आई हुई विकृतियों को दूर करने के लक्ष्य से उन्होंने शुद्ध अध्यात्म के मार्ग को प्रशस्त किया। इस प्रकार सत्यमार्ग से विचलित हुए प्राणियों को सन्मार्ग में स्थित करना उनकी आध्यात्मिक क्रांति का प्रमुख उद्देश्य था।

उपसर्ग और अतिशय -

आध्यात्मिक मार्ग में अबाध गति से चलते रहने के कारण उनके वीतरागता के प्रभाव को बढ़ते देखकर सत्यधर्म के विरोधी वर्ग द्वारा तारण स्वामी को जहर दिया गया, जिसका कोई भी प्रभाव उन पर नहीं हुआ, तब दूसरी बार तारण स्वामी को बेतवा नदी के गहरे जल में डुबाया गया। तीन बार डुबाने से तीनों स्थानों पर टापू बन गए जो आज मल्हारगढ़ के निकट बेतवा नदी में जिन तारण की गौरव गाथा गा रहे हैं। उन पर और भी अनेक उपसर्ग हुए किन्तु वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए।

तारण तरण श्रीसंघ परिचय -

आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज के विशाल संघ में ७ मुनिराज, ३६ आर्यिकायें, २३१ ब्रह्मचारिणी बहिनें, ६० व्रती श्रावक एवं ४३,४५,३३१ शिष्य थे।

श्रीसंघ के मुनिराजों के नाम-

श्री हेमनन्दि जी, श्री चित्रगुप्त जी, श्री चन्द्रगुप्त जी, श्री जयकीर्ति जी, श्री समन्तभद्र जी, श्री समाधिगुप्त जी, श्री भुवनन्द जी महाराज।

श्रीसंघ की ३६ आर्यिकायें -

१. कमल श्री, २. चरन श्री, ३. करन श्री, ४. सुवन श्री, ५. हंस श्री, ६. औकास श्री, ७. दिप्ति श्री, ८. सुदिप्ति श्री, ९. अभय श्री,१०. स्वर्क श्री, ११. अर्थ श्री,१२. विंद श्री,१३. नंद श्री, १४. आनन्द श्री, १५. समय श्री,१६. हिय रमन श्री, १७. अलष श्री, १८. अगम श्री १९. सहयार श्री २०. रमन श्री, २१. सुइरंज श्री, २२. सुइ उवन श्री, २३. षिपन श्री, २४. ममल श्री, २५. विक्त श्री २६. सुइ समय श्री, २७. सुनंद श्री, २८. हिययार श्री, २९. जान श्री, ३०. जयन श्री, ३१. लखन श्री ३२. लीन श्री, ३३. भद्र श्री, ३४. मइ उवन श्री, ३५. सहज श्री, ३६. पय उवन श्री, ।

प्रमुख शिष्यों के नाम -

रुइयारमण, विरउ ब्रह्मचारी, कमलावती, लुकमानशाह, चिदानंद चौधरी, दयालप्रसाद, लक्ष्मण पाण्डे, खेमराज पाण्डे, हियनन्द कुमार, तेजकुमार तारण, डालू, मनसुख, वैद्य, पाताले आदि प्रमुख शिष्य थे।

आचार्य पद व समाधि -

आचार्य तारण स्वामी मुनि पद पर ६ वर्ष ५ माह १५ दिन रहे। उनकी पूर्ण आयु ६६ वर्ष ५ माह १५ दिन की थी। मिति ज्येष्ठ वदी छठ विक्रम सम्वत् १५७२ (ई. सन्१५१५) में उन्होंने समाधिपूर्वक देह का त्याग किया।

तारण तरण तीर्थक्षेत्र -

१.श्री पुष्पावती (बिलहरी) - श्री तारण स्वामी की जन्म स्थली है, जो कटनी जिले में कटनी से १६

कि.मी. की दूरी पर स्थित है। **२. श्री सेमरखेड़ी जी –** दीक्षा एवं तपोभूमि है जहाँ पाँच गुफायें हैं, यह तीर्थ विदिशा जिले में सिरोंज से ७ कि. मी. की दूरी पर स्थित है। **३. श्री सूखा निसई जी** – धर्म प्रचार केन्द्र है, जो दमोह जिले में पथरिया स्टेशन से मात्र ७ कि.मी. की दूरी पर स्थित है। **४. श्री निसई जी (मल्हारगढ़) –** समाधि स्थल है, जो अशोकनगर जिले में मुंगावली से १४ कि.मी. की दूरी पर स्थित है।

विशेष – अनाद्यनंत चौबीसी के समस्त तीर्थंकर भगवंत नियम से श्री सम्मेदशिखर जी से मोक्ष जाते हैं। वर्तमान चौबीसी के बीस तीर्थंकर एवं करोड़ों वीतरागी साधु भी श्री सम्मेदशिखर जी से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। संपूर्ण देश के समग्र जैन समाज की श्रद्धा के केन्द्र शाश्वत तीर्थधाम श्री सम्मेदशिखर जी में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी की वाणी के प्रचार-प्रसार हेतु तारण भवन का निर्माण एवं अध्यात्म केन्द्र स्थापित किया गया है। यह तीर्थ झारखंड में स्थित है।

तारण तरण साहित्य परिचय –

श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने पाँच मतों में चौदह ग्रन्थों की रचना की, किस ग्रन्थ में कितनी गाथायें एवं सूत्र हैं उसका विवरण इस प्रकार है –

(१) विचारमत

१. श्री मालारोहण जी	–	३२ गाथा
२. श्री पण्डित पूजा जी	–	३२ गाथा
३. श्री कमल बत्तीसी जी	–	३२ गाथा

(२) आचारमत

१. श्री श्रावकाचार जी	–	४६२ गाथा

(३) सारमत

१. श्री ज्ञान समुच्चयसार जी	–	९०८ गाथा
२. श्री उपदेश शुद्ध सार जी	–	५८९ गाथा
३. श्री त्रिभंगी सार जी	–	२ अध्याय में ७१ गाथा

(४) ममलमत

१. श्री चौबीस ठाणा जी	–	५ अध्याय गद्यमय एवं २७ गाथा
२. श्री ममल पाहुड़ जी	–	३२०० गाथा (१६४ फूलना)

(५) केवल मत

१. श्री खातिका विशेष जी	–	१०४ सूत्र
२. श्री सिद्ध स्वभाव जी	–	२० सूत्र
३. श्री सुन्न स्वभाव जी	–	३२ सूत्र
४. श्री छद्मस्थ वाणी जी	–	१२ अध्याय
५. श्री नाम माला जी	–	गद्य ग्रन्थ

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – आचार्य प्रवर तारणस्वामी जी का संक्षिप्त परिचय दीजिये ?

प्रश्न २ – आध्यात्मिक क्रांति क्या है ? श्री तारण स्वामी का साहित्यिक परिचय देते हुए समझाइये।

पाठ – २

श्रावक परिचय

प्रश्न – श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर – सात व्यसन के त्याग पूर्वक जो अष्ट मूलगुणों का पालन करता हो, तत्त्वार्थ श्रद्धानी एवं आत्मानुभवी हो, सच्चे देव, गुरु, धर्म का आराधक हो, पानी छानकर पीता हो, रात्रि भोजन का त्यागी हो उसे श्रावक कहते हैं।

प्रश्न – श्रावक की कितनी विशेषताएँ होती हैं ?

उत्तर – 'श्रावक'शब्द में तीन अक्षर हैं – 'श्र' 'व' और 'क' इन तीन अक्षरों से श्रावक की तीन विशेषतायें होती हैं – श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान। श्रावक इन तीन विशेषताओं सहित होता है।

प्रश्न – 'श्रद्धावान' का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – श्रावक सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र का सम्यक् श्रद्धानी होता है, यही श्रद्धावान का अभिप्राय है।

प्रश्न – सच्चे देव कौन हैं, जिनके प्रति श्रद्धावान होना चाहिये ?

उत्तर – आत्मा स्वभाव से शुद्ध, ज्ञान–दर्शन का धारी परमात्म स्वरूप है यही इष्ट और प्रयोजनीय है इसलिये निज शुद्धात्मा सच्चा देव है। शुद्धात्म स्वरूप का ज्ञान वीतरागी अरिहंत और सिद्ध परमात्मा द्वारा होता है इसलिये व्यवहार से सच्चे देव अरिहंत और सिद्ध परमात्मा हैं जिनके प्रति श्रद्धावान होना चाहिये।

प्रश्न – सच्चे गुरु कौन हैं, जिनके प्रति श्रद्धावान होना चाहिये ?

उत्तर – निश्चय से निज अंतरात्मा सच्चा गुरु है तथा जिनके द्वारा अंतरात्मा एवं सच्चे देव गुरु शास्त्र का ज्ञान होता है वे निर्ग्रन्थ वीतरागी साधु व्यवहार से सच्चे गुरु हैं।

प्रश्न – निर्ग्रन्थ और वीतरागी का क्या अर्थ है ?

उत्तर – राग–द्वेष से रहित होने को वीतरागी और चौबीस प्रकार के परिग्रह से रहित होने को निर्ग्रन्थ कहते हैं। इस प्रकार साधु २४ परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ वीतरागी होते हैं।

प्रश्न – परिग्रह के २४ भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – परिग्रह के मूल भेद दो हैं – अंतरंग परिग्रह और बहिरंग परिग्रह। अंतरंग परिग्रह के **चौदह भेद** –१. मिथ्यात्व, २. क्रोध, ३. मान, ४. माया, ५. लोभ, ६. हास्य, ७. रति, ८. अरति, ९. शोक, १०. भय, ११. जुगुप्सा, १२. स्त्रीवेद,१३. पुरुष वेद, १४. नपुंसक वेद। बाह्य परिग्रह के **दस भेद** – १. क्षेत्र (खेत जमीन), २. वास्तु (मकान), ३. हिरण्य (चांदी), ४. स्वर्ण (सोना), ५. धन (गाय,भैंस आदि), ६. धान्य (अनाज), ७. दासी (नौकरानी), ८. दास (नौकर), ९. बर्तन (भाण्ड),१०. वस्त्र (कुप्य)। इस प्रकार परिग्रह के मूलभेद दो और उत्तर भेद २४ होते हैं।

प्रश्न – सच्चा शास्त्र किसे कहते हैं, जिस पर श्रद्धा करना चाहिये ?

उत्तर – जिसमें सच्चे देव गुरु शास्त्र की महिमा हो, आचार – विचार क्रियाओं का प्रतिपादन हो। जिसमें ज्ञान की उत्पत्ति, कर्मों की निर्जरा और मुक्ति मार्ग का कथन किया गया हो उसे सच्चा

शास्त्र कहते हैं।

प्रश्न – सच्चा धर्म क्या है, जिसकी श्रद्धा करना चाहिये ?

उत्तर – निश्चय से आत्मा का चेतन लक्षण स्वभाव धर्म है और व्यवहार से रत्नत्रय, उत्तमक्षमा आदि भाव धर्म है जिसका श्रद्धान आराधन करना चाहिये। इस प्रकार श्रावक सच्चे देव गुरु शास्त्र धर्म का श्रद्धानी होने से श्रद्धावान कहलाता है।

प्रश्न – विवेकवान का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – विवेकवान का अभिप्राय है–हित अहित के विवेक पूर्वक अपने आत्म कल्याण करने में सावधान रहना।

प्रश्न – भेदज्ञान, तत्त्व निर्णय का अभ्यास किस प्रकार करना चाहिये ?

उत्तर – **भेदज्ञान –** इस शरीर आदि से भिन्न मैं एक अखण्ड अविनाशी चैतन्य तत्त्व भगवान आत्मा हूँ, यह शरीर आदि मैं नहीं और यह मेरे नहीं।

तत्त्व निर्णय– जिस जीव का जिस द्रव्य का जिस समय जैसा जो कुछ होना है वह अपनी तत्समय की योग्यतानुसार हो रहा है और होगा, इसे कोई टाल फेर बदल सकता नहीं।

प्रश्न – क्रियावान होने का क्या अर्थ है ?

उत्तर – क्रियावान होने का अर्थ है – अन्याय, अनीति और अभक्ष्य का त्याग। श्रावक सांसारिक जीवन में घर–व्यापार आदि के कार्यों को न्याय नीति पूर्वक करता है और बाईस प्रकार के अभक्ष्य का सेवन नहीं करता इसलिए श्रावक क्रियावान होता है।

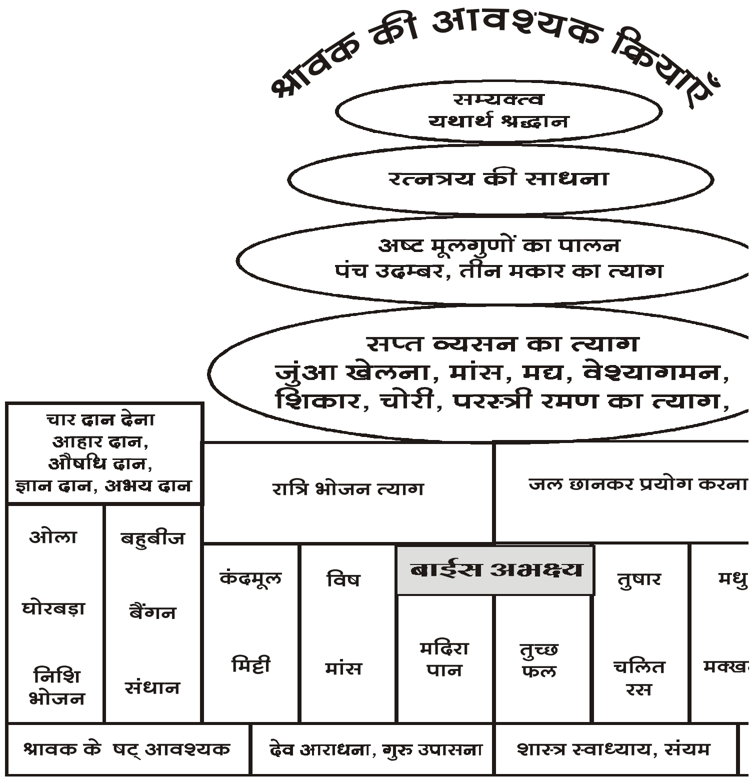

पाठ – ३
देव पूजा विधि

प्रश्न – हमारा इष्ट कौन है ?

उत्तर – हमारा इष्ट निज शुद्धात्मा है।

प्रश्न – हमें पूज्य क्या है ?

उत्तर – हमें वीतरागता पूज्य है।

प्रश्न – सच्चे देव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – जो वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी होते हैं वे सच्चे देव कहलाते हैं।

प्रश्न – वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – **वीतरागी –** जो मोह, राग द्वेषादि विकारों से रहित होते हैं उन्हें वीतरागी कहते हैं।

सर्वज्ञ – जो संसार के समस्त पदार्थों और उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानते हैं वह सर्वज्ञ कहलाते हैं।

हितोपदेशी – जो दिव्यध्वनि द्वारा जगत के जीवों को आत्म हितकारी उपदेश देते हैं उन्हें हितोपदेशी कहते हैं।

प्रश्न – निश्चय से सच्चा देव कौन है।

उत्तर – रत्नत्रयमयी निज शुद्धात्मा ही निश्चय से सच्चा देव है।

प्रश्न – देव कहाँ है ? इस संबंध में आचार्य तारण स्वामी, योगीन्दु देव आदि आचार्यों का क्या मत है ?

उत्तर – सभी वीतरागी आचार्य कहते हैं कि देव देह देवालय में वास करता है जो चैतन्य स्वरूपी है।

प्रश्न – पूजा किसे कहते हैं, व्यवहार से देव पूजा की विधि क्या है ?

उत्तर – पूजा का अर्थ है पूजना अर्थात् पूर्ण करना। अपने शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से पर्याय की अशुद्धि और कमी को दूर कर पूर्णता को उपलब्ध करने को पूजा कहते हैं। ७५ गुणों के द्वारा अरिहंत सिद्ध परमात्मा का और अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन मनन आराधन करना व्यवहार से देव पूजा की विधि है।

प्रश्न – ७५ गुण कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – **देव के पाँच गुण –** पाँच परमेष्ठी – अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु।

गुरु के तीन गुण – तीन रत्नत्रय–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र।

शास्त्र के चार गुण – चार अनुयोग – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

सिद्ध के आठ गुण – सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, वीर्यत्व और अव्याबाधत्व।

सोलह कारण भावना – १. दर्शन विशुद्धि, २. विनय संपन्नता, ३. शील व्रतों का निरतिचार पालन, ४. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, ५. संवेग, ६. शक्तितः त्याग, ७. शक्तितः तप, ८. साधु समाधि, ९. वैयावृत्य करण, १०. अर्हन्त भक्ति, ११. आचार्य भक्ति, १२. बहुश्रुत भक्ति,

१३. प्रवचन भक्ति, १४. आवश्यक अपरिहाणि, १५. मार्ग प्रभावना, १६. प्रवचन वत्सलत्व।

दस लक्षण धर्म – १. उत्तम क्षमा, २. उत्तम मार्दव, ३. उत्तम आर्जव, ४. उत्तम सत्य, ५. उत्तम शौच, ६. उत्तम संयम, ७. उत्तम तप, ८. उत्तम त्याग, ९. उत्तम आकिंचन्य, १०. उत्तम ब्रह्मचर्य।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग – १. निःशंकित, २. निःकांक्षित, ३. निर्विचिकित्सा, ४.अमूढ़ दृष्टि, ५. उपगूहन,६. स्थितिकरण, ७. वात्सल्य, ८. प्रभावना।

सम्यग्ज्ञान के आठ अंग – १. शब्दाचार,२. अर्थाचार,३. उभयाचार, ४. कालाचार, ५. विनयाचार, ६. उपधानाचार,७. बहुमानाचार, ८. अनिह्नवाचार।

तेरह प्रकार का चारित्र – पाँच महाव्रत – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

पाँच समिति – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापना समिति।

तीन गुप्ति – मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति।

प्रश्न – निश्चय से देव पूजा की विधि क्या है ?

उत्तर – सिद्ध परमात्मा के समान अपने शुद्ध स्वरूप मय होना अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप में उपयोग को लगाना निश्चय से देव पूजा की विधि है।

प्रश्न – देव पूजा का क्या फल है ?

उत्तर – देव पूजा से वर्तमान जीवन में जीव, सुख-शांति-आनंद में रहता है और परम्परा सद्गति, मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न – आचार्य तारण स्वामी ने किन-किन ग्रन्थों में देवपूजा का वर्णन किया है ?

उत्तर – १. आचार्य श्री तारण स्वामी जी ने श्री मालारोहण जी ग्रन्थ की ११ वीं गाथा में ७५ गुणों के द्वारा देव पूजा का विधान स्पष्ट किया है।

२. तारण तरण श्रावकाचार ग्रन्थ में गाथा ३२३ से ३६६ तक ७५ गुणों की आराधना पूर्वक सच्चे देव का स्वरूप और देव पूजा का विस्तृत विवेचन किया है।

३. श्री पण्डित पूजा जी ग्रन्थ में सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र की महिमा सहित पूजा का विशद् वर्णन किया है। तारण समाज में मन्दिर विधि के माध्यम से सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र की पूजा आराधना की जाती है।

मैं मोह रागादिक विकारों से रहित अविकार हूँ।
ऐसी निजातम स्वानुभूतिमय समय का सार हूँ॥
यह निर्विकल्प स्वरूपमयता वास्तविक पूजा यही।
जो करे अनुभव गुण पचहत्तर से भविकजन है वही॥
(अध्यात्म आराधना छंद – २१)

पाठ – ४

षट् आवश्यक परिचय

प्रश्न – श्रावक को प्रतिदिन क्या करना चाहिये ?

उत्तर – श्रावक को प्रतिदिन षट् आवश्यक का पालन करना चाहिये।

प्रश्न – आचार्य श्री तारण स्वामी का षट् आवश्यक के संबंध में क्या कथन है ?

उत्तर – आचार्य श्री तारण स्वामी जी ने तारण तरण श्रावकाचार ग्रन्थ में षट् आवश्यक के दो भेद बताये हैं –१. अशुद्ध षट् आवश्यक २. शुद्ध षट् आवश्यक।

१. आत्म दृष्टि के अभाव पूर्वक षट् कर्म का पालन करना अशुद्ध षट् आवश्यक कहा जाता है।

२. आत्म दृष्टि की प्रमुखता सहित षट्कर्म का पालन करना शुद्ध षट् आवश्यक कहलाता है।

प्रश्न – षट् आवश्यक कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – १. देव पूजा २. गुरु उपासना ३. शास्त्र स्वाध्याय ४. संयम ५. तप ६. दान।

प्रश्न – **सच्चा देव कौन है ?**

उत्तर – व्यवहार से – अरिहंत, सिद्ध परमात्मा सच्चे देव हैं। निश्चय से–निज शुद्धात्मा सच्चा देव है।

प्रश्न – देव पूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर – ७५ गुणों के द्वारा अरिहंत सिद्ध परमात्मा का और अपने आत्म स्वरूप का चिंतन मनन आराधन करना व्यवहार से देव पूजा है। अपने आत्म स्वरूप का चिंतन मनन करते हुए उपयोग को निज स्वभाव में लगाना निश्चय से देव पूजा है।

प्रश्न – सच्चे गुरु कौन हैं ?

उत्तर – व्यवहार से निर्ग्रंथ वीतरागी साधु सच्चे गुरु हैं। निश्चय से निज अंतरात्मा सच्चा गुरु है।

प्रश्न – सच्चे गुरु किन्हें कहते हैं ?

उत्तर – जो परिग्रह से रहित, सम्यग्ज्ञान से अलंकृत, निर्ग्रन्थ वीतरागी होते हैं, राग–द्वेष नहीं करते, जिन्होंने विषय–कषाय का त्याग कर दिया है, जो रत्नत्रय से शुद्ध और मिथ्या माया आदि से रहित होते हैं उन्हें सच्चे गुरु कहते हैं। आचार्य, उपाध्याय, साधु सच्चे गुरु कहलाते हैं।

प्रश्न – गुरु उपासना किसे कहते हैं ?

उत्तर – वीतरागी सद्गुरुओं के गुणों का स्मरण करना तथा वंदना भक्ति करना, व्यवहार से गुरु उपासना कहलाती है। निज अंतरात्मा ज्ञायक भाव की आराधना करना निश्चय से गुरु उपासना है।

प्रश्न – शास्त्र स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्म कल्याण के लक्ष्य से जिनवाणी का अध्ययन, चिंतन, मनन करना व्यवहार से स्वाध्याय है। आत्म निरीक्षण करना, परिणामों की संभाल रखना और ध्रुव स्वभाव में स्थित होना निश्चय से स्वाध्याय है।

प्रश्न – संयम किसे कहते हैं, उसके कौन–कौन से भेद हैं ?

उत्तर – मन के संयमन करने को संयम कहते हैं। संयम के दो भेद हैं –

१. इन्द्रिय संयम २. प्राणी संयम।

१. इन्द्रिय संयम–पाँच इन्द्रिय और मन को वश में करना इन्द्रिय संयम है।

२. प्राणी संयम–पाँच स्थावर और त्रस अर्थात् षट्काय के जीवों की रक्षा करना प्राणी संयम कहलाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति को पाँच स्थावर काय और दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय तक के जीवों को त्रस काय कहते हैं। इस प्रकार पाँच स्थावर काय और एक त्रसकाय मिलकर षट् कायिक जीव कहलाते हैं, इनकी रक्षा करना व्यवहार से संयम का स्वरूप है।

प्रश्न – निश्चय से संयम का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – आत्म निरीक्षण पूर्वक अपने शुद्धात्म स्वरूप का ध्यान करना निश्चय से संयम है।

प्रश्न – तप किसे कहते हैं, तप के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर – 'इच्छा निरोधः तपः' इच्छाओं के निरोध करने को तप कहते हैं। तप के मूल भेद दो हैं– अंतरंग तप और बहिरंग (बाह्य) तप। इनके क्रमशः छह–छह भेद हैं। इस प्रकार तप के उत्तर भेद बारह होते हैं।

प्रश्न – तप के बारह भेद कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – बहिरंग (बाह्य) तप के छह भेद हैं –

१. अनशन २. अवमौदर्य ३. वृत्ति परिसंख्यान

४. रस परित्याग ५. विविक्त शय्यासन ६. काय क्लेश।

अंतरंग तप के छह भेद हैं – १. प्रायश्चित २. विनय ३. वैयावृत्य

४. स्वाध्याय ५. व्युत्सर्ग ६. ध्यान।

प्रश्न – निश्चय से तप का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – रागादि विकारी भावों का त्याग करके आत्म स्वरूप में लीन रहना निश्चय से तप कहलाता है।

प्रश्न – तप करने से क्या लाभ है ?

उत्तर – तप करने से कर्मों की निर्जरा और मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न – दान किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने और पर के उपकार के लिये चार प्रकार का दान देना दान कहलाता है।

प्रश्न – दान के चार भेद कौन से हैं, और निश्चय–व्यवहार से दान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – १. आहार दान २. ज्ञान दान ३. औषधि दान ४. अभयदान।

व्यवहार से दान – तीन प्रकार के सुपात्रों को आहार आदि देना व्यवहार से दान है।

निश्चय से दान – उपयोग को अपने आत्म स्वरूप में लगाना निश्चय दान है।

प्रश्न – षट् आवश्यक में निश्चय व्यवहार रूप कथन किया गया है, इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – शुद्धात्मानुभूति रूप वीतराग परिणति निश्चय आवश्यक है वह मोक्ष का कारण है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के जीवन में शुभ रूप व्यवहार सहज होता है। अज्ञानी जीव को कषाय की मंदता और शुभ भाव होने से पुण्य का उपार्जन होता है किन्तु उससे मुक्ति नहीं होती। ज्ञानी का जीवन निश्चय–व्यवहार से समन्वित होता है, यही निश्चय–व्यवहार रूप कथन का अभिप्राय है।

पाठ – ५

विचार मत – एक क्रांति

आचार्य श्री जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने विचार मत में तीन ग्रन्थों की रचना की। विचारमत जीवन जीने की कला है। विचार मत का अर्थ है – बुद्धिपूर्वक अपने स्वरूप का निर्णय करना। स्वयं के निर्णय के अभाव में आत्म स्वरूप से अपरिचित जीव संसार में जन्म–मरण के दुःख भोग रहा है। विचार मत वह मार्ग है जिस पर चलकर अध्यात्म की ज्योति प्रकट होती है और अज्ञान अंधकार सदा के लिए दूर हो जाता है।

इस प्रकार का लक्ष्य बनाना, बुद्धिपूर्वक अपने आत्म स्वरूप का निर्णय करना, विचार मत का अभिप्राय है। इस मत में तीन ग्रन्थ हैं–श्री मालारोहण जी, श्री पण्डित पूजा जी, श्री कमल बत्तीसी जी। इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

श्री मालारोहण जी –

यह विचारमत का प्रथम ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ में ३२ गाथाएँ हैं तथा सम्यग्दर्शन इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। प्रथम दो गाथाओं में मंगलाचरण करके तीसरी गाथा में सम्यग्दर्शन का महत्त्व, सम्यग्दृष्टि की विशेषता, सच्चे पुरुषार्थ का स्वरूप, मुक्ति को प्राप्त करने का उपाय तथा एक सौ आठ गुणों की माला गूँथने का अर्थात् गुणों की आराधना पूर्वक आत्म साधना करने का मार्ग प्रशस्त किया है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की श्रेणियों पर आरोहण करना मालारोहण है। शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से आत्म गुणों की आराधना करना मालारोहण है।

सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है। सम्यग्दर्शन जीव का परम हितकारी है, सम्यक्त्व जैसा श्रेष्ठ रत्न संसार में दूसरा कोई नहीं है। मिथ्यात्व अत्यंत दुःख का कारण है और सम्यक्त्व परम सुख का कारण है इसलिये मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को धारण करना इष्ट है। इस प्रकार मालारोहण ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन की प्रमुखता से कथन किया गया है। भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में राजा श्रेणिक ने ज्ञान गुण माला को प्राप्त करने का उपाय पूछा था, वह मार्मिक प्रसंग भी बहुत सुन्दरता से मालारोहण ग्रन्थ में प्रतिपादित किया गया है।

जो भी मुक्ति गये अभी तक, जा रहे हैं या जावेंगे।
शुद्ध स्वभाव की करके साधना, वे मुक्ति को पावेंगे ॥
जिनवर कथित धर्म यह सच्चा, दिव्य अलौकिक लोचन है।
भेदज्ञान युत सम्यग्दर्शन, यही तो मालारोहण है ॥

श्री पण्डित पूजा जी –

पण्डित पूजा, विचार मत का दूसरा ग्रन्थ है, इसमें ३२ गाथायें हैं, सम्यग्ज्ञान इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र, पूजा की विधि, ज्ञानी का स्वरूप, पूजा करने के विधान में विकारों का प्रक्षालन, धर्म के वस्त्र, दृष्टि की शुद्धता, शुद्धात्म देव का दर्शन और आध्यात्मिक पूजा का फल, मुक्ति की प्राप्ति इत्यादि विषयों का इस ग्रन्थ में सांगोपांग विवेचन किया गया है।

सम्यग्ज्ञान के बिना कोई भी क्रियायें आत्म हितकारी नहीं होती। मुक्ति मार्ग में सम्यग्ज्ञान की प्रधानता

है। ज्ञान से ही आत्मशांति मिलती है, इसलिए ज्ञान ही तीन लोक में सार है।

ज्ञानी का जीवन निश्चय - व्यवहार से समन्वित होता है, यही मुक्ति का आधार है। एकांतवाद मिथ्या है, इसलिये आत्मार्थी साधक अंतर्बाह्य एक समान होता है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञानी की चर्या, पूजा विधि और फल का वर्णन पंडित पूजा ग्रंथ में किया गया है।

पूजा का क्या अर्थ है ? यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, जिसके समाधान में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी कहते हैं कि 'पूज्य के समान आचरण होना ही सच्ची पूजा है'।

पूजा का अभिप्राय पूज्य सम, स्वयं पूज्य बन जाना है।
जो भी अपना इष्ट मानते, उसी इष्ट को पाना है ॥
कुदेवादि की पूजा करना, यही महा अज्ञान है।
पूज्य समान आचरण ही, पूजा का सही विधान है ॥

श्री कमल बत्तीसी जी -

विचारमत का यह तीसरा ग्रन्थ है, इसमें ३२ गाथायें हैं और सम्यक्‌चारित्र इस ग्रन्थ का प्रमुख विषय है। चारित्र के दो भेद हैं - निश्चय सम्यक् चारित्र और व्यवहार सम्यक् चारित्र। आत्म स्वरूप में लीन रहना निश्चय सम्यक् चारित्र है। पाप विषय कषाय के त्याग पूर्वक व्रत, समिति, गुप्ति रूप आचरण को व्यवहार सम्यक् चारित्र कहते हैं।

जनरंजन राग, कलरंजन दोष, मनरंजन गारव से विरक्त होने पर ही सच्चा चारित्र होता है। विकथायें और विभाव परिणाम चारित्र में बाधक होते हैं इसलिये ज्ञानी साधक आत्मा और पर पदार्थों को भिन्न-भिन्न जानकर स्वरूप में स्थित होने का पुरुषार्थ करते हैं।

प्राणी मात्र से मैत्री भाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखी जीवों पर करुणा और हठी जीवों पर माध्यस्थ भाव रखना यही ज्ञानी सम्यग्दृष्टि का कर्तव्य है।

स्व पर का यथार्थ निर्णय कर, जिसको सम्यग्ज्ञान जगा।
मिथ्याभाव शल्य आदि का, भ्रम भय सब अज्ञान भगा ॥
सारे कर्म विला जाते हैं, धरता आतम ध्यान है।
कमल बत्तीसी जिसकी खिल गई, बनता वह भगवान है ॥

पाठ – ६

मन्दिर विधि परिचय

(दादा रुइयारमण और तेजकुमार का संवाद)

तेजकुमार – दादा, प्रणाम। आज तो आप बहुत जल्दी में दिख रहे हैं, कहीं जा रहे हैं क्या ?

रुइयारमण – आओ, तेजकुमार। मैं चैत्यालय जाने की तैयारी कर रहा हूँ।

तेजकुमार – क्यों दादा ! क्या आज चैत्यालय में कोई विशेष कार्यक्रम होना है ?

रुइयारमण – बेटा, आज चतुर्दशी है न, इसलिये मन्दिर विधि होना है। क्या तुम भी चैत्यालय चल रहे हो ?

तेजकुमार – हाँ दादा, आपके साथ मैं भी चलता हूँ , वैसे जब–जब मन्दिर विधि होती है तब–तब मैं चैत्यालय जरूर जाता हूँ , परन्तु दादा मेरी समझ में कुछ नहीं आता इसलिये मन्दिर विधि के बारे में मुझे समझायें तो बड़ी कृपा होगी।

रुइयारमण – हाँ बेटा, तुम जिज्ञासु हो, इसलिये तुम्हारी समझ में जल्दी आ जावेगा। किसी भी विषय को समझने के लिये जिज्ञासा होना अत्यंत आवश्यक है।

तेजकुमार – गुरु महाराज और आप लोगों की सत्संगति से ही धीरे–धीरे सीख रहा हूँ। हाँ तो दादा, मन्दिर विधि के बारे में बताइये न।

रुइयारमण – देखो बेटा, भाव पूजा को मन्दिर विधि कहते हैं, यह भाव पूजा(मन्दिर विधि) बहुत भक्ति भाव से देव, गुरु, धर्म एवं शास्त्र के बहुमानपूर्वक की जाती है। प्रत्येक माह की अष्टमी, चतुर्दशी एवं प्रतिदिन के नियम में साधारण मन्दिर विधि की जाती है। इसे बोलचाल में छोटी मन्दिर विधि कहते हैं और दशलक्षण आदि महान पर्व के दिनों में वृहद् मन्दिर विधि की जाती है, इसे धर्मोपदेश के नाम से जाना जाता है।

तेजकुमार – मन्दिर विधि को प्रारंभ करने की विधि क्या है और पहले तो छोटी मन्दिर विधि के बारे में बताइये। इसमें कौन–कौन से विषय पढ़े जाते हैं ?

रुइयारमण – सबसे पहले यह समझो कि सादी वेशभूषा में (धोती, कुर्ता, टोपी पहिनकर) मन्दिर विधि करना चाहिये। आगे की विधि और विषय इस प्रकार हैं– पंडित जी के सावधान कहते ही सभी श्रावक खड़े हो जाते हैं और जिनवाणी को विनयपूर्वक सिंहासन पर विराजमान करते हैं फिर 'जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक' दोहा पढ़कर विनय सहित नमस्कार कर बैठते हैं। 'जय नमोऽस्तु' कहकर तत्त्वमंगल सामूहिक रूप से पढ़ते हैं, पश्चात् श्री ममलपाहुड़ जी ग्रन्थ की कोई भी एक फूलना पढ़ते हैं, फिर वर्तमान चौबीसी, विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों की स्तुति, विनय बैठक, नाम लेत पातक कटें दोहा, आशीर्वाद और अबलबली का भक्ति सहित वांचन किया जाता है।

तेजकुमार – जो विषय आपने बताये, इनमें से तत्त्व मंगल और फूलना हम पढ़ते रहते हैं, चौबीसी कैसे पढ़ते हैं दादा, हमको चौबीसी सुनाइये ?

रुइयारमण – अच्छा, मैं चौबीसी प्रारंभ कर रहा हूँ तुम ध्यान से सुनना और मेरे साथ पढ़ना –

श्री ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन, सुमति पद्मप्रभु छठे जिनेश्वर।
सप्तम तीर्थंकर भये हैं सुपारस, चन्द्रप्रभ आठम हैं निवारस ।।

पुष्पदंत शीतल श्रेयांस, वासुपूज्य अरू विमल अनंत ।
धर्मनाथ वंदत अविनीश्वर, सोलह कारण शांति जिनेश्वर ।।
कुन्थु अरह मल्लि मुनिसुव्रत वीसा, नमूं अष्टांग नमि इकवीसा ।
नेमिनाथ साहसि गिरि नेमि, सहनसील बाईस परीषह ।।
पारसनाथ तीर्थंकर तेईस, वर्द्धमान जिनवर चौबीस ।
चार जिनेन्द्र चहुँ दिशि गये, बीस सम्मेदशिखर पर गये ।।
आदिनाथ कैलाशहिं गये, वासुपूज्य चम्पापुर गये ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, पावापुरी वीर जिनराज ।।
दो धवला दो श्यामला वीर, दो जिनवर आरक्त शरीर ।
हरे वरण दो ही कुलवन्त, हेमवरण सोला इकवंत ।।
चौबीस तीर्थंकर मोक्ष गये, दश कोड़ाकोड़ी काल विल भये ।
भये सिद्ध अरू होंय अनंत, जे वन्दौं चौबीस जिनेन्द्र ।।
वन्दौं तीर्थंकर चौबीस, वन्दौं सिद्ध बसें जग शीश ।
वन्दौं आचारज उवझाय, वन्दौं साधु गुरुन के पांय ।।

तेजकुमार – दादा, बहुत आनन्द आया आपके साथ चौबीसी पढ़ने में और यह भी समझ आ गया कि प्रथम चार छन्दों में चौबीस तीर्थंकरों के नाम हैं और चौथे छन्द की अन्तिम पंक्ति में बतलाया गया है कि चौबीस में से बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर से मोक्ष गये हैं किन्तु यह चार तीर्थंकर कौन–कौन से हैं और कहां–कहां से मोक्ष गये हैं ?

रुइयारमण – चौथे छन्द तक तो तुम्हारी समझ में अच्छा आ गया और तुमने जो प्रश्न किया है उसका उत्तर पांचवें छन्द में है । आदिनाथ – कैलाश पर्वत से मोक्ष गये । वासुपूज्य–चंपापुर से, नेमिनाथ –गिरनार से और महावीर भगवान–पावापुरी से और शेष बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखर से मोक्ष गये हैं।

तेजकुमार – और छटवें छन्द का अर्थ तो बहुत कठिन लगता है दादा,उसका क्या अर्थ है ?

रुइयारमण – छटवें छन्द का अर्थ है कि चन्द्रप्रभ और पुष्पदंत जी दो तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण सफेद था नेमिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ दो तीर्थंकरों के शरीर का श्याम वर्ण था, वासूपूज्य और पद्म प्रभु दो तीर्थंकरों के शरीर का वर्ण लाल था, पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ के शरीर का वर्ण हरा था तथा शेष सोलह तीर्थंकरों के शरीर का तपे हुए स्वर्ण के समान पीत वर्ण था।

तेजकुमार – दादा, तारण स्वामी ने तो निराकार चैतन्य की आराधना रूप शुद्ध अध्यात्म का मार्ग बताया है और मन्दिर विधि में तीर्थंकरों के शरीर का रंग भेद बतलाया गया है, इसका क्या प्रयोजन है ?

रुइयारमण – १. तीर्थंकर भगवंतों के शरीर विभिन्न वर्ण वाले थे, इस प्रकार आत्मा के साथ संयोग रूप व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये तीर्थंकरों के शरीर के वर्णभेद का कथन किया है।

२. यह कथन जीव – अजीव की यथार्थ पहिचान की ओर संकेत करता है कि शरीर का रंग कैसा भी हो किन्तु आत्मा शरीर से सर्वथा भिन्न अरस, अरुपी, अगंध, अवर्ण है वही पूज्य और आराध्य है।

३. मुक्ति की प्राप्ति करने में जाति भेद और वर्ण भेद बाधक नहीं है, कोई भी संज्ञी पुरुषार्थी

मनुष्य रत्नत्रय को धारण कर स्वभाव का अवलम्बन लेकर मुक्ति को प्राप्त कर सकता है यह महत्वपूर्ण बात समझाने के प्रयोजन से शरीर के वर्णभेद का कथन किया गया है।

तेजकुमार – दादा, यह तो बड़ी अपूर्व बात आपने समझाई, ऐसा तो कोई जानता ही नहीं। अब यह बताइये कि तीर्थंकरों के मोक्ष जाने का आसन कौन सा था।

रुइयारमण – हाँ, यह भी समझने योग्य है। चौबीस में से तीन तीर्थंकर आदिनाथ, वासुपूज्य, नेमिनाथ पद्मासन से और शेष २१ तीर्थंकर खड्गासन (कायोत्सर्गासन) से मोक्ष गये। एक बात और है कि पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी थे।

तेजकुमार – अच्छा तो उन्होंने संसार की बेड़ी में पांव ही नहीं फंसाया होगा, वे बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर कौन–कौन से हैं ?

रुइयारमण – बाल ब्रह्मचारी तीर्थंकर पांच हैं – १. वासुपूज्य,२. मल्लिनाथ,३. नेमिनाथ, ४. पार्श्वनाथ ५. महावीर भगवान। इन्हें पंच बालयति कहते हैं।

तेजकुमार – चौबीसी तो अच्छी तरह समझ में आ गई, अब कुछ विदेह क्षेत्र के बारे में बताइये ?

रुइयारमण – विदेह क्षेत्र में षट्काल चक्र परिवर्तन नहीं होता वहाँ हमेशा चतुर्थकाल वर्तता रहता है इसलिये बीस तीर्थंकर वहाँ हमेशा विद्यमान रहते हैं।

तेजकुमार – विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकर कौन–कौन से हैं ?

रुइयारमण – १.सीमंधर २. युगमंधर ३. बाहु ४.सुबाहु ५. सुजात ६. स्वयं प्रभ ७. ऋषभानन ८. अनंत वीर्य ९.सूरिप्रभ १०. विशालकीर्ति ११. वज्रधर १२. चन्द्रानन १३. चन्द्रबाहु १४. भुजंगम १५. ईश्वर १६. नेमिप्रभ १७. वीरसेन १८. महाभद्र १९. देवयश २०. अजितवीर्य।

तेजकुमार – मन्दिर विधि में इस संबंध में क्या पढ़ा जाता है ?

रुइयारमण – मन्दिर विधि में विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों की स्तुति पढ़ी जाती है, आओ हम स्तुति को पढ़कर आज की चर्चा को विराम देंगे –

सीमन्धर स्वामी जिन नमों, मन वच काय हिये में धरों।
युगमन्धर स्वामी युग पाय, नाम लेत पातक क्षय जाय ।।
बाहु सुबाहु स्वामी धर धीर, श्री संजात स्वामी महावीर।
स्वयं प्रभ स्वामी जी को ध्यान, ऋषभानन जी कहें बखान ।।
अनन्तवीर्य सूरिप्रभ सोय, विशालकीर्ति जग कीरत होय।
वज्रधर स्वामी चन्द्रधर नेम, चन्द्रबाहु कहिये जिन बैन ।।
भुजंगम ईश्वर जग के ईश, नेमीश्वर जू की विनय करीश।
वीर्यसेन वीरज बलवान, महाभद्र जी कहिये जान ।।
देवयश स्वामी श्री परमेश, अजित वीर्य सम्पूर्ण नरेश।
विद्यमान बीसी पढ़ो चितलाय, बाढ़े धर्म पाप क्षय जाय ।।

तेजकुमार – दादा, आज बहुत आनन्द आया, इसी प्रकार मार्गदर्शन प्रदान करते रहें। दादा, प्रणाम...।

अभ्यास के प्रश्न :

प्रश्न – १ संक्षेप में मंदिर विधि का वर्णन कीजिये ? प्रश्न – २ मंदिर विधि पढ़ने का क्रम क्या है ?

प्रश्न – ३ मंदिर विधि पढ़ते समय विनय क्यों आवश्यक है ?

पाठ – ७

विनय बैठक परिचय

प्रश्न – विनय बैठक का क्या अर्थ है ?

उत्तर – विनय पूर्वक बैठकर जिनवाणी के माध्यम से अपने हित–अहित, कर्तव्य–अकर्तव्य और सत्–असत् का निर्णय कर आत्म कल्याण करने का पुरुषार्थ करना।

प्रश्न – विनय बैठक में विचारणीय प्रमुख विषय कौन से हैं ?

उत्तर – विनय बैठक में शास्त्र, सूत्र और सिद्धांत प्रमुख रूप से विचारणीय विषय हैं।

प्रश्न – सच्चे शास्त्र की क्या पहिचान है ?

उत्तर – जिनमें वस्तु स्वरूप का वर्णन हो, सच्चे देव, गुरु, धर्म की महिमा बतलाई गई हो तथा जीवों के लिये मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया हो, उसको सच्चे शास्त्र जानना चाहिये।

प्रश्न – सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र का स्वरूप जानने के लिये विनय बैठक में कौन सा छंद पढ़ते हैं ?

उत्तर – विनय बैठक में सवैया छंद पढ़ा जाता है जिसमें सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र का स्वरूप वर्णन है।

सवैया

साँचो देव सोई जामें दोष को न लेश कोई।
साँचो गुरू वही जाके उर कछु की न चाह है ॥
सही धर्म वही जहाँ करुणा प्रधान कही।
सही ग्रन्थ वही जहाँ आदि अंत एक सो निर्वाह है ॥
यही जग रतन चार ज्ञान ही में परख यार।
साँचे लेहु झूठे डार नरभव को लाह है ॥
मनुष्य तो विवेक बिना पशु के समान गिना।
यातैं यह बात ठीक पारणी सलाह है ॥

प्रश्न – विनय बैठक में शास्त्र की व्याख्या किस प्रकार पढ़ी जाती है ?

उत्तर – 'ऐसे शाश्वते देव, गुरु, धर्म की महिमा सहित, जामें आचार विचार क्रियाओं का प्रतिपादन होय, ज्ञान की उत्पत्ति, कर्मों की षिपति, जीव की मुक्ति, दर्शन ज्ञान चारित्र, कलन, चरन, रमण, उवन दृढ़, ज्ञान दृढ़, मुक्ति दृढ़, ऐसो त्रिक स्वभाव रूप वार्ता चले अरु समुच्चय वर्णन जामें होय ताको नाम शास्त्र जी कहिये।

प्रश्न – त्रिक किसे कहते हैं, शास्त्र की व्याख्या में कितनी और कौन सी त्रिक कही गई हैं ?

उत्तर – तीन के समुच्चय अथवा समूह को त्रिक कहते हैं। शास्त्र की व्याख्या में छह त्रिक कही गई हैं, जो इस प्रकार हैं – १. सच्चे देव, गुरु, धर्म २. आचार, विचार, क्रिया ३. ज्ञान की उत्पत्ति, कर्मों की खिपति, जीव की मुक्ति ४. दर्शन, ज्ञान, चारित्र ५. कलन, चरन, रमण ६. उवन दृढ़, ज्ञान दृढ़, मुक्ति दृढ़ (अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र में दृढ़ता)

प्रश्न – संसार में कितने और कौन–कौन से रत्न हैं तथा उनका क्या करना चाहिये ?

उत्तर – संसार में चार रत्न हैं – सच्चा देव, सच्चा गुरु, सच्चा धर्म और सच्चा शास्त्र, इनका यथार्थ स्वरूप समझकर इनकी शरण लेना चाहिये।

प्रश्न – मनुष्य जन्म की सार्थकता किस बात में है ?

उत्तर – कुदेव, कुगुरु, कुधर्म और अदेव, अगुरु, अधर्म के श्रद्धान रूप मिथ्यात्व को छोड़कर सच्चे देव, गुरु, धर्म का श्रद्धान करना अर्थात् सत्–असत् की पहिचान कर सम्यक् मार्ग पर चलने में मनुष्य जन्म की सार्थकता है।

प्रश्न – कुदेव और सुदेव दोनों की श्रद्धा करने में क्या हानि है ?

उत्तर – 'मनुष्य तो विवेक बिना, पशु के समान गिना' सच्चे–झूठे का विवेक जिसको होता है वही मनुष्य है। सत्–असत् के विवेक बिना मनुष्य पशु के समान होता है इसलिये सच्चे देव गुरु धर्म शास्त्र का श्रद्धान करना चाहिये।

प्रश्न – विनय बैठक में सूत्र की व्याख्या किस प्रकार पढ़ते हैं ?

उत्तर – 'जामें संक्षेप में ही बहुत सारभूत कथन होय, जाके सुने से जीव के मन, वचन, काय एक रूप हो जायें, नहीं तो हे भाई ! मन कहूं को चले, वचन कछू कहे और काया जाकी स्थिर न होय ताको एक सूत्र न होय है – धन्य हैं श्री गुरु तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज जिनके मन, वचन, काय, उत्पन्न, हित,साह, नो, भाव, द्रव्य यह नौ सूत्र सुधरे तथा दसवें आत्म सूत्र की उपलब्धि कर चौदह ग्रन्थों की रचना करी।

प्रश्न – आचार्य तारण स्वामी के नौ सूत्र सुधरे इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – नौ सूत्र में तीन योग, तीन अर्थ और तीन कर्म हैं। आचार्य तारण स्वामी के नौ सूत्र सुधरे अर्थात् मन, वचन, काय शुद्ध हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र को धारण किया। द्रव्य कर्मों में विशेष क्षयोपशम हुआ, भाव कर्म में विशुद्धता प्रगट हुई और नो कर्म रूप शरीर तप साधना से पवित्र हो गया।

प्रश्न – विनय बैठक में सिद्धांत की व्याख्या किस प्रकार पढ़ी जाती है ?

उत्तर – जामें पूर्वापर विरोध रहित सिद्धांत रूप चर्चा हो, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय ऐसे सत्ताईस तत्त्वों का यथार्थ निर्णय किया होय तथा आत्मोपलब्धि की वार्ता चले ताको नाम सिद्धांत ग्रन्थ कहिये।

प्रश्न – नाम की शोभा किससे है ?

उत्तर – नाम की शोभा गुण से है इसलिये मन्दिर विधि में पढ़ते हैं 'यथा नाम तथा गुण, गुण शोभित नाम, नाम शोभित गुण, धन्य हैं वे भगवान जिनके नाम भी वन्दनीक हैं और गुण भी वंदनीक हैं जिनके नाम लिये अर्थ अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति होय है।

पाठ – ८
बृहद् मंदिर विधि परिचय

प्रारम्भिक परिचय –

तारण समाज में विगत ५०० वर्षों से मंदिर विधि का महत्व अक्षुण्ण रूप से बना हुआ है। मंदिर विधि आज भी वही है जो हमारे पूर्वज किया करते थे। मंदिर विधि तारण समाज की आधार शिला है जिस पर तारण पंथ अर्थात् मोक्ष मार्ग का भवन खड़ा हुआ है। मंदिर विधि के द्वारा हम सच्चे देव, गुरु, धर्म, शास्त्र की आराधना करके भाव पूजा संपन्न करते हैं। प्रत्येक माह की अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वों पर तथा प्रतिदिन के नियम में साधारण मंदिर विधि द्वारा पूजा की जाती है। इसे बोलचाल की भाषा में छोटी मंदिर विधि कहते हैं।

दशलक्षण आदि महान पर्वों पर बृहद् मंदिर विधि की जाती है, यह धर्मोपदेश मोक्षमार्ग का विधान है, जिससे आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

मंदिर विधि के लेखक –

आर्यिका कमल श्री माता जी के मार्गदर्शन में आर्यिका ज्ञान श्री एवं श्री रुइयारमण जी ने सर्व प्रथम यह मंदिर विधि धर्मोपदेश लिखा। श्री गुरु महाराज के श्री संघ में विद्वानों की एक परिषद् थी, जिसमें पंडित उदउ, पंडित सरउ, पंडित भीषम, पंडित लषन प्रमुख विद्वान थे। इन विद्वान महानुभावों का हर कार्य में विशिष्ट योगदान रहता था। इस बृहद् मंदिर विधि में धर्मोपदेश के द्वारा श्री गुरु महाराज (आचार्य श्री तारण स्वामी जी) के सान्निध्य में १२ तिलक प्रतिष्ठायें संपन्न हुईं और उन प्रतिष्ठा महोत्सवों में पहुँचने वाले सभी भव्य जीवों को श्री गुरु महाराज का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। इसका प्रमाण श्री छद्मस्थवाणी और नाममाला ग्रन्थ में दिया गया है।

धर्मोपदेश की विषय वस्तु –

धर्मोपदेश के द्वारा अनादि–अनन्त धर्म की शाश्वत परम्परा का बोध होता है। धर्मोपदेश में जो विषय पढ़े जाते हैं वे संक्षेप में इस प्रकार हैं – धर्मोपदेश देने के अधिकारी जिनेन्द्रदेव की महिमा, जिनेन्द्र देव के उपदेश में सम्यक्त्व की विशेषता, अतीत की चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर श्री अनंत वीर्य प्रभु का प्रसाद लेकर वर्तमान चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ स्वामी के होने का उल्लेख, पंच परमेष्ठी मंत्र, एक सौ तैतालीस गुण, छह यंत्र (पाँच परमेष्ठी, एक जिनवाणी) की पूजा, सत्ताईस तत्व का विचार, दान चार, त्रेपन क्रिया का विधि विचार, आदिनाथ भगवान का परिचय, समवशरण वर्णन, देवांगलीय पूजा, इन्द्रध्वज पूजा, शास्त्र और गुण पाठ पूजा, चौबीसी और विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों का स्तवन, भगवान महावीर स्वामी का पूर्ण परिचय तथा आगामी चौबीसी में होने वाले प्रथम तीर्थंकर राजा श्रेणिक के जीव को भगवान महावीर स्वामी द्वारा अकता प्रसाद अर्थात् आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होने की घोषणा का उल्लेख, मंगल, वीर निर्वाण, वैराग्य प्रेरणा, शास्त्र, सूत्र, सिद्धांत की व्याख्या, नाम लेत पातक कटें दोहा, आशीर्वाद, अबलबली आदि महत्वपूर्ण विषय बृहद् मंदिर विधि में पढ़े जाते हैं।

धर्मोपदेश द्वारा मूल धारा का ज्ञान –

धर्मोपदेश में अतीत की चौबीसी के अंतिम तीर्थंकर और वर्तमान चौबीसी के प्रथम तथा अंतिम

तीर्थंकर एवं भविष्यत् चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर के बीच वीतरागता की अविच्छिन्न परम्परा का जो कथन है यह हमारे लिये गौरव का विषय है तथा इससे यह ज्ञान होता है कि श्री गुरु महाराज ने हमें जो कल्याणकारी अध्यात्म का मार्ग दिया है यह तीर्थंकर भगवंतों की मूल परम्परा से निःसृत है।

धर्मोपदेश में देव गुरु शास्त्र की पूजा –

धर्मोपदेश द्वारा वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु, जिनवाणी तथा अहिंसामयी वीतराग धर्म के गुणों की आराधना की जाती है। सम्पूर्ण धर्मोपदेश देव गुरु शास्त्र की गुण पूजा है।

श्रोता का लक्षण–

पढ़ैया पढ़त है अपनी बुद्धि विशेष, सुनैया सुनत है अपनी बुद्धि विशेष। पढ़ता और वक्ता से श्रोता का लक्षण दीर्घ है, कब दीर्घ है ? जब गुण–गुण को जाने, दोष–दोष को पहिचाने, गुण को ग्रहण करे और दोष को परित्याग करे तब वक्ता से श्रोता का लक्षण दीर्घ है।

आत्मार्थी मनुष्य का कर्तव्य –

निज शत्रु जो घर मांहि आवे, मान वाको कीजिये।
शुभ ऊँची आसन मधुर वाणी, बोल के यश लीजिये॥
भगवान सुगुरु निदान मुनिवर, देखकर मन हर्षियो।
पड़गाह लीजे दान दीजे, रत्न वर्षा बरसियो॥

धर्मोपदेश में तारण पंथ –

सर्वथा रंज रमन, आनन्द वांछा पूर्ण होय कहने प्रमाण जिनेश्वर देव जी के जिन कहे, जिनके अस्थाप रूप वाणी कहें, जिन ज्योति वाणी ज्ञान श्री कण्ठ कमल मुखार विंद वाणी श्री भैया रुइयारमण जी कहें जिन गुरुन को कहनो सत्य है, ध्रुव है, प्रमाण है।

इष्ट स्मरण की प्रेरणा और फल –

इष्ट ही दर्शन, इष्ट ही ज्ञान ऐसा जानकर हे भाई ! आठ पहर की साठ घड़ी में एक घड़ी, दो घड़ी स्थिर चित्त होय, देव गुरु धर्म को स्मरण करे। आत्मा को ध्यान धरे तो जीव को धर्म लाभ होय, कर्मन की क्षय होय और धर्म आराध्य–आराध्य जीव परम्परा निर्वाण पद को प्राप्त होय है।

८ पहर में ६० घड़ी का गणित

१ पहर = ३ घंटा, ८ पहर =२४ घंटा,
१ घंटा = ६० मिनिट, २४ घंटा के मिनिट बनाओ.
२४ X ६० = १४४० मिनिट
१ घड़ी = २४ मिनिट, १४४०÷२४ = ६० घड़ी ।

पाठ – ९

अनुयोग परिचय

प्रश्न – अनुयोग किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं ?

उत्तर – जिनवाणी को जिसके माध्यम से समझा जाये, उसे अनुयोग कहते हैं। अनुयोग चार होते हैं –
प्रथमानुयोग करणानुयोग
चरणानुयोग द्रव्यानुयोग

प्रश्न – जिनवाणी किसे कहते हैं और इसका अनुयोगों से क्या संबंध है ?

उत्तर – तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान की वाणी को जिनवाणी कहते हैं। चार अनुयोग जिनवाणी के ही अंग हैं, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित वस्तु स्वरूप को स्पष्ट रूप से समझने के लिये जिनवाणी का चार अनुयोगों में विभाजन है।

वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है ।
सत्य धर्म ही मुक्ति मार्ग है, नित हमको सिखलाती है ।।

प्रश्न – आचार्य तारण स्वामी जी ने जिनवाणी का वर्णन किस प्रकार किया है ?

उत्तर – जिनवाणी को आचार्य तारण स्वामी जी ने सरस्वती कहा है और जिनवाणी को तीन प्रकार के मिथ्यात्व, कुज्ञान रूप अंधकार का नाश करने वाली, बुद्धि को प्रकाशित करने वाली, जिनेन्द्र की वाणी, अमूर्तिक ज्ञान मूर्ति आदि विशेषणों सहित वर्णन करते हुए नमस्कार किया है।

प्रश्न – प्रथमानुयोग किसे कहते हैं, प्रथमानुयोग के अन्तर्गत कौन-कौन से ग्रन्थ हैं ?

उत्तर – जिन शास्त्रों में त्रेषठ श्लाका पुरुषों की जीवन गाथा या उनके गुणों का वर्णन होता है, उसे प्रथमानुयोग कहते हैं। पद्मपुराण, श्रेणिक चरित्र, हरिवंश पुराण, जीवंधर चरित्र, यशोधर चरित्र, महापुराण, धन्यकुमार चरित्र, विमल पुराण आदि प्रथमानुयोग के ग्रन्थ हैं।

प्रश्न – चरित्र और पुराण में क्या अन्तर है ?

उत्तर – जिसमें किसी एक महापुरुष के जीवन संबंधी घटना का वर्णन होता है उसे चरित्र कहते हैं और जिसमें अनेक महापुरुषों के जीवन की घटनाओं का वर्णन होता है, उसे पुराण कहते हैं।

प्रश्न – प्रथमानुयोग के स्वाध्याय से क्या लाभ होता है ?

उत्तर – संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य, परिणामों में निर्मलता, पुण्य-पाप का ज्ञान, आत्म हित करने की प्रेरणा एवं समाधि का लाभ प्रथमानुयोग संबंधी शास्त्रों का स्वाध्याय करने से होता है।

प्रश्न – करणानुयोग किसे कहते हैं, इस अनुयोग में कौन-कौन से ग्रन्थ हैं ?

उत्तर – जिसमें लोक-अलोक का विभाग, काल का परिवर्तन, गुणस्थान, मार्गणा स्थान तथा कर्मों के बंध, उदय, सत्ता आदि का वर्णन होता है उसे करणानुयोग कहते हैं। चौबीस ठाणा, खातिका विशेष, त्रिभंगीसार, गोम्मटसार जीवकांड, कर्मकांड, षट्खण्डागम, तिलोय पण्णत्ती, कर्म प्रकृति आदि करणानुयोग के ग्रन्थ हैं।

प्रश्न – करणानुयोग के स्वाध्याय से क्या लाभ होता है ?

उत्तर – जीव की अवस्थाओं की पहिचान, तीन लोक का स्वरूप दर्शन, परिणामों से होने वाले कर्म

बंध का ज्ञान, कर्म सिद्धांत की जानकारी, अपने परिणामों की संभाल करने की प्रेरणा तथा कर्म रहित चैतन्य स्वरूप की पहिचान का यथार्थ मार्ग करणानुयोग के स्वाध्याय से प्रशस्त होता है।

प्रश्न – चरणानुयोग किसे कहते हैं और इसमें कौन–कौन से ग्रन्थ हैं ?

उत्तर – जिसमें श्रावक और मुनि के चारित्र का वर्णन होता है उसे चरणानुयोग कहते हैं। तारण तरण श्रावकाचार, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, भगवती आराधना, मूलाचार, उपासकाध्ययन, पुरुषार्थ सिद्धि उपाय, श्रावक स्वरूप, श्रावक धर्म प्रदीप आदि चरणानुयोग के ग्रन्थ हैं।

प्रश्न – चरणानुयोग के स्वाध्याय से क्या लाभ है ?

उत्तर – पाप–पुण्य का ज्ञान, पापों से अरुचि, संयम, नियम में रुचि, अहिंसामय आचरण, विवेक पूर्ण चर्या एवं आत्मा से परमात्मा होने के लिये शुद्धोपयोग की साधना का बोध चरणानुयोग के स्वाध्याय से होता है ?

प्रश्न – द्रव्यानुयोग किसे कहते हैं, इसमें कौन–कौन से ग्रन्थ हैं ?

उत्तर – जिसमें सात तत्त्व, नौ पदार्थ, छह द्रव्य, पंचास्तिकाय का वर्णन हो तथा आत्म स्वरूप की प्राप्ति का मार्ग बताया गया हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। ज्ञान समुच्चय सार, उपदेश शुद्ध सार, ममल पाहुड़, समय सार, प्रवचन सार, नियम सार, परमात्म प्रकाश, योगसार आदि द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ हैं।

प्रश्न – जिनवाणी का चार अनुयोग रूप भेद हो जाने से क्या चारों अनुयोगों का लक्ष्य अलग–अलग नहीं हो जाता ?

उत्तर – जिस प्रकार एक भवन में चारों ओर चार दरवाजे हों और भवन के बीचों–बीच रत्न रखा हो तो किसी भी दरवाजे से प्रवेश कर रत्न प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार जिनवाणी रूपी श्रुत ज्ञान भवन के चार दरवाजे हैं जिनका लक्ष्य अपने चैतन्य रत्न की प्राप्ति कराने का है। वस्तु स्वरूप को सरलता पूर्वक समझने के लिये जिनवाणी के चार अनुयोग के स्वाध्याय द्वारा अपने चैतन्य स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं इसलिये चारों अनुयोगों का लक्ष्य एकमात्र स्वरूप की प्राप्ति कराने का है।

प्रश्न – चारों अनुयोगों की कथन पद्धति को किसी उदाहरण द्वारा समझाइये ?

उत्तर – एक जिज्ञासु ने पद्मपुराण का स्वाध्याय किया और उसमें पढ़ा कि 'लक्ष्मण ने रावण को मारा' जिज्ञासु ने एक दिन प्रथमानुयोग से पूछा – क्या लक्ष्मण ने रावण को मारा था ? प्रथमानुयोग ने कहा – हाँ, लक्ष्मण ने रावण को मारा था। जिज्ञासु को और विशेषता से जानने की इच्छा हुई तो उसने एक दिन चरणानुयोग से पूछा कि – क्या लक्ष्मण ने रावण को मारा था ? चरणानुयोग ने कहा– लक्ष्मण ने रावण को मारने का पाप भाव किया था। जिज्ञासु को और अधिक जिज्ञासा जाग गई फिर उसने करणानुयोग से वही प्रश्न किया, करणानुयोग ने कहा कि – लक्ष्मण तो निमित्त मात्र था, रावण अपनी आयु पूर्ण होने से मरा था। जिज्ञासु की जिज्ञासा और प्रबल हो गई और उसने फिर वही प्रश्न एक दिन द्रव्यानुयोग से पूछा, तब द्रव्यानुयोग ने कहा– कोई किसी को मार नहीं सकता क्योंकि वस्तु सत्स्वरूप है इसलिये रावण मरा नहीं है। रावण के जीव का दूसरी पर्याय में परिवर्तन हुआ है। इस प्रकार एक ही

बात को कथन करने की चारों अनुयोगों की शैली में भिन्नता है। अनुयोगों की कथन पद्धति में भिन्नता होने पर भी समन्वय है। अपेक्षा के सही अभिप्राय को समझना ही अनेकांत है। चार अनुयोग वस्तु स्वरूप को समझने के द्वार हैं। इस प्रकार जिनवाणी के यथार्थ स्वरूप को जानना चाहिये।

प्रश्न – किस अनुयोग से क्या उपलब्धि होती है ?

उत्तर – सापेक्षता के सिद्धांत पूर्वक, निश्चय और व्यवहार नय के द्वारा अनुयोगों से यथार्थ वस्तु स्वरूप का ज्ञान होता है। प्रत्येक अनुयोग से जो उपलब्धि होती है वह इस प्रकार है–

बनती हैं भूमिकायें प्रथमानुयोग से ।
आती हैं योग्यतायें करणानुयोग से ।।
पकती हैं पात्रतायें चरणानुयोग से ।
तब स्वानुभव झलकता द्रव्यानुयोग से ।।
जिनवाणी नमस्कार मंत्र–प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः।।

गुरु भक्ति

आओ हम सब मिलकर गायें, गुरुवाणी की गाथायें ।
है अनन्त उपकार गुरु का, किस विधि उसे चुका पायें ।।
वन्दे तारणम् जय जय वन्दे तारणम्.......
चौदह ग्रन्थ महासागर हैं, स्वानुभूति से भरे हुए ।
उन्हें समझना लक्ष्य हमारा, हम भक्ति से भरे हुए ।।
गुरु वाणी का आश्रय लेकर, हम शुद्धातम को ध्यायें ।।
है अनन्त उपकार ....
कैसा विषम समय आया था, जब गुरुवर ने जन्म लिया।
आडम्बर के तूफानों ने सत्य धर्म को भुला दिया ।।
तब गुरुवर ने दीप जलाया, जिससे जीव सम्हल जायें ।।
है अनन्त उपकार.......
अमृतमय गुरु की वाणी है, हम सब अमृत पान करें ।
जन्म जरा भव रोग निवारें, सदा धर्म का ध्यान धरें ।।
हम अरिहंत सिद्ध बन जायें, यही भावना नित भायें ।।
है अनन्त उपकार.......
शुद्ध स्वभाव धर्म है अपना, पहले यही समझना है ।
क्रिया काण्ड में धर्म नहीं है, ब्रह्मानंद में रहना है ।।
जागो जागो रे जग जीवो, सत्य सभी को बतलायें ।।
है अनन्त उपकार.......

प्रस्तावना

सोलहवीं शताब्दी के महान अध्यात्मवादी संत आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज सम्यग्ज्ञान के प्रभापुंज से अलोकित, रत्नत्रय विभूषित, वीतरागता की तेजोमय आभा संपन्न संसार सागर से स्वयं पार होने वाले तथा मानव मात्र को भव सागर से पार करने में निमित्त तारण तरण क्रांतिकारी वीतरागी महापुरुष थे। उन्होंने विचार मत, आचार मत, सार मत, ममल मत और केवल मत इन पाँच मतों में चौदह ग्रंथों की रचना कर भारत की आध्यात्मिक संस्कृति को अत्यंत दृढ़ता प्रदान कर जन-जन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है।

विचार मत का अर्थ है- बुद्धि पूर्वक अपना निर्णय करना। यह जीव अपने स्वरूप को भूलकर मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र के वश होकर अनादिकाल से संसार की चार गति, चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए कर्मफलों को भोग रहा है। स्वयं का अज्ञान मोह, राग, द्वेष और मिथ्यात्वादि विपरीत मान्यता संसार के कारणभूत परिणाम हैं।

विचार मत के अनुसार बुद्धि पूर्वक अपना निर्णय करने से संसार के दु:खों से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त होता है। विचार मत में तीन ग्रन्थ हैं - श्री मालारोहण जी, श्री पंडित पूजा जी, श्री कमल बत्तीसी जी इन तीनों ग्रंथों में क्रमश: सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन किया गया है। इन तीनों ग्रंथों में बत्तीस-बत्तीस गाथायें हैं इसलिये इन्हें **तीन बत्तीसी** के नाम से जाना जाता है और इनमें संसार सागर से पार होने में कारणभूत रत्नत्रय का वर्णन होने से इन्हें **तारण त्रिवेणी** भी कहा जाता है।

श्री मालारोहण जी ग्रंथ में शुद्धात्म तत्त्व की प्रधानता है। शुद्धात्म तत्त्व शुद्ध ज्ञान मयी अखंड अभेद तत्त्व है। इसके आश्रय और अनुभव से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। श्रद्धा गुण की निर्मल पर्याय प्रगट होती है। दृष्टि का विषय अखंड, अभेद शुद्धात्मा होता है। दृष्टि भेद को ग्रहण नहीं करती इसलिये अभेद स्वभाव की अनुभूति को सम्यग्दर्शन कहते हैं। आत्मानुभवी जीव के अंतरंग में मोक्ष रूपी वृक्ष का अद्वितीय बीज स्वरूप समस्त दोषों से रहित सम्यग्दर्शन जयवंत होता है।

ऐसे महा महिमामय सम्यग्दर्शन का स्वरूप इस मालारोहण जी ग्रंथ में पूज्य आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने प्रगट किया है। इस ग्रंथ की ३२ गाथाओं में धर्म, सम्यग्दर्शन, साधना, ज्ञानी साधक की चर्या, आत्मानुभूति का प्रमाण, धर्म की महिमा आदि अनेक विषयों का अभूतपूर्व विश्लेषण प्राप्त होता है।

एक ओर सम्यक्त्व का लाभ और दूसरी ओर त्रैलोक्य का लाभ होता हो तो त्रैलोक्य के लाभ से सम्यग्दर्शन का लाभ श्रेष्ठ है। अधिक क्या कहें ? अतीतकाल में जो श्रेष्ठजन सिद्ध हुए हैं और जो आगे सिद्ध होंगे, वह सम्यक्त्व का ही माहात्म्य है।

श्री मालारोहण जी

संक्षिप्त परिचय

सम्यग्दर्शन सब रत्नों में महारत्न है। सब योगों में उत्तम योग है। सब ऋद्धियों में महा ऋद्धि है। सम्यग्दर्शन सर्व सिद्धियों का प्रदाता है। तीन काल और तीन लोक में जीव को सम्यक्त्व के समान कुछ भी कल्याणकारी नहीं है और मिथ्यात्व के समान कोई अकल्याणकारी नहीं है। सम्यग्दर्शन के समान कोई मित्र नहीं और मिथ्यात्व के समान कोई शत्रु नहीं है।

सम्यग्दर्शन समस्त लोक का आभूषण है और मोक्ष होने पर्यन्त आत्मा को संसार में दु:खी नहीं होने देता।

श्री मालारोहण जी ग्रंथ में आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने ऐसे अतिशय महिमामय सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन किया है। आत्मानुभव सहित सम्यग्दृष्टि संसार के दु:खों से मुक्त होने का सत्पुरुषार्थ करता है। इस प्रकार विभिन्न आयामों से ग्रंथ की विषय वस्तु को स्पष्ट किया है। समवशरण में भगवान महावीर स्वामी से राजा श्रेणिक का जो जिज्ञासा और समाधान परक संवाद है, अत्यंत सुंदर विधि से उसका विवेचन किया गया है। यह सम्यग्दर्शन स्वरूप ज्ञान गुण माला किसी बाहरी वेष से, बाहरी ज्ञान से, धन आदि लौकिक पदार्थों से प्राप्त नहीं होती, शुद्ध दृष्टि ही इसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय है। सम्यग्दृष्टि जीव अपनी पात्रता और पुरुषार्थ प्रमाण इसका स्व संवेदन करते हैं। प्रथम भूमिका में बुद्धि पूर्वक अपना निर्णय करना अनिवार्य है, इस निर्णय के आधार पर आत्मानुभव रूप सम्यग्दर्शन रत्न अंतर में प्रकाशमान होता है।

विशेष बात यह है कि जो जीव संसार के दु:खों से छूटना चाहते हैं, विरक्त हैं, उन्हें आत्मोन्मुखी दृष्टि पूर्वक सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वही जीव मुक्ति के अविनाशी सुख को प्राप्त करते हैं।

अनन्त सिद्ध परमात्मा जिन्होंने सिद्धि को प्राप्त किया है उन्होंने सम्यग्दर्शन को धारण करके ही मुक्ति को उपलब्ध किया है। जो भी भव्य जीव सम्यक्त्व को धारण करेंगे वे भी मुक्ति श्री के अतीन्द्रिय सुख में रमण करने वाले मुक्ति रमापति त्रिलोकीनाथ सिद्ध भगवन्त होंगे। ऐसे अनिर्वचनीय अपूर्व महिमा से सम्पन्न महान सम्यग्दर्शन का वर्णन इन बत्तीस गाथाओं में निबद्ध है। समयसार के सार स्वरूप गागर में सागर की उक्ति को चरितार्थ करने वाला यह श्री मालारोहण जी ग्रंथ है।

इस ग्रंथ के सम्बंध में जिज्ञासा उठती है कि श्री मालारोहण जी ग्रंथ महान ग्रंथ है, इसमें सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन किया गया है इसलिये इसकी पवित्रता अपने आपमें प्रमाणित है, फिर ऐसे महान ग्रंथ को विवाह के अवसर पर क्यों पढ़ा जाता है ? उसका समाधान इस प्रकार है कि सांसारिक जीवन अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव भरा जीवन है और वहाँ हर परिस्थिति में धर्म की अनिवार्य आवश्यकता होती है। बिना धर्म की शरण के संसारी जीवन सुख मय नहीं हो सकता।

इसका प्रमुख उद्देश्य धर्म साक्षी पूर्वक गृहस्थ जीवन में प्रवेश करना है व गृहस्थ दशा में रहते हुए भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ बुद्धिपूर्वक करते रहना है। सांसारिक चक्रव्यूह से निकलने का एकमात्र उपाय सम्यग्दर्शन ही है। श्री मालारोहण ग्रंथ सम्यग्दर्शन की कला सिखाता है।

आचार्य तारण स्वामी जी कृत ग्रंथों में मोक्षमार्ग का स्वरूप

मोक्षमार्ग का स्वरूप

परिपूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा को प्राप्त करने में कारण भूत नियामक कारणों को मोक्ष मार्ग कहते है। मोक्ष मार्ग तो एक ही है उसका कथन दो प्रकार से किया जाता है। निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग।

व्यवहार मोक्षमार्ग - छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व और नौ पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, अंग पूर्व संबंधी आगम ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और तप साधना में प्रवृत्ति करना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग है। इसको दूसरे रूप में इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जीवादि नौ पदार्थों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, उन पदार्थों का अधिगम अर्थात् ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है और रागादि परिणामों का परिहार करना सम्यक्चारित्र है यह व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप है।

पंचास्तिकाय, छह द्रव्य तथा जीव-पुद्गल के संयोगी परिणामों से उत्पन्न आस्रव, बन्ध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा और मोक्ष इस प्रकार नव पदार्थों के विकल्परूप व्यवहार सम्यक्त्व है।

निश्चय मोक्षमार्ग - जो साधक अथवा साधु अंतर में निश्चय को प्रधान करके चलते हैं उनके श्रद्धान के अनुसार आत्म स्वरूप के निश्चय को सम्यग्दर्शन, आत्म स्वरूप के ज्ञान को सम्यग्ज्ञान तथा उसी आत्मा में स्थिर होने को सम्यक्चारित्र कहते हैं। इन तीनों की एकता मोक्ष का कारण है। वास्तव में शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा से यह तीनों एक चैतन्य स्वरूप ही हैं। एक अखण्ड आत्मा में भेदों के लिये स्थान ही नहीं है। ज्ञानी अपने आत्म स्वभाव की अखंडता का अनुभव करते हुए ज्ञायक रहता है। इसलिये जो आत्मा रत्नत्रय की अखण्डता मय निजात्मा में एकाग्र होता हुआ अन्य कुछ भी न करता है, न छोड़ता है अर्थात् करने व छोड़ने के विकल्पों से अतीत हो जाता है वह आत्मा ही निश्चय से मोक्षमार्ग है।

प्रथम जब निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब विकल्प रूप व्यवहार सम्यग्दर्शन का अभाव होता है। इसलिये वह (व्यवहार सम्यग्दर्शन) वास्तव में निश्चय सम्यग्दर्शन का साधक नहीं है, तथापि उसे भूतनैगमनय से साधक कहा जाता है, अर्थात् पहिले जो व्यवहार सम्यग्दर्शन था वह सम्यग्दर्शन के होते समय अभाव रूप होता है, इसलिये जब उसका अभाव होता है तब पूर्व की सविकल्प श्रद्धा को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इस प्रकार व्यवहार सम्यग्दर्शन निश्चय सम्यग्दर्शन का कारण नहीं, किंतु उसका अभाव कारण है।

सार बात यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इन तीनों गुणों को रत्नत्रय कहते हैं। जीवादि सात तत्त्व और सच्चे देव गुरू शास्त्र आदि की श्रद्धा, आगम का ज्ञान और व्रत आदि चारित्र का पालन करना भेद रत्नत्रय है तथा आत्म स्वरूप की श्रद्धा, आत्मा का स्वसंवेदन ज्ञान और आत्म स्वरूप में निश्चल स्थिति या निर्विकल्प समाधि में स्थित होना अभेद रत्नत्रय है। रत्नत्रय की एकता ही मोक्षमार्ग है। भेद रत्नत्रय व्यवहार मोक्षमार्ग है और अभेद रत्नत्रय निश्चय मोक्षमार्ग है।

गाथा – १

मंगलाचरण – साध्य का निर्धारण

उवंकार वेदन्ति सुद्धात्म तत्वं, प्रनमामि नित्यं तत्वार्थ सार्धं ।
न्यानं मयं संमिक दर्स नेत्वं, संमिक्त चरनं चैतन्य रूपं ॥

अन्वयार्थ – (उवंकार) पंच परमेष्ठी **(सुद्धात्म तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व का **(वेदन्ति)** अनुभव करते हैं **(नेत्वं)** नित्य, सदाकाल **(संमिक दर्स)** सम्यग्दर्शन **(न्यानं)** सम्यग्ज्ञान **(संमिक्त चरनं)** सम्यक् चारित्र **(मयं)** मयी **(चैतन्य रूपं)** चैतन्य स्वरूपी **(तत्वार्थ)** प्रयोजन भूत तत्त्व अर्थात् शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** साधना के लिये **(नित्यं)** नित्य ही, सदैव **(प्रनमामि)** प्रणाम करता हूं।

अर्थ – पंच परमेष्ठी शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करते हैं। वह शुद्धात्म तत्त्व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मयी चैतन्य स्वरूपी है। ऐसे प्रयोजनभूत शुद्धात्म तत्त्व की साधना करने के लिये, मैं हमेशा उसे प्रणाम करता हूँ।

प्रश्न १ – इस गाथा में शुद्धात्म तत्त्व को नमस्कार क्यों किया है ?

उत्तर – आत्म कल्याण करने वाले जीव के लिये निज शुद्धात्म तत्त्व साध्य, आराध्य होता है, उसकी साधना और प्राप्ति के लिये शुद्धात्म तत्त्व को नमस्कार किया है।

प्रश्न २ – शुद्धात्म तत्त्व कैसा है ?

उत्तर – शुद्धात्म तत्त्व सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मयी चैतन्य स्वरूपी है ।

प्रश्न ३ – पंच परमेष्ठी शुद्धात्म तत्त्व का कैसा अनुभव करते हैं ?

उत्तर – अरिहंत सिद्ध परमेष्ठी शुद्धात्म तत्त्व के निर्विकल्प अनुभव में सदैव लीन रहते हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी शुद्धोपयोग में निर्विकल्प स्वानुभूति करते हैं तथा सविकल्प दशा में ज्ञान में प्रतीति रूप अनुभव करते हैं।

प्रश्न ४ – उवंकार में पंच परमेष्ठी किस प्रकार गर्भित हैं ?

उत्तर – पाँचों परमेष्ठी के प्रथम अक्षरों के संयोग से ॐ में पंच परमेष्ठी इस प्रकार समाहित हैं –अरिहंत का – अ

सिद्ध अशरीरी होते हैं उनका – अ, अ + अ = आ

आचार्य का – आ, आ+आ = आ

उपाध्याय का – उ, आ+उ = ओ

साधु मुनि होते हैं उनका – म् , ओ + म् = ओम्

गाथा – २

वंदना एवं ग्रंथ कथन की प्रतिज्ञा

नमामि भक्तं श्री वीरनाथं, नंतं चतुस्टं त्वं विक्त रूपं ।
माला गुनं बोछन्ति त्वं प्रबोधं, नमामिहं केवलि नंत सिद्धं ॥

अन्वयार्थ – (त्वं) [हे प्रभो] आपने **(नंतं चतुस्टं)** अनन्त चतुष्टय मयी **(रूपं)** स्वरूप को

(विक्त) व्यक्त अर्थात् प्रगट कर लिया है **(श्री वीरनाथं)** श्री वीरनाथ भगवान आपको **(भक्तं)** भक्ति पूर्वक **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ **(केवलि नंत)** अनन्त केवलज्ञानी और **(सिद्धं)** सिद्ध भगवन्तों को **(नमामिहं)** नमस्कार करता हूँ **(त्वं प्रबोधं)** [हे आत्मन्] तुम्हारे प्रबोधनार्थ **(माला गुनं)** माला के गुणों को अर्थात् मालारोहण ग्रंथ को **(बोछन्ति)** कहता हूँ।

अर्थ – परम वीतरागी श्री वीरनाथ भगवान आपने अनंत चतुष्टयमयी स्वरूप को प्रगट कर लिया है। हे प्रभु ! मैं आपको भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ। अनंत केवलज्ञानी और अनंत सिद्ध भगवंतों को नमस्कार करके हे आत्मन् ! तुम्हारे लिये तत्त्व का विशेष ज्ञान प्रगट हो, इस लक्ष्य से माला के गुणों को अर्थात् मालारोहण ग्रंथ को कहता हूँ।

प्रश्न १ – अनन्त चतुष्टय क्या है ?

उत्तर – अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य (बल) यह अनन्त चतुष्टय कहलाते हैं, अनन्त चतुष्टय आत्मा की सत्ता है।

प्रश्न २ – अनन्त चतुष्टय आत्मा की सत्ता है तो प्रगट क्यों नहीं है ?

उत्तर – प्रत्येक आत्मा की सत्ता अनन्त चतुष्टय मयी है किन्तु संसारी जीवों का अनन्त चतुष्टय घातिया कर्मों से आवृत हो रहा है इसलिये प्रगट नहीं है, जो वीतरागी साधु अपने स्वरूप में लीन होकर चार घातिया कर्मों को क्षय करते हैं उन्हें अनन्त चतुष्टय प्रगट हो जाता है।

प्रश्न ३ – कौन से कर्म के अभाव से अनंत दर्शन आदि प्रगट होते हैं ?

उत्तर – दर्शनावरण के अभाव से – अनंत दर्शन, ज्ञानावरण के अभाव से – अनंत ज्ञान, मोहनीय के अभाव से – अनंत सुख, अंतराय के अभाव से – अनंत बल प्रगट होते हैं।

प्रश्न ४ – मालारोहण का क्या अर्थ है ?

उत्तर – मालारोहण का अर्थ – माला अर्थात् श्रेणियां, मंजिलें । आरोहण अर्थात् – चढ़ना।
इस प्रकार माला + आरोहण = मालारोहण।
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की श्रेणियों पर चढ़ना मालारोहण है । भेदज्ञान तत्त्वनिर्णय पूर्वक साधना की उत्तरोत्तर ऊंचाइयों को उपलब्ध करना मालारोहण है। पचहत्तर गुणों की माला अपने शुद्धात्म देव को समर्पित करना अर्थात् गुणों को प्रगट करना मालारोहण है। अभिप्राय यह है कि ७५ गुणों के चिंतन – मनन पूर्वक निज शुद्धात्म स्वरूप की आराधना करना मालारोहण है।

प्रश्न ५ – मालारोहण का यहाँ क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – आचार्य श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने तत्त्व का विशेष ज्ञान प्रगट हो इस उद्देश्य से यहां १०८ गुणों की माला का वर्णन करने की प्रतिज्ञा की है। वे १०८ गुण इस प्रकार हैं – **देव आराधना हेतु ७५ गुण** (गाथा ११) देव के ५ गुण (पंच परमेष्ठी), गुरु के तीन गुण (तीन रत्नत्रय), शास्त्र के चार गुण (चार अनुयोग) सिद्ध के आठ गुण, सोलह कारण भावना, धर्म के दशलक्षण, सम्यग्दर्शन के आठ अंग, सम्यग्ज्ञान के आठ अंग और तेरह प्रकार का चारित्र। **तत्त्व निर्णय हेतु २७ तत्त्व** (गाथा–१०) ७ तत्त्व, ९ पदार्थ, ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय। **साधना हेतु ६ सम्यक्त्व** (गाथा–३,२९) मूल सम्यक्त्व, आज्ञा सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व, उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, शुद्ध सम्यक्त्व।

गाथा – ३

सम्यक्‌दृष्टि सच्चे पुरुषार्थी

काया प्रमानं त्वं ब्रह्मरूपं, निरंजनं चेतन लष्यनेत्वं ।
भावे अनेत्वं जे न्यान रूपं, ते सुद्ध दिस्टी संमिक्त वीर्जं ॥

अन्वयार्थ – (त्वं) तुम [आत्मा] **(काया प्रमानं)** शरीर के बराबर **(ब्रह्म रूपं)** ब्रह्म स्वरूपी **(निरंजनं)** कर्म मल से रहित **(चेतन लष्यनेत्वं)** चैतन्य लक्षण मयी हो [ऐसा श्रद्धान कर] **(जे)** जो जीव **(अनेत्वं)** अनित्य, क्षणभंगुर, नाशवान **(भावे)** भाव में, अशुद्ध पर्यायी परिणमन में **(न्यान रूपं)** ज्ञान रूप अर्थात् ज्ञायक रहते हैं **(ते)** वे **(सुद्ध दिस्टी)** सम्यक्‌दृष्टि **(संमिक्त वीर्जं)**सच्चे पुरुषार्थी हैं ।

अर्थ – हे आत्मन् ! तुम शरीर के प्रमाण हो, ब्रह्मस्वरूपी, निरंजन अर्थात् कर्म मलों से रहित, चैतन्य लक्षणमयी हो ऐसा श्रद्धान करके जो जीव अनित्य भावों से भिन्न ज्ञान रूप ज्ञायक रहते हैं, वे शुद्ध दृष्टि अर्थात् सम्यक्‌दृष्टि सच्चे पुरुषार्थी हैं।

प्रश्न १ – आत्मा का व्यवहार नय और निश्चय नय से क्या स्वरूप है ?

उत्तर – आत्मा व्यवहार नय से काया प्रमाण है अर्थात् नाम कर्म के उदय से प्राप्त छोटे – बड़े शरीर के बराबर है और निश्चय नय से ब्रह्म स्वरूपी कर्म मल से रहित सिद्ध के समान शुद्ध है।

प्रश्न २ – सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने आत्म स्वरूप का अनुभव प्रमाण बोध होना ही सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न ३ – सम्यग्दृष्टि जीव की क्या विशेषता है ?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि जीव संसार, शरीर, संयोग और संयोगी भावों में, जल में कमल की तरह ज्ञायक रहता है।

प्रश्न ४ – सच्चा पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर – ज्ञायक रहना ही सच्चा पुरुषार्थ है।

प्रश्न ५ – इस गाथा की क्या विशेषता है ?

उत्तर – इस गाथा में आचार्य महाराज ने आत्मचिंतन के पाँच सूत्र दिये हैं जो इस प्रकार हैं – १. मैं आत्मा शरीर के बराबर हूँ। **(शरीर नहीं)** २. मैं आत्मा ब्रह्म स्वरूपी हूँ। **(संसारी नहीं)** ३. मैं आत्मा कर्म मलों से रहित हूँ। **(अशुद्ध नहीं)** ४. मैं आत्मा चैतन्य लक्षण वाला हूँ। **(जड़ नहीं)** ५. मैं आत्मा अनित्य भावों से भिन्न ज्ञान स्वरूपी हूँ। **(ज्ञायक हूँ)**

प्रश्न ६ – '' काया प्रमानं त्वं ब्रह्म रूपं '' से संबंधित जैन आचार्य भगवंतों का क्या संदेश है ?

उत्तर – **जह पउमराय रयणं,खित्तं खीरे पभासयदि खीरं ।**
तह देही देहत्थो, सदेहमेत्तं पभासयदि ॥

जिस प्रकार पद्मराग रत्न दूध में डाला जाने पर दूध को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार देही अर्थात् जीव देह में रहता हुआ स्वदेह प्रमाण प्रकाशित होता है।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, पंचास्तिकाय संग्रह – गाथा ३३)

दंसण णाण पहाणो, असंखदेसो हु मुत्ति परिहीणो ।
संगहिय देह पमाणो, णायव्वो एरिसो अप्पा ।।

आत्मा को दर्शन ज्ञान से प्रधान, असंख्यात प्रदेशी, अमूर्तीक,धारण किये हुए देह प्रमाण जानो ।

(श्री देवसेनाचार्य, तत्वसार गाथा – १७)

सुद्धप्पा तणुमाणो, णाणी चेदणगुणोहमेकोऽहं ।
इय झायंतो जोई, पावइ परमप्पयं ठाणं ।।

शुद्धात्मा शरीर प्रमाण है, ज्ञानी है, चैतन्य गुण का भंडार है, ऐसा मैं एकाकी हूं । ऐसा ध्यान करने वाला योगी परमात्म पद रूप स्थान को प्राप्त करता है ।

(श्री पद्मसिंह मुनि, ज्ञानसार गाथा – ४५)

अणुगुरु देह पमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा, णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ।।

आत्मा व्यवहार नय से संकोच विस्तार गुण के कारण समुद्घात अवस्था के अतिरिक्त शेष सब अवस्थाओं में नाम कर्म से निर्मित प्राप्त छोटे बड़े शरीर प्रमाण और निश्चय नय से असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश के बराबर है ।

(श्री नेमिचंद्राचार्य, द्रव्य संग्रह गाथा – १०)

णिच्छइ लोय पमाण मुणि, ववहारइ सुसरीरु ।
एहउ अप्प सहाउ मुणि, लहु पावहु भव तीरु ।।

जो आत्म स्वभाव को निश्चय से लोक प्रमाण और व्यवहार से स्वशरीर प्रमाण समझता है वह शीघ्र ही संसार से पार हो जाता है । (श्री योगीन्दुदेव, योगसार गाथा – २४)

स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तानुमात्रो निरत्यय: ।
अत्यंत सौख्यवानात्मा लोकालोक विलोकन: ।।

आत्मा लोकालोक को जानने देखने वाला, अत्यंत अनंत सुख स्वभाव वाला, शरीर प्रमाण, नित्य, स्वसंवेदन से तथा कहे हुए गुणों से योगीजनों द्वारा अच्छी तरह अनुभव में आया हुआ है ।

(श्री पूज्यपाद स्वामी, इष्टोपदेश गाथा – २१)

लोय पमाणो जीवो, देहपमाणो वि अत्थिदे खेत्ते ।
ओगाहण सत्तीदो, संहरण विसप्पधम्मादो ।।

अवगाहन शक्ति के कारण जीव लोकप्रमाण है और संकोच विस्तार धर्म के कारण शरीर प्रमाण भी है ।

(श्री स्वामी कार्तिकेय, कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा – १७६)

एगो मे सासदो आदा, णाण दंसण लक्खणो ।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोग लक्खणा ।।

ज्ञान दर्शन लक्षण वाला, शाश्वत एक आत्मा मेरा है, शेष सब संयोग लक्षण वाले भाव मुझसे बाह्य हैं, भिन्न हैं ।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, नियमसार गाथा – १०२)

चिच्छक्ति व्याप्त सर्वस्वसारो जीव इयानयम् ।
अतोऽतिरिक्ता: सर्वेऽपि भाव: पौद्गलिका अमी ॥

चैतन्य रूप जो शक्ति उससे ही व्याप्त है संपूर्ण निज सार जिसका, ऐसा इतना मात्र तो जीव है तथा इस चैतन्य स्वरूप जीव से भिन्न संपूर्ण भाव वे पुद्गल स्वरूप हैं।

(श्री अमृतचन्द्राचार्य, अध्यात्म अमृत कलश – ३५)

एकोऽहं निर्मम: शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्र गोचर: ।
बाह्या: संयोगजा भावा मत्त: सर्वेऽपि सर्वथा ॥

मैं एक, ममतारहित, शुद्ध, ज्ञानी योगीन्द्रों के द्वारा जानने योग्य हूँ, संयोग जन्य जितने भी पदार्थ और भाव हैं वे मुझसे सर्वथा भिन्न हैं।

(श्री पूज्यपाद स्वामी, इष्टोपदेश गाथा – २७)

लोक मात्र प्रमाणोऽयं निश्चयेन न हि संशय: ।
व्यवहारे तनुमात्र: कथित: परमेश्वरै: ॥

जिनेन्द्र भगवान ने आत्मा को व्यवहार से शरीर प्रमाण और निश्चय से लोक प्रमाण कहा है इसमें संशय नहीं है।

(श्री परमानंद स्तोत्र श्लोक – १४)

अन्य: सचेतनो जीवो वपुरन्यदचेतनम् ।
हा तथापि न मन्यन्ते नानात्वमनयोर्जन: ॥

सचेतन जीव भिन्न है और अचेतन शरीर भिन्न है, खेद है कि फिर भी लोग इन दोनों के भेद को नहीं मानते। (श्री अमृतचन्द्राचार्य, तत्त्वार्थसार गाथा– ६/३५)

प्रश्न ७ – 'भावे अनेत्वं जे न्यान रूपं' से संबंधित जैनाचार्यों की क्या देशना है ?

उत्तर – **सुक्खमओ अहमेक्को, सुद्धप्पा णाण दंसण समग्गो ।**
अण्णे जे परभावा, ते सव्वे कम्मणा जणिया ॥

मैं एक हूँ, सुख स्वरूप हूँ, शुद्धात्मा ज्ञान दर्शन से समग्र (परिपूर्ण) हूँ, अन्य जो परभाव हैं वे सब कर्मोदय जनित हैं। (श्री देवसेनाचार्य, आराधनासार गाथा – १०३)

अहमेक्को खलु सुद्धो, दंसण णाण मइयोसदा रूवी ।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमेत्तंपि ॥

रत्नत्रय परिणत आत्मा यह जानता है कि निश्चय से मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन ज्ञान मय हूँ, सदा अरूपी हूँ, किंचित् मात्र भी अन्य पर द्रव्य परमाणुमात्र मेरा नहीं है।

(श्री कुंदकुंदाचार्य, समयसार गाथा – ३८)

सद् द्रव्यमस्मि चिदहं, ज्ञाता दृष्टा सदप्युदासीनः ।
स्वोपात्तदेह मात्रस्ततः पृथग्गगनवदमूर्तः ॥

मैं सत् द्रव्य हूं, चैतन्य स्वरूप हूं, ज्ञाता दृष्टा सदा ही उदासीन हूं, जो शरीर प्राप्त होता है उतना ही मेरा प्रमाण हैं, किंतु मैं उससे भिन्न हूं, आकाश के समान अमूर्त हूं।

(श्री समन्तभद्राचार्य, तत्वानुशासन गाथा – १५३)

गाथा – ४

सम्यक्‌दृष्टि साधक का कर्तव्य

संसार दुष्यं जे नर विरक्तं , ते समय सुद्धं जिन उक्त दिस्टं ।
मिथ्यात मय मोह रागादि षंडं, ते सुद्ध दिस्टी तत्वार्थ सार्धं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो **(नर)** पुरुषार्थी भव्य जीव **(संसार दुष्यं)** पंच परावर्तन रूप जन्म – मरण के दु:खों से **(विरक्तं)** विरक्त हैं, छूटना चाहते हैं **(ते)** वे **(जिन उक्त)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार **(समय सुद्धं)** शुद्धात्म स्वरूप को **(दिस्टं)** देखें, अनुभव करें **(मिथ्यात)** मिथ्यात्व अर्थात् तत्वार्थ के प्रति अश्रद्धान रूप परिणाम **(मय)** मद, अहं भाव **(मोह)** ममत्व, मम भाव **(रागादि)** राग है आदि में जिसके ऐसे राग–द्वेष आदि समस्त विकारी भावों का **(षंडं)** खंडन करें, ज्ञान पूर्वक अंतर शोधन परिमार्जन करें **(ते)** वे **(सुद्ध दिस्टी)** सम्यक्‌दृष्टि **(तत्वार्थ सार्धं)** तत्वार्थ के श्रद्धानी [साधक] हैं।

अर्थ – जो पुरुषार्थी भव्य जीव संसार के दु:खों से छूटना चाहते हैं वे जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार अपने शुद्ध समय अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप को देखें, अनुभव करें और मिथ्यात्व, मद, मोह, राग आदि को खंड–खंड करें वे ही शुद्ध दृष्टि तत्त्वार्थ के श्रद्धानी साधक हैं।

प्रश्न १ – संसार किसे कहते हैं ?

उत्तर – 'संसृति इति संसार:' जीव एक शरीर को छोड़ता है, दूसरे नये शरीर को ग्रहण करता है पश्चात् उसे भी छोड़कर पुन: नया शरीर धारण करता है। इस प्रकार मिथ्यात्व कषाय से युक्त होकर जीव चार गति चौरासी लाख योनियों में संसरण अर्थात् परिभ्रमण करता है इसे संसार कहते हैं।

प्रश्न २ – संसार में दु:ख क्या है ?

उत्तर – संसार में जन्म के, मरण के, रोग के, वृद्धावस्था आदि के अनेक दु:ख हैं। मनुष्य गति में गर्भावस्था, जन्म, बालपन, जरा आदि के दु:ख हैं। तिर्यंच गति में भूख–प्यास, वध–बंधन, ताड़न–मारण, छेदन–भेदन आदि के दु:ख हैं। नरक गति में शीत–उष्ण, भूख–प्यास, असुर कुमारों द्वारा परस्पर उत्पन्न किया हुआ दु:ख तथा अशुभ परिणाम, अशुभ लेश्या विक्रिया आदि के अनेक दु:ख हैं। देवगति में अज्ञान के कारण ईर्ष्या तथा अन्य भी अनेक दु:ख हैं। इस दु:ख भरे संसार में सुख नहीं है।

प्रश्न ३ – सम्यग्दृष्टि साधक क्या करता है ?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि साधक निरंतर भेदज्ञान तत्त्वनिर्णय का अभ्यास करता है और स्वभाव के आश्रय से ज्ञायक रहता हुआ अपने पूर्व संस्कारों को तोड़ता है, मान्यताओं को मिटाता है तथा शुद्धात्म स्वभाव की साधना में संलग्न रहता है।

गाथा – ५

सम्यग्दृष्टि साधक की स्वरूप साधना

सल्यं त्रियं चित्त निरोध नित्वं, जिन उक्त वानी ह्रिदै चेतयत्वं ।
मिथ्यात देवं गुरु धर्म दूरं, सुद्धं सरूपं तत्वार्थ सार्धं ॥

अन्वयार्थ – (सल्यं त्रियं) तीन प्रकार की शल्यों को **(चित्त)** चित्त से **(निरोध)** रोक कर **(जिन**

उक्त वानी) जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कही हुई वाणी [जिनवाणी] का **(ह्रिदै)** हृदय में **(नित्वं)** नित्य, हमेशा **(चेतयत्वं)** चिंतन करता है **(मिथ्यात देवं)** मिथ्यात्व मय देव **(गुरु धर्म)** गुरु धर्म से **(दूरं)** दूर रहकर **(सुद्धं सरूपं)** शुद्ध स्वरूपी **(तत्वार्थ)** प्रयोजन भूत तत्त्व अर्थात् शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** साधना करता है।

अर्थ – सम्यक्दृष्टि साधक तीन शल्यों को चित्त से रोककर, हमेशा जिनेन्द्र भगवान की वाणी का हृदय में चिंतन मनन करता है। मिथ्यात्वमय देव, गुरु, धर्म से दूर रहकर अपने शुद्ध स्वरूपी शुद्धात्म तत्त्व की साधना करता है यही संसार के दुःखों से छूटने का उपाय है।

प्रश्न १ – शल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – अज्ञान जनित मन के ऐसे विचार जो कांटे की तरह छिदते रहते हैं उन्हें शल्य कहते हैं।

प्रश्न २ – शल्य कितनी होती हैं और उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर – शल्य तीन होती हैं– मिथ्या शल्य, माया शल्य, निदान शल्य इनका स्वरूप इस प्रकार है – **आगम की अपेक्षा शल्य का स्वरूप –**

१. मिथ्या शल्य – धर्म के स्वरूप को नहीं जानना। संसार के कारणों को तथा मोक्ष और मोक्ष के कारणों को यथार्थतया नहीं जानना, विपरीत संदेहयुक्त रहना, व्रत धारण करने का अभिप्राय नहीं जानना, दूसरों की देखा देखी या अन्य अभिप्राय से व्रत पालन करने वाला मिथ्या शल्य से युक्त अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है।

२. माया शल्य – मन वचन काय की वक्र परिणति, पापों को छिपाना, मान प्रतिष्ठा के लोभ से व्रत पालन करना, अंतरंग में पापों से घृणा न होना ऐसे परिणामों वाला जीव अज्ञानी मिथ्यादृष्टि माया शल्य से युक्त रहता है।

३. निदान शल्य – व्रत नियम का पालन करके आगामी ऐहिक अर्थात् इस लोक संबंधी विषय सुखों की अभिलाषा रखने को निदान शल्य कहते हैं।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि शल्य सहित होता है, व्रती श्रावक और महाव्रती निःशल्य होता है।

साधना की अपेक्षा शल्य का स्वरूप –

१. मिथ्या शल्य – मिथ्या अर्थात् झूठी, शल्य अर्थात् कल्पना 'ऐसा न हो जाये, 'ऐसा न हो गया हो' ऐसे झूठे विकल्प को मिथ्या शल्य कहते हैं। 'ऐसा न हो जाये' यह विकल्प चैन से नहीं रहने देता, यह शल्य मोह की तीव्रता में और भी दुःखद होती है।

२. माया शल्य – ' ऐसा नहीं ऐसा होता ' ऐसे मिथ्या विकल्प को माया शल्य कहते हैं। कंचन कामिनी कीर्ति की चाह 'ऐसा नहीं ऐसा होता' सब कुछ होते हुए मिलते हुए भी यह शल्य तृप्त और संतुष्ट नहीं रहने देती। वर्तमान का सुख भी नहीं भोगने देती, हमेशा माया के चक्कर में ही भ्रमित करती रहती है।

३. निदान शल्य – ' ऐसा करना या ऐसा करूंगा ' कर्तृत्व से पूर्ण ऐसे अहं रूप मिथ्या विकल्प को निदान शल्य कहते हैं। यह शल्य भूत भविष्य में भटकाती रहती है, वर्तमान में नहीं जीने देती। इसके कारण हिंसादि पापों में प्रवृत्ति होती है। इस शल्य के कारण मन सक्रिय और कठोर रहता है।

गाथा - ६

मुक्ति सुख को प्राप्त करने का उपाय

जे मुक्ति सुष्यं नर कोपि सार्धं, संमिक्त सुद्धं ते नर धरेत्वं ।
रागादयो पुन्य पापाय दूरं, ममात्मा सुभावं ध्रुव सुद्ध दिस्टं ॥

अन्वयार्थ - (जे) जो **(कोपि)** कोई भी **(नर)** पुरुषार्थी भव्य जीव **(मुक्ति सुष्यं)** मोक्ष के सुख को **(सार्धं)** साधना, पाना चाहते हैं **(ते)** वे **(नर)** पुरुषार्थी साधक **(संमिक्त सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्त्व को **(धरेत्वं)** धारण करें **(रागादयो)** राग आदि विकारी भाव **(पुन्य पापाय)** पुण्य-पापादि कर्मों से **(दूरं)** दूर **(ममात्मा)** मेरी आत्मा का **(सुभावं)** स्वभाव **(ध्रुव)** शाश्वत, अविनाशी **(सुद्ध)** कर्म रहित, शुद्ध है **(दिस्टं)** ऐसा देखें, अनुभव करें।

अर्थ - जो कोई भी पुरुषार्थी नर अर्थात् भव्य जीव मुक्ति के सुख को प्राप्त करना चाहते हैं, वे शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करें। रागादि विकारी भाव और पुण्य-पाप से दूर मेरा आत्म स्वभाव ध्रुव है, शुद्ध है, ऐसा देखें अर्थात् अनुभव करें।

प्रश्न १ - मोक्ष का सुख कैसा है ?

उत्तर - मोक्ष का सुख अनुपम, अतीन्द्रिय, बाधा रहित, इन्द्रियातीत, कभी नष्ट न होने वाला, शाश्वत और अविनाशी है।

प्रश्न २ - शुद्ध सम्यक्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने आत्म स्वरूप के दृढ़ अटल निश्चय श्रद्धान को शुद्ध सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रश्न ३ - रागादि भाव और पुण्य-पाप का आत्मा से क्या संबंध है ?

उत्तर - रागादि भाव मोहनीय कर्म के उदय निमित्त से होने वाले अशुद्ध भाव हैं और आत्मा स्वभाव से ध्रुव शुद्ध है अत: रागादि विकारी भावों का आत्मा से कोई भी संबंध नहीं है। पुण्य-पाप कर्म भी जड़ हैं, अचेतन हैं और आत्मा ज्ञानानंद स्वभावी चैतन्य स्वरूप है,आत्मा और कर्म दोनों की प्रकृति भिन्न-भिन्न है अत: पुण्य-पाप कर्म का चैतन्य ज्ञायक स्वभावी आत्मा से कोई संबंध नहीं है।

गाथा - ७

आत्म स्वरूप की महिमा और आत्म दर्शन की प्रेरणा

श्री केवलं न्यान विलोकि तत्वं, सुद्धं प्रकासं सुद्धात्म तत्वं ।
संमिक्त न्यानं चरनंत सुष्यं, तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्सनेत्वं ॥

अन्वयार्थ - (श्री केवलं न्यान) श्री केवलज्ञानी भगवान ने अपने ज्ञान में **(तत्वं)** तत्त्व को **(विलोकि)** देखा है **(सुद्धात्म तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व **(सुद्धं प्रकासं)** शुद्ध प्रकाश मयी **(संमिक्त)** सम्यग्दर्शन **(न्यानं)** सम्यग्ज्ञान **(चर)** सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण **(नंत सुष्यं)** अनंत सुख स्वभावी है **(तत्वार्थ)** प्रयोजनभूत शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** श्रद्धा करो **(त्वं)** तुम भी **(दर्सनेत्वं)** देखो, दर्शन करो, अनुभव करो।

अर्थ – श्री केवलज्ञानी भगवान ने अपने ज्ञान में देखा है – शुद्धात्म तत्त्व शुद्ध प्रकाशमयी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण अनंत सुख स्वभावी है, ऐसे प्रयोजनभूत शुद्धात्म तत्त्व की श्रद्धा करो और तुम भी अपने शुद्धात्म स्वरूप को देखो, अंतरंग में स्वानुभव करो।

प्रश्न १ – केवलज्ञान की क्या विशेषता है ?

उत्तर – केवलज्ञान तीन लोक, तीन काल के समस्त द्रव्यों को, उनकी पर्यायों को युगपत अर्थात् एक साथ एक समय में जानता है। संपूर्ण लोक–अलोक, द्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित अक्रमरूप से केवलज्ञान में झलकते हैं। यदि ऐसे अंनत लोक भी हों, तो भी केवलज्ञान सिंधु में बिंदु के समान हैं।

प्रश्न २ – केवलज्ञानी भगवान के केवलज्ञान की दिव्यता को स्वीकार करने से क्या लाभ है ?

उत्तर – केवलज्ञानी भगवान त्रिकालदर्शी हैं, उनके ज्ञान में झलकने वाला त्रिकालवर्ती परिणमन क्रमबद्ध निश्चित अटल है, इस प्रकार सर्वज्ञ की सर्वज्ञता के अनुसार वस्तु स्वरूप स्वीकार करने से अनादि काल से चली आ रही पर में कर्तृत्व, भोक्तृत्व की खोटी बुद्धि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णतः अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न ३ – केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं आत्मा को नहीं, कोई ऐसा कहे तो क्या दोष है ?

उत्तर – असंभव दोष आयेगा। जीव ज्ञान मय है। ज्ञान ही जीव का स्वरूप है इसलिये ज्ञान आत्मा को जानता है; यदि ज्ञान आत्मा को न जाने तो वह आत्मा से पृथक् सिद्ध हो किन्तु ज्ञान और आत्मा त्रिकाल अभिन्न हैं और केवलज्ञानी भगवान अपने आत्मा को जानते हैं। सत्य तो यह है कि उन्होंने पहले अपनी आत्मा को जाना तभी केवलज्ञानी हुए।

प्रश्न ४ – केवलज्ञानी भगवान पर को जानते हैं, ऐसा कहने में तो उन्हें बंध का प्रसंग आयेगा ?

उत्तर – केवलज्ञानी भगवान अपने स्वरूप में लीन रहते हैं। उनका जानना – देखना दर्पणवत् होता है, इच्छा और राग पूर्वक नहीं होता। उनका मोहनीय कर्म क्षय हो गया है, इसलिये देखने जानने से उन्हें बंध नहीं होता। स्वयं स्वतः दिखते हैं।

प्रश्न ५ – केवलज्ञानी भगवान सबको जानते हैं यह क्यों कहा जाता है ?

उत्तर – केवलज्ञान अतिशय निर्मल ज्ञान है, पूर्ण ज्ञान है, वह इतना निर्मल होता है कि बिना प्रयत्न के दर्पण की तरह सभी पदार्थ उसमें प्रतिबिम्बित होते हैं। चूंकि वह महान ज्ञान केवलज्ञानी को ही प्रगट होता है इसलिये केवलज्ञानी भगवान की महिमा बताने के लिये व्यवहार से कहा जाता है कि वे सबको देखते – जानते हैं। निश्चय से तो केवलज्ञानी भगवान अपने आत्मा को ही देखते – जानते हैं।

प्रश्न ६ – शुद्धात्म तत्त्व का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – शुद्धात्म तत्त्व शुद्ध चित्प्रकाशमयी सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र से परिपूर्ण अनंत सुख स्वभावी कर्म रहित आनंद स्वरूप है।

गाथा – ८

आत्म गुणों को प्रगट करने की प्रेरणा

संमिक्त सुद्धं ह्रदयं ममस्तं[1], तस्य गुनमाला गुथतस्य वीर्जं ।
देवाधिदेवं गुरू ग्रंथ मुक्तं, धर्मं अहिंसा षिम उत्तमाध्यं ॥

अन्वयार्थ – (संमिक्त सुद्धं) शुद्ध सम्यक्त्व **(ह्रदयं ममस्तं)** मेरे हृदय में स्थित है **(तस्य)** उसकी **(गुनमाला)** गुणमाला को **(गुथतस्य)** गूंथने का, प्रगट करने का **(वीर्जं)** पुरुषार्थ करो [यह सम्यक्त्व स्वरूप आत्मा] **(देवाधिदेवं)** अरिहंत भगवान **(गुरू ग्रंथ मुक्तं)** परिग्रह से रहित सच्चे गुरू **(धर्मं अहिंसा)** अहिंसा मयी धर्म **(षिम उत्तमाध्यं)** उत्तम क्षमादि गुणों से परिपूर्ण है ।

अर्थ – शुद्ध सम्यक्त्व मेरे हृदय में स्थित है अर्थात् मैं स्वयं शुद्धात्मा परमात्मा हूँ, इसकी गुणमाला को गूंथने का पुरुषार्थ करो । यह शुद्ध सम्यक्त्व स्वरूप आत्मा देवाधिदेव अरिहंत परमात्मा के समान गुणों वाला, परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ गुरु के समान गुणों का धारी, अहिंसामयी वीतराग धर्म तथा उत्तम क्षमा आदि अनंत गुणों से परिपूर्ण है ।

प्रश्न १ – 'शुद्ध सम्यक्त्व मेरे हृदय में स्थित है' इसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – आत्मा स्वभाव से शुद्ध है, सम्यक्त्व स्वरूप है । आत्मा शुद्ध भाव में निवास कर रहा है, शुद्ध भाव में रहने से अनंत गुण प्रगट होते हैं । आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी के अतिरिक्त श्री कुन्दकुन्द आचार्य महाराज, श्री नेमिचन्द्राचार्य जी, श्री अमृतचन्द्राचार्य जी ने भी कहा है कि ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, वह शुद्ध भाव पूर्वक प्रगट होता है । अंतरंग में शक्ति रूप से विद्यमान है, शुद्ध भाव से पर्याय में व्यक्त हो जाता है ।

प्रश्न २ – इस गाथा में आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी ने क्या प्रेरणा दी है ?

उत्तर – आत्मा शुद्ध सम्यक्त्व स्वरूप है और यह आत्मा स्वभाव से परमात्मा है । आत्मा में परमात्म शक्ति निहित है, आत्मा गुरू के समान गुणों वाला अर्थात् रत्नत्रयमयी है । अहिंसामयी धर्म और उत्तम क्षमादि धर्म भी आत्मा के लक्षण हैं, इस प्रकार यह शुद्ध सम्यक्त्व स्वरूप आत्मा अनन्त गुणों का धारी है । आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी ने इस गाथा में पुरुषार्थ पूर्वक आत्म गुणों को प्रगट करने की प्रेरणा दी है ।

प्रश्न ३ – 'शुद्ध सम्यक्त्व की गुणमाला गूंथने का पुरुषार्थ करो' इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – आत्मा सत् पुरुषार्थ से अपनी अनुभूति पूर्वक धर्म को प्रगट करता है । वीतरागी साधु पद धारण कर अहिंसा और क्षमा आदि धर्म के लक्षणों में आचरण करता है । अपने स्वरूप में लीन होकर चार घातिया कर्मों को क्षय कर देवाधिदेव अरिहंत होता है और सिद्ध पद को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार अंतरंग में छिपी हुई आत्म शक्तियों को प्रगट करना ही गुणमाला गूंथने का अभिप्राय है ।

१– प्राचीन प्रतियों मे समस्तं पाठान्तर भी मिलता है, जिसका अर्थ सबके हृदय में स्थित है, ऐसा जानना चाहिये ।

गाथा - ९

अतिशय महिमा मय शुद्धात्म तत्त्व

तत्वार्थ सार्धं त्वं दर्सनेत्वं, मलं विमुक्तं संमिक्त सुद्धं ।
न्यानं गुनं चरनस्य सुद्धस्य वीर्जं, नमामि नित्वं सुद्धात्म तत्वं ।।

अन्वयार्थ - (तत्वार्थ) प्रयोजन भूत शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** श्रद्धा सहित **(त्वं)** तुम **(दर्सनेत्वं)** अनुभव करो [कि यह शुद्धात्म तत्त्व] **(मलं)** मलों से, विकारों से, कर्मों से **(विमुक्तं)** रहित **(संमिक्त सुद्धं)** सम्यक्त्व से शुद्ध **(न्यानं)** ज्ञान **(चरनस्य)** चारित्र **(वीर्जं)** पुरुषार्थ आदि **(सुद्धस्य)** शुद्ध **(गुनं)** गुणों का धारी है **(सुद्धात्म तत्वं)** [ऐसे] शुद्धात्म तत्त्व को **(नित्वं)** सदैव, नित्य **(नमामि)** नमस्कार करता हूँ।

अर्थ - प्रयोजनीय शुद्धात्म तत्त्व की श्रद्धा पूर्वक अपने स्वरूप का अनुभव करो। शुद्धात्म तत्त्व समस्त कर्म मलों से रहित, सम्यक्त्व से शुद्ध, ज्ञान चारित्र तथा पुरुषार्थ आदि शुद्ध गुणों का धारी है। ऐसे महिमामय शुद्धात्म तत्त्व को मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न १ - आत्मा अनंत गुणों का धारी है फिर यह निर्बल, पराश्रित पराधीन क्यों रहता है ?

उत्तर - आत्मा स्वभाव से शुद्धात्मा परमात्मा है, अनंत गुणों का धारी है किन्तु इसे अपनी सत्ता शक्ति का बोध नहीं है। अनंत गुणों में से एक भी गुण की पहिचान नहीं है इसलिये शरीराश्रित होकर कर्म के उदय जन्य परिणमन में, विभावों में जुड़ा रहता है। शुभ- अशुभ क्रियाओं का अपने को कर्ता मानता है, अज्ञानी बना हुआ है इसलिये निर्बल पराधीन पराश्रित रहता है। अपनी अनंत गुणों मयी सत्ता को जान ले, पहिचान ले तो स्वयं ही तीन लोक का नाथ परमात्मा है।

प्रश्न २ - अनंत गुणों में ज्ञान और अन्य गुणों की क्या विशेषता है ?

उत्तर - अनंत गुणों में ज्ञान ऐसा गुण है जो ज्ञेयाकार होकर परिणमता है। शेष अन्य गुण आकार रूप नहीं होते इसलिये अनाकार रहते हैं। यही कारण है कि ज्ञान सविकल्प और साकार है जबकि अन्य अनन्त गुणों में निर्विकल्पता होती है। ज्ञान के अतिरिक्त शेष सभी गुण केवल सत् रूप लक्षण से ही लक्षित हैं इसलिये सामान्य अथवा विशेष दोनों ही अपेक्षा से वास्तव में अनाकार रूप ही होते हैं।

प्रश्न ३ - शुद्धात्म तत्त्व को बार-बार नमस्कार करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर - जिस प्रकार किसी व्यक्ति को राजा से कुछ लेना होता है तो वह राजा का बहुमान करता है, इसी प्रकार साधक ज्ञानी अपने शुद्धात्म स्वरूप में लीन होना चाहता है इसलिये बार-बार शुद्धात्म तत्त्व के गुणों की महिमा गाता है, बहुमान करता है, नमस्कार करता है।

गाथा - १०

सत्ताईस तत्त्वों में इष्ट निज शुद्धात्म तत्त्व

जे सप्त तत्वं षट् दर्व जुक्तं , पदार्थ काया गुन चेतनेत्वं ।
विस्वं प्रकासं तत्वानि वेदं, श्रुतं देवदेवं सुद्धात्म तत्वं ।।

अन्वयार्थ - (सप्त तत्वं) सात तत्त्व **(षट् दर्व)** छह द्रव्य **(पदार्थ)** नव पदार्थ **(काया)** पाँच

अस्तिकाय में **(जे)** जो **(चेतनेत्वं गुन)** सदा काल चैतन्य गुण से **(जुक्तं)** युक्त है [वह] **(सुद्धात्म तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व **(विस्वं)** विश्व को **(प्रकासं)** प्रकाशित करने वाला **(तत्वानि)** तत्त्वों को **(वेदं)** जानने वाला है **(श्रुतं)** शास्त्र, जिनवाणी में [शुद्धात्म तत्त्व को] **(देवदेवं)** देवों का देव कहा गया है।

अर्थ – सात तत्त्व, छह द्रव्य, नौ पदार्थ और पाँच अस्तिकाय में जो चैतन्य गुण से युक्त है ऐसा शुद्धात्म तत्त्व ही विश्व को प्रकाशित करने वाला और समस्त तत्त्वों को जानने वाला है, जिनवाणी में सर्वज्ञ परमात्मा ने उसी को देवों का देव कहा है।

प्रश्न १ – तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य और अस्तिकाय का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – तत्त्व – वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं। २. पदार्थ – जिससे पुण्य-पाप रूप पदों का बोध हो उसे पदार्थ कहते हैं। ३. द्रव्य – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं। ४. अस्तिकाय – बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न २ – तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य और अस्तिकाय के भेद बताइये ?

उत्तर – तत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

पदार्थ – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, पुण्य, पाप, संवर, निर्जरा, मोक्ष।

द्रव्य – जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ।

अस्तिकाय – जीवास्तिकाय, अजीवास्किाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय ।

प्रश्न ३ – जब जीव एक है फिर उसे जीव तत्त्व, जीव पदार्थ, जीव द्रव्य और जीवास्तिकाय क्यों कहा गया है ?

उत्तर – जीव में ज्ञान दर्शन चेतना भाव जीव रूप ही हैं अतः वह जीव तत्त्व है। जीव शब्द से ज्ञानानंद स्वभावी आत्मा (जीव) का बोध होता है अतः वह जीव पदार्थ है। स्वनाम चतुष्टय वाला होने से वह जीव पदार्थ है। **'दव्वं दव्व सहावं'** जिसका द्रवित अर्थात् परिणमित होने का स्वभाव है वह जीव द्रव्य है। जीव के असंख्यात प्रदेश होने से उसका एक क्षेत्र है अतः वह जीवास्तिकाय है। ऐसा जीव का द्रव्य क्षेत्र काल भाव स्व चतुष्टय रूप कथन आता है।

प्रश्न ४ – तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य और अस्तिकाय किसके विषय हैं ?

उत्तर – श्री ज्ञान समुच्चय सार जी ग्रंथ में आचार्य श्री मद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज ने गाथा ७६४ से ८३२ तक सत्ताईस तत्त्वों का विशद् वर्णन किया है। वहाँ तत्त्व आदि किसके विषय हैं यह स्पष्ट किया है जो इस प्रकार हैं – तत्त्व – दृष्टि का विषय है । पदार्थ – ज्ञान का विषय है। द्रव्य – चारित्र का विषय है। अस्तिकाय – तप का विषय है।

गाथा – ११

देवाराधना का विधान, पचहत्तर गुणों से कल्याण

देवं गुरं सास्त्र गुनानि नेत्वं, सिद्धं गुनं सोलहकारनेत्वं ।
धर्मं गुनं दर्सन न्यान चरनं, मालाय गुथतं गुन सस्वरूपं ॥

अन्वयार्थ – **(देवं)** देव के **(गुरं)** गुरू के **(सास्त्रं)** शास्त्र के **(गुनानि)** गुण **(सिद्धं गुनं)** सिद्ध के

गुण **(सोलह कारनेत्वं)** सोलह कारण भावना **(धर्मं गुनं)** धर्म के दश लक्षण **(दर्सन)** सम्यग्दर्शन **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान **(चरनं)** सम्यक्‌चारित्र के **(गुन)** गुणों से **(नेत्वं)** नित्य, सदैव **(सस्वरूपं)** स्व स्वरूप की **(मालाय)** माला को **(गुथतं)** गूंथो।

अर्थ – देव के ५ गुण – पाँच परमेष्ठी, गुरु के ३ गुण – तीन रत्नत्रय, शास्त्र के ४ गुण – चार अनुयोग, सिद्ध के ८ गुण, सोलह कारण भावना, धर्म के दशलक्षण, सम्यग्दर्शन के ८ अंग, सम्यग्ज्ञान के ८ अंग और १३ प्रकार का सम्यक्‌चारित्र इन गुणों से निज स्वरूप की गुणमाला गूँथो। पचहत्तर गुणों के माध्यम से अपने शुद्धात्म तत्त्व का चिंतन – मनन, साधना करो यही देव आराधना की विधि है।

प्रश्न १ – पचहत्तर गुण कौन–कौन से हैं भेद सहित स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – परमेष्ठी ५ – अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। रत्नत्रय ३ सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र। अनुयोग ४ – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

सिद्ध के आठ गुण – १. सम्यक्त्व, २. दर्शन, ३. ज्ञान, ४. अगुरुलघुत्व, ५. अवगाहनत्व, ६. सूक्ष्मत्व, ७. वीर्यत्व, ८. अव्याबाधत्व।

सोलह कारण भावना – १. दर्शन विशुद्धि, २. विनय सम्पन्नता ३.शीलव्रतेष्वनतिचार, ४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ५. संवेग, ६. शक्तितस्त्याग, ७. शक्तितस्तप, ८. साधु समाधि, ९. वैयावृत्यकरण,१०. अर्हत्‌भक्ति,११. आचार्यभक्ति, १२. बहुश्रुतभक्ति १३. प्रवचनभक्ति १४. आवश्यक अपरिहाणि, १५. मार्ग प्रभावना,१६. प्रवचन वत्सलत्व।

धर्म के दशलक्षण – उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य। सम्यग्दर्शन के आठ अंग – नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना।

सम्यग्ज्ञान के आठ अंग –१. व्यंजनाचार – वर्ण पद वाक्य को शुद्ध पढ़ना।
२. अर्थाचार – अनेकान्त स्वरूप अर्थ को ठीक–ठीक समझना।
३. उभयाचार – पाठ आदि शुद्ध पढ़ते हुए अर्थ को ठीक–ठीक समझना।
४. कालाचार – सामायिक आदि के काल को टाल कर स्वाध्याय करना।
५. विनयाचार – मन वचन काय से शास्त्र की विनय करना।
६. उपधानाचार – शास्त्र को वेष्टन आदि में विनय पूर्वक सम्हाल कर रखना।
७. बहुमानाचार – बहुमान पूर्वक पाठ आदि पढ़ना।
८. अनिह्नवाचार–गुरु व शास्त्र का नाम नहीं छिपाना।

तेरह प्रकार का चारित्र – पाँच महाव्रत – अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत,अपरिग्रह महाव्रत। तीन गुप्ति – मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति। पाँच समिति – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेपण समिति, प्रतिष्ठापना समिति इस प्रकार ७५ गुण कहे गये हैं।

प्रश्न २ – पचहत्तर गुणों का देव आराधना से क्या संबंध है ?

उत्तर – इन पचहत्तर गुणों के द्वारा अरिहंत सिद्ध भगवान के गुणों का और अपने सत् स्वरूप शुद्धात्म देव का आराधन करना व्यवहार से देव आराधना है। अपने उपयोग को शुद्ध स्वभाव में लगाना निश्चय से देव की आराधना है।

प्रश्न ३ – पचहत्तर गुणों का उल्लेख इस गाथा के अतिरिक्त तारण साहित्य में कहाँ किया गया है ?

उत्तर – पचहत्तर गुणों का संक्षिप्त उल्लेख वृहद् मंदिर विधि में गुण पाठ पूजा के प्रथम दो श्लोकों में किया गया है तथा विस्तृत वर्णन श्री तारण तरण श्रावकाचार जी ग्रंथ में गाथा ३२३ से ३६५ तक किया गया है। श्री पंडित पूजा जी षट् आवश्यक का अध्यात्म मय यथार्थ स्वरूप बताने वाला ग्रंथ है।

गाथा – १२

अध्यात्म साधना निश्चय व्यवहार से समन्वित

पडिमाय ग्यारा तत्वानि पेषं, व्रतानि सीलं तप दान चेत्वं ।
संमिक्त सुद्धं न्यानं चरित्रं, स दर्सनं सुद्ध मलं विमुक्तं ॥

अन्वयार्थ – (तत्वानि पेषं) तत्त्वों को अच्छी तरह पहिचान कर, अनुभव कर **(पडिमाय ग्यारा)** दर्शन आदि ग्यारह प्रतिमा **(व्रतानि)** अहिंसादि पाँच अणुव्रत **(सीलं)** सप्त शील – ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत **(तप दान)** तप और दान में **(चेत्वं)** चित्त लगाओ अर्थात् इनको धारण करो और **(मलं विमुक्तं)** कर्म मलों से रहित **(संमिक्त सुद्धं)** शुद्ध सम्यग्दर्शन **(न्यानं चरित्रं)** सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मयी **(स दर्सनं सुद्ध)** शुद्ध स्वरूप का दर्शन करो।

अर्थ – तत्त्वों को अच्छी तरह पहिचान कर, अनुभव करके, ग्यारह प्रतिमा, पाँच अणुव्रत, सप्त शील (तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत) तथा तप, दान में चित्त लगाओ अर्थात् इनको धारण करो और समस्त कर्म मलों से रहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी शुद्धात्म स्वरूप का दर्शन करो।

प्रश्न १ – 'पडिमाय ग्यारा तत्वानि पेषं' का अर्थ स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – संसार में जीव-अजीव दो तत्त्व प्रधान हैं, इन दोनों को भेदज्ञान पूर्वक भिन्न-भिन्न परखकर अच्छी तरह जानकर, अनुभव करके दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, अनुराग भक्ति प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, आरम्भ त्याग प्रतिमा, परिग्रह त्याग प्रतिमा, अनुमति त्याग प्रतिमा और उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा, इन ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करो। ग्यारह प्रतिमाओं का आचरण सम्यग्दर्शन पूर्वक देशविरत नाम के पाँचवें गुणस्थान में होता है।

प्रश्न २ – व्रतानि शीलं का क्या अर्थ है ?

उत्तर – व्रतानि से यहाँ पाँच अणुव्रत लिये गये हैं-अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह प्रमाण अणुव्रत। शीलं का अभिप्राय सप्त शील से है। तीन गुणव्रत दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत और चार शिक्षाव्रत – सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा अतिथि संविभाग इस प्रकार इन सात को यहाँ सप्त शील कहा गया है।

प्रश्न ३ – प्रतिमा एवं व्रताचरण के पालन में क्या सावधानी रखना चाहिये ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन सहित परिणामों की विशुद्धता पूर्वक आत्मोन्नति की श्रेणियों पर आरोहण करने को प्रतिमा कहते है। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन १२ व्रतों का विशुद्ध भाव पूर्वक निरतिचार पालन करना व्रताचरण है। प्रतिमा व व्रताचरण धारी श्रावक पंचम

गुणस्थानवर्ती होते हैं अतएव आत्म कल्याणार्थी भव्य जीवों को उचित है कि पहले धर्म का वास्तविक स्वरूप समझें, मुक्ति के मार्ग को जानें,तत्त्वों का सही ज्ञान करें, अपने आत्मा के स्वभाव - विभाव को जानें। सम्यग्दर्शन सहित विभाव त्यागने और स्वभाव की प्राप्ति रूप अपने गुणों को प्रगट करने के लिये श्रावक तथा मुनिव्रत की साधक बाह्य और अन्तरंग क्रियायें व उनके फल को जानें, पश्चात् यथाशक्ति व्रत अंगीकार करें।

प्रश्न ४ - प्रतिमा तथा व्रताचरण के निरतिचार पालन करने का क्या फल है ?

उत्तर - जो जीव प्रतिमा और व्रताचरण का निरतिचार पालन करता है तथा मृत्यु के समय समाधि धारण करके व्रत एवं प्रतिमा संबंधी दोषों को दूर करता है, वह श्रावक के व्रतों का पालन करके सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है वहाँ से आकर मनुष्य पर्याय प्राप्त करके मोक्ष जाता है।

गाथा - १३

सम्यग्दृष्टि साधक की चर्या स्याद्वाद से सम्पन्न

मूलं गुनं पालंति जे विसुद्धं, सुद्धं मयं निर्मल धारयेत्वं ।
न्यानं मयं सुद्ध धरंति चित्तं, ते सुद्ध दिस्टी सुद्धात्म तत्वं ॥

अन्वयार्थ - **(जे)** जो जीव, जो साधक **(मूलं गुनं)** मूलगुणों का **(विसुद्धं)** विशुद्ध भावों से **(पालंति)** पालन करते हैं **(सुद्धं मयं निर्मल)** शुद्ध भाव मय निर्मलता को **(धारयेत्वं)** धारण करते हैं **(सुद्धं)** शुद्ध **(न्यानं मयं)** ज्ञानमयी **(सुद्धात्म तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व को **(धरंति चित्तं)** चित्त में धरते हैं **(ते)** वे **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि हैं।

अर्थ - जो जीव मूलगुणों का विशुद्ध भावों से पालन करते हैं, शुद्ध भावमय निर्मलता को धारण करते हैं, परम ज्ञानमयी शुद्धात्म तत्त्व को चित्त में धरते हैं, चिंतवन करते हैं वे शुद्ध दृष्टि मोक्षमार्गी साधक हैं।

प्रश्न १ - मूलगुण किसे कहते हैं, किस भूमिका में कौन से मूलगुण होते हैं।

उत्तर - प्रथम भूमिका में पालन किये जाने वाले गुणों को मूलगुण कहते हैं। १. श्रावक की भूमिका में पाँच उदम्बर (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर के फल) और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) के त्याग करने को अष्ट मूल गुण कहते हैं। २. सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की भूमिका में संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य, अनुकम्पा इन गुणों के पालन करने को अष्ट मूल गुण कहते हैं। ३. साधु पद में २८ मूलगुण होते हैं - पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक, सात अन्य गुण। पाँच महाव्रत - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। पाँच समिति-ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण, प्रतिष्ठापना। पांच इन्द्रिय निरोध - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण इन पाँच इन्द्रियों पर संयम होता है। छह आवश्यक - सामायिक, स्तवन, वंदना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग। सात अन्य गुण - केशलोंच, अचेलकत्व, अस्नान, भूमिशयन, अदन्तधोवन, खड़े-खड़े भोजन, एक बार भोजन।

विशेष - श्री जिन आचार्य तारण स्वामी जी ने निश्चय और व्यवहार के समन्वय पूर्वक २८ मूलगुण इस प्रकार बताये हैं - सम्यग्दर्शन के १० भेद, सम्यग्ज्ञान के ५ भेद, १३ प्रकार का

चारित्र। (श्री न्यान समुच्चयसार जी ग्रंथ की गाथा-३८२ एवं वृहद् मंदिर विधि में गुण पाठ पूजा श्लोक-९ के आधार पर)

गाथा - १४

निर्मल सम्यक्त्व का धारी सम्यग्दृष्टि

संकाय दोषं मद मान मुक्तं, मूढ़ं त्रयं मिथ्या माया न दिस्टं ।
अनाय षट् कर्म मल पंचवीसं, तिक्तस्य न्यानी मल कर्म मुक्तं ॥

अन्वयार्थ - (संकाय दोषं) शंकादि आठ दोष **(मद)** ज्ञानादि आठ मद **(मान)** अहंकार, अभिमान से **(मुक्तं)** दूर रहने वाला **(मूढ़ं त्रयं)** तीन मूढ़ता **(अनाय षट् कर्म)** छह अनायतन **(मल पंचवीसं)** पच्चीस दोषों का **(तिक्तस्य)** त्याग करने वाला **(मिथ्या माया)** मिथ्या माया को **(न दिस्टं)** नहीं देखने वाला **(न्यानी)** ज्ञानी **(मल कर्म)** कर्म मलों से **(मुक्तं)** मुक्त हो जाता है।

अर्थ - शंका आदि आठ दोषों से, ज्ञान आदि आठ प्रकार के मद, अहंकार से दूर रहने वाला, तीन मूढ़ता और छह अनायतन सम्यग्दर्शन के इन पच्चीस दोषों का त्यागी, मिथ्या माया को नहीं देखने वाला ज्ञानी कर्म बंधनों से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न १ - सम्यग्दर्शन के २५ दोष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - आठ दोष -शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़ दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना। आठ मद - ज्ञान मद, पूजा मद (धनमद) कुल मद, जाति मद, बलमद, ऋद्धि मद, तप मद, रूप मद। तीन मूढ़ता-देव मूढ़ता, लोक मूढ़ता, पाखंड मूढ़ता। छह अनायतन- कुदेव, कुगुरू, कुधर्म और तीन इनको मानने वाले। सम्यग्दर्शन होने पर इन पच्चीस दोषों का अभाव हो जाता है।

प्रश्न २ - सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की अंतरंग स्थिति कैसी होती है ?

उत्तर - निश्चय से मैं एक हूँ, दर्शन ज्ञान मय सदा अरूपी हूँ ,किंचित् मात्र अन्य पर द्रव्य, परमाणु मात्र भी मेरा नहीं है, ऐसा जिसे निश्चय है, ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के जीवन में चाहे जैसे शुभाशुभ कर्म का उदय आये, जिसके भय से तीन लोक के जीव भी कांप उठें परन्तु सम्यग्दृष्टि ज्ञानी अपने ज्ञान भाव से चलायमान नहीं होता। ऐसे निर्मल दृढ़ श्रद्धान वाला ज्ञानी समस्त कर्म मलों से मुक्त हो जाता है।

गाथा - १५

स्वानुभव में चित्प्रकाश से परिपूर्ण शुद्धात्म तत्त्व

सुद्धं प्रकासं सुद्धात्म तत्वं, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं ।
रत्नत्रयं लंकृत विस्वरूपं, तत्वार्थ सार्धं बहुभक्ति जुक्तं ॥

अन्वयार्थ - (सुद्धात्म तत्वं) शुद्धात्म तत्त्व **(सुद्धं प्रकासं)** शुद्ध प्रकाशमयी ज्ञान ज्योति स्वरूप **(समस्त)** सभी प्रकार के **(संकल्प विकल्प)** संकल्प-विकल्पों से **(मुक्तं)** रहित **(रत्नत्रयं)** रत्नत्रय से **(लंकृत)** अलंकृत, सुशोभित **(विस्वरूपं)** परमात्म स्वरूप है **(तत्वार्थ)** [ऐसे] प्रयोजनभूत शुद्धात्म

तत्त्व की **(बहुभक्ति)** बहुत भक्ति, समर्पण भाव से **(जुक्तं)** युक्त होकर **(सार्धं)** साधना करो।

अर्थ – शुद्धात्म तत्त्व शुद्ध प्रकाशमयी समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित, रत्नत्रय से अलंकृत अपना ही परमात्म स्वरूप है। ऐसे प्रयोजन भूत शुद्धात्म तत्त्व की बहुत भक्ति युक्त होकर साधना करो।

प्रश्न १ – ज्ञानी अपने सत्स्वरूप की साधना किस प्रकार करता है ?

उत्तर – शुद्धात्म तत्त्व परम प्रकाशमान केवलज्ञान ज्योति स्वरूप लोकालोक प्रकाशक है। समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित है अर्थात् मन में होने वाले भावों से मुक्त, रत्नत्रयमयी परम ब्रह्म परमात्म स्वरूप है, भेदज्ञान पूर्वक ऐसा सत्श्रद्धान ज्ञान करके ज्ञानी अपने सत् स्वरूप की बहुत भक्ति युक्ति पूर्वक साधना करता है।

प्रश्न २ – ज्ञानी साधक की अंतरंग साधना किस प्रकार वृद्धिंगत होती है ?

उत्तर – ज्ञानी अंतरंग में चैतन्य मात्र वस्तु को देखता है और शुद्धनय के आलम्बन द्वारा उसमें एकाग्र होकर अपने परम तत्त्व का अनुभव करता है, जिससे उसके समस्त आस्रव भावों का अभाव होता है और त्रिकालवर्ती पदार्थों को जानने वाला केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानी की साधना उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती हुई पूर्णता को प्राप्त होती है।

प्रश्न ३ – शुद्धात्म तत्त्व की अनुभूति हुई यह कैसे जानें ?

उत्तर – स्वानुभूति होने पर –१. शुद्धात्मा ज्ञान प्रकाश रूप अनुभव में आता है। २. संकल्प-विकल्पों से रहित निर्विकल्प अवस्था होती है। ३. रत्नत्रय मय अभेद अवस्था होती है। ४. अनुभूति के काल में देह का कोई भी भान नहीं रहता है। ५. पर द्रव्य, संयोग और संयोगी भावों का बोध नहीं रहता है।

प्रश्न ४ – अनुभव किसे कहते हैं ?

उत्तर – पं. श्री बनारसीदास जी ने अनुभव का स्वरूप नाटक समयसार में इस प्रकार कहा है –

वस्तु विचारत ध्यावतैं, मन पावे विश्राम।
रस स्वादत सुख ऊपजै, अनुभव ताको नाम॥

प्रश्न ५ – शुद्धात्म तत्त्व इन्द्रिय गम्य क्यों नहीं है ?

उत्तर – शुद्धात्म तत्त्व स्पर्श, रस, गंध और शब्द से रहित निरंजन है इसलिये किसी भी इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता। स्वानुभव प्रत्यक्ष से ही जाना जा सकता है, इस कारण शुद्धात्म तत्त्व इन्द्रिय गम्य नहीं है।

गाथा – १६

चैतन्य लक्षण मयी धर्म की अतिशय महिमा

जे धर्म लीना गुन चेतनेत्वं, ते दुष्य हीना जिन सुद्ध दिस्टी।
संप्रोषि तत्वं सोइ न्यान रूपं, ब्रजंति मोष्यं षिनमेक एत्वं॥

अन्वयार्थ – (जे) जो जीव **(गुन चेतनेत्वं)** चैतन्य गुण मयी **(धर्म)** स्वभाव में **(लीना)** लीन होते हैं **(ते)** वे **(दुष्य हीना)** दु:खों से रहित **(जिन)** अन्तरात्मा **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि हैं **(न्यान रूपं)** ज्ञान स्वरूपी **(तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व को **(संप्रोषि)** अनुभव में प्राप्त करके **(सोइ)** वह ज्ञानी **(षिनमेक)** एक क्षण में **(एत्वं)** ही **(मोष्यं)** मोक्ष को **(ब्रजंति)** चले जाते हैं, प्राप्त कर लेते हैं।

अर्थ – जो जीव चैतन्य गुणमयी धर्म में लीन होते हैं, वे दु:खों से रहित अंतरात्मा शुद्ध दृष्टि

कहलाते हैं। वे ज्ञानी, अपने ज्ञान स्वरूपी शुद्धात्म तत्त्व का अनुभव करते हुए एक क्षण में ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न १ – आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी ने अपने ग्रन्थों में धर्म का क्या स्वरूप बतलाया है ?

उत्तर – आचार्य श्री जिन तारण स्वामी जी ने अपने सभी ग्रन्थों में आत्मा के चैतन्य लक्षण स्वभाव को धर्म कहा है, जो सम्पूर्ण जिनवाणी का सार है।

उदाहरण स्वरूप कुछ ग्रन्थों के गाथांश इस प्रकार हैं –

१. चेतना लक्षणो धर्मो। आत्मा का चैतन्य लक्षण स्वभाव धर्म है। (पंडित पूजा गा. – ९)

२. शुद्ध धर्मं च प्रोक्तं च, चेतना लष्यनो सदा। त्रिकाली चेतना लक्षण स्वभाव को शुद्ध धर्म कहा गया है। (तारण तरण श्रावकाचार गाथा – १६८)

३. धम्मं च चेयनत्वं, चेतन लष्यनेहि संजुत्तं। चैतन्य लक्षण से संयुक्त होना, उसका अनुभव करना ही धर्म है। (न्यान समुच्चय सार गाथा – ७१०)

४. धम्मं सहाव उत्तं, चेयन संजुत्त षिपन ससरूवं। कर्मों को क्षय करने वाले स्व स्वरूप चैतन्य स्वभाव से संयुक्त होना धर्म है। (उपदेश शुद्ध सार गाथा –२७)

इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये। यही चैतन्य लक्षण धर्म है, जिसमें लीन होने मात्र से समस्त दु:खों का अभाव होता है और अपने चैतन्य स्वभाव में लीन होकर ज्ञानी एक क्षण मात्र में मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न २ – जैन आचार्यों ने धर्म के संबंध में क्या देशना दी है ?

उत्तर – **१. दंसण मूलो धम्मो।** सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, दर्शन पाहुड़ गाथा –२)

२. धम्मो दया विसुद्धो। जो दया से विशुद्ध है वह धर्म है।

(श्री कुन्दकुन्दाचार्य, बोध पाहुड़ गाथा –२५)

३. मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो धम्मो। मोह और क्षोभ अर्थात् राग–द्वेष से रहित आत्मा का परिणाम धर्म है। (श्री कुन्दकुन्दाचार्य, भाव पाहुड़ गाथा –८३)

४. संसार दु:खत: सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे। जो प्राणियों को संसार के दु:ख से उठाकर उत्तम सुख में धरता है वह धर्म है। (श्री समंतभद्राचार्य, रत्नकरण्ड श्रावकाचार गाथा –२)

५. सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदु:। धर्म के ईश्वर तीर्थंकर अरिहंत भगवान ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को धर्म कहा है।

(श्री समंतभद्राचार्य, रत्नकरण्ड श्रावकाचार गाथा –३)

६. धम्मो मंगलमुक्कट्टं अहिंसा संजमो तवो । धर्म उत्कृष्ट मंगल है जो अहिंसा संयम तप स्वरूप है। (उत्तराध्ययन सूत्र एवं समणसुत्तं)

७. **वर्द्धते च तथा मेघात्पूर्वं जाता महीरुहा: ।**
तथा चिद्रूप सद् ध्यानात् धर्मश्चाभ्युदय प्रद : ।।

जिस प्रकार पहले से ऊगे हुए वृक्ष, मेघ के जल से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार शुद्ध चिद्रूप के ध्यान से धर्म भी वृद्धि को प्राप्त होता है और नाना प्रकार के कल्याणों को प्रदान करता है। (श्री भट्टारक ज्ञानभूषण जी, तत्त्वज्ञान तरंगिणी–१४/९)

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

प्रथम वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री मालारोहण

समय – ३ घंटा   अभ्यास के प्रश्न – गाथा १ से १६   पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) परिपूर्ण अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा को प्राप्त करने में कारणभूत नियामक कारणों को कहते हैं।
(ख) पंचपरमेष्ठी.................का अनुभव करते हैं।
(ग) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की श्रेणियों पर चढ़ना...............है।
(घ) सम्यक्दृष्टि सच्चे...................है।
(ङ) अपने आत्मस्वरूप के अनुभव प्रमाण बोध होना ही...............है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं आत्मा को नहीं, ऐसा कहें तो असंभव दोष आयेगा।
(ख) शरीर अनंत गुण वाला है। (ग) तत्त्व तो दृष्टि का विषय है। (घ) सामायिक आदि के काल को टाल कर स्वाध्याय करना चाहिये। (ङ) पंडित पूजा जी षट् आवश्यक का यथार्थ स्वरूप बताने वाला ग्रंथ है।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) मोक्ष का सुख कैसा है –	(१) क्षणिक	(२) इंद्रियातीत	(३) शरीर सहित	(४) वैभव सहित
(ख) समस्त द्रव्यों को युगपत् जानते हैं –	(१) संसारी	(२) मुनि	(३) आचार्य	(४) केवलज्ञानी
(ग) प्रयोजनभूत तत्त्व हैं –	(१) परमात्मा	(२) आत्मा	(३) अंतरात्मा	(४) शुद्धात्मा
(घ) वस्तु के स्वभाव को कहते हैं –	(१) तत्त्व	(२) पदार्थ	(३) द्रव्य	(४) अस्तिकाय
(ङ) ''दव्वं दव्व सहावं'' प्रतीक है –	(१) पुद्गल	(२)आकाश का	(३) धर्म का	(४) जीवद्रव्य का

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क		स्तंभ – ख
मद्य मांस मधु	–	मूलगुण
बड़पीपल	–	इंद्रिय
ईर्या, भाषा	–	मकार
रसना, घ्राण	–	उद्म्बर
भूमिशयन	–	समिति

प्रश्न ५ – अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ४ x ५ = २०)

(क) प्रतिमा तथा व्रताचरण के निरतिचार पालन करने का क्या फल है ?
(ख) तत्त्व पदार्थ द्रव्य अस्तिकाय का क्या स्वरूप है ? (ग) केवलज्ञान की क्या विशेषता है ?
(घ) मोक्ष का सुख और शुद्ध सम्यक्त्व क्या है ?
(ङ) संसार किसे कहते हैं ? (अथवा) तीसरी गाथा में आचार्य महाराज ने कौन से पाँच सूत्र दिये हैं ?

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) मालारोहण का क्या अर्थ है ? (२) अनंत चतुष्टमय आत्मा की सत्ता है तो प्रगट क्यों नहीं है ?
(३) उवंकार में पंच परमेष्ठी किस प्रकार गर्भित है ? (४) शुद्ध सम्यक्त्व की माला गूँथने का क्या पुरुषार्थ है ?
(५) ''पंडिमाय ग्यारा तत्त्वानिपेषं'' का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?
(६) शुद्धात्म तत्त्व इंद्रिय गम्य क्यों नहीं है ? शुद्धात्म तत्त्व की अनुभूति का लक्षण क्या है ?

प्रश्न ७ – दीघ्र उत्तरीय प्रश्न – (कोई एक) (अंक १ x १० = १०)

(क) टिप्पणी लिखिए – १. तारण स्वामी के ग्रंथों में धर्म का स्वरूप २. सम्यग्दर्शन के २५ दोष।
(ख) टिप्पणी लिखिए – १. मूलगुण २. प्रतिमा एवं व्रत
(ग) पंचहत्तर गुणों के भेद एवं उसका देव आराधना से क्या संबंध है ? स्पष्ट कीजिए।

गाथा – १७

संसार से मुक्त और शिव सुख से युक्त होने का पुरुषार्थ

जे सुद्ध दिस्टी संमिक्त सुद्धं, माला गुनं कंठ ह्दिय विरुलितं ।
तत्वार्थ सार्धं च करोति नित्वं, संसार मुक्तं सिव सौष्य वीर्जं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि **(संमिक्त सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्त्वी है **(माला गुनं)** ज्ञान गुण माला को **(कंठ ह्दिय)** हृदय कंठ में **(विरुलितं)** झूलती हुई देखता है **(च)** और **(नित्वं)** सदैव, नित्य ही **(तत्वार्थ)** शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** साधना **(करोति)** करता है [यही] **(संसार मुक्तं)** संसार से मुक्त होने और **(सिव सौष्य)** मोक्ष सुख को प्राप्त करने का **(वीर्जं)** पुरुषार्थ है।

अर्थ – जो शुद्ध दृष्टि शुद्ध सम्यक्त्वी हैं, जिनका सम्यक्त्व शुद्ध हो गया है अर्थात् मैं आत्मा हूँ शरीर नहीं हूँ, यह दृढ़ श्रद्धान हो गया है, वे आत्मज्ञानी ज्ञान गुणमाला को हृदय कंठ में विरुलित होती हुई अर्थात् झुलती हुई देखते हैं और नित्य ही शुद्धात्म तत्त्व की साधना करते हैं। यही संसार से मुक्त होने का और मोक्ष के सुख को प्राप्त करने का सच्चा पुरुषार्थ है।

प्रश्न १– ज्ञानी संसार से मुक्त होकर मुक्ति के सुख को कैसे प्राप्त करते हैं ?

उत्तर – अपने शुद्धात्म स्वरूप के अनुभव से जिनकी दृष्टि शुद्ध हुई है, जो सम्यक्त्व से शुद्ध हैं वे ज्ञानी अपने हृदय कंठ में ज्ञान गुणों की माला झूलती हुई देखते हैं अर्थात् उन्हें अपने शुद्धात्मा का स्मरण ध्यान रहता है और समस्त पर द्रव्यों से अपनी दृष्टि हटाकर अपने इष्ट शुद्धात्म तत्त्व की साधना में रत रहते हैं, इसी सत्पुरुषार्थ से ज्ञानी संसार से मुक्त होकर मुक्ति के परम उत्कृष्ट सुख को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न २– शुद्ध दृष्टि सत्पुरुषार्थ के अंतर्गत क्या करते हैं ?

उत्तर – शुद्ध दृष्टि ज्ञानी औदयिक आदि पर भावों के समूह का परित्याग करके शरीर, इन्द्रिय और वाणी के अगोचर अपने कारण परमात्म स्वरूप ममल स्वभाव को ध्याते हैं और शुद्ध बोध मय शिव स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

गाथा – १८

समवशरण चर्चा (जिनोपदेश में ज्ञान गुण माला की महिमा)

न्यानं गुनं माल सुनिर्मलेत्वं, संषेप गुथितं तुव गुन अनंतं ।
रत्नत्रयं लंकृत स स्वरूपं, तत्वार्थ सार्धं कथितं जिनेन्द्रं ॥

अन्वयार्थ – (कथितं जिनेन्द्रं) जिनेन्द्र भगवान ने कहा है **(न्यानं गुनं)** ज्ञान गुणों की **(माल)** माला [शुद्धात्म स्वरूप] **(सुनिर्मलेत्वं)** अत्यंत निर्मल है, [इसमें] **(तुव गुन अनंतं)** तुम्हारे अनन्त गुण **(रत्नत्रयं)** रत्नत्रय से **(लंकृत)** अलंकृत **(स स्वरूपं)** निज स्वरूप में **(संषेप गुथितं)** संक्षेप में गुंथे हुए हैं [इन्हें प्रगट करने के लिये] **(तत्वार्थ)** प्रयोजन भूत शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** साधना करो।

अर्थ – तीर्थंकर परमात्मा भगवान महावीर स्वामी ने कहा – ज्ञान गुणों की माला निज शुद्धात्म स्वरूप अत्यन्त निर्मल है, इसमें तुम्हारे अनन्त गुण रत्नत्रय से अलंकृत निज स्वरूप में गुंथे हुए हैं, इन्हें प्रगट करने के लिये प्रयोजनीय शुद्धात्म तत्त्व की साधना आराधना करो।

प्रश्न १ – इस गाथा में समवशरण चर्चा से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – समवशरण में श्री तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने अपनी दिव्य ध्वनि में ज्ञान गुणमाला अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप की महिमा का कथन किया और राजा श्रेणिक ने श्री वीरप्रभु से अनेक प्रश्न पूछे, उनका समाधान प्राप्त किया इस गाथा में समवशरण की चर्चा का यही तात्पर्य है। [यह प्रश्न और समाधान आगे की गाथाओं में दिये गये हैं]

प्रश्न २ – अनन्त गुण प्रगट कैसे होते हैं ?

उत्तर – शुद्धात्म तत्त्व की साधना करने वाला साधक जीव स्वरूप के लक्ष्य पूर्वक प्रारंभ से अन्त तक निश्चय की मुख्यता रखकर व्यवहार को गौण करते जाते हैं इसलिये साधक दशा में निश्चय की मुख्यता के बल से साधक के अंतर में शुद्धता की वृद्धि होती जाती है अर्थात् गुण प्रगट होते जाते हैं।

प्रश्न ३ – आत्मा में अनंत गुण हैं ऐसा बतलाने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर – आत्मा में अनंत गुण है ऐसा बतलाने का प्रयोजन अनंत गुणों के अभेद पिंड निज आत्मा की पहचान कराना है। जिसके आश्रय से सर्वगुणों में निर्मल पर्याय प्रगट होती है और क्रम से आत्मा मुक्त दशा को प्राप्त हो जाता है।

गाथा – १९

राजा श्रेणिक का प्रश्न (गुणमाला को प्राप्त करेगा कौन)

श्रेनीय पिच्छन्ति श्री वीरनाथं, मालाश्रियं मागंति नेयचक्रं ।
धरनेन्द्र इन्द्रं गन्धर्व जष्यं, नरनाह चक्रं विद्या धरेत्वं ।।

अन्वयार्थ – (श्रेनीय) राजा श्रेणिक **(श्री वीरनाथं)** श्री वीरनाथ प्रभु से **(मालाश्रियं)** रत्नत्रयमयी श्रेष्ठ माला के बारे में **(पिच्छन्ति)** पूछते हैं **(नेयचक्रं)** स्नेह भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा देकर [ज्ञान गुणमाला] **(मागंति)** मांगते हैं [श्रेणिक जानना चाहते हैं कि यह ज्ञान गुणमाला] **(धरनेन्द्र)** धरणेन्द्र **(इन्द्रं)** इन्द्र **(गन्धर्व)** गन्धर्व **(जष्यं)** यक्ष **(नरनाह)** राजा, महाराजा **(चक्रं)** चक्रवर्ती **(विद्या धरेत्वं)** विद्याओं के धारी विद्याधर आदि [किसको मिलेगी] ?

अर्थ – राजा श्रेणिक भगवान महावीर स्वामी से रत्नत्रयमयी श्रेष्ठ माला शुद्धात्म स्वरूप के संबंध में पूछते हैं और अत्यंत भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा देकर ज्ञान गुणमाला को मांगते हैं, राजा श्रेणिक श्री वीरनाथ प्रभु से निवेदन करते हैं कि यह ज्ञान गुणमाला धरणेन्द्र, इन्द्र, गंधर्व, यक्ष, राजा, महाराजा, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि किसको प्राप्त होगी ?

प्रश्न १ – श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि में ज्ञान गुण माला की महिमा सुनकर राजा श्रेणिक अत्यंत आनन्दित हुए। उन्होंने भगवान से पूछा–प्रभो ! यह रत्नत्रय मयी ज्ञान गुण माला क्या है ?

उत्तर – भगवान ने दिव्य ध्वनि में कहा कि आत्मा अखंड आनन्द स्वभाव वाला है, जिसमें अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण हैं। यह रत्नत्रय मयी ज्ञान गुण माला अपना आत्म स्वरूप है। ऐसे चैतन्य मूर्ति निज आत्मा की श्रद्धा करो, उसमें लीन रहो। रत्नत्रय मयी मालिका को धारण करो, इसी से केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न २ – ज्ञान गुणमाला की महिमा सुनकर राजा श्रेणिक ने क्या किया ?

उत्तर – राजा श्रेणिक ज्ञान गुण माला की महिमा सुनकर अत्यंत प्रसन्न आनन्दित हुए और उनकी भावना हुई कि यह रत्नत्रय मालिका मैं ले लूँ। चूंकि क्षायिक सम्यक्त्व उनके हृदय में आनन्द की उर्मियाँ जाग्रत कर रहा था, उनका रोम-रोम आत्मानुभूति से आप्लावित था। सम्यक् श्रद्धा, भक्ति से ओतप्रोत वे सम्यक् चारित्र धारण करने की प्रबल भावना से प्रश्न पूछ रहे थे। उन्होंने बड़ी विनय भक्ति पूर्वक भगवान की तीन प्रदक्षिणायें देकर कहा-कि प्रभो ! यह रत्नत्रय मालिका मुझे दे दो।

प्रश्न ३ – भगवान महावीर स्वामी ने क्या कहा ?

उत्तर – भगवान महावीर स्वामी ने कहा कि हे राजा श्रेणिक ! यह रत्नत्रय मयी ज्ञान गुण माला माँगने से नहीं मिलती। यह कोई सामान्य वस्तु नहीं है।

प्रश्न ४ – राजा श्रेणिक ने क्या विचार किया और भगवान से क्या पूछा ?

उत्तर – राजा श्रेणिक ने विचार किया कि यह ज्ञान गुण माला तो कोई विशेष वस्तु है। यह किसे मिलेगी ? प्रश्नों के अधिष्ठाता राजा श्रेणिक पुनः प्रश्न करते हैं कि यह ज्ञान गुणों की माला कौन प्राप्त कर सकता है ? क्या इन्द्र ? क्या धरणेन्द्र ? क्या गंधर्व ? क्या यक्ष ? क्या चक्रवर्ती ? क्या विद्याधर ? कामदेव या और कोई अन्य। चूंकि सांसारिक दृष्टि से श्रेष्ठ पद ये ही हैं। इस संदर्भ में अगली गाथा अवतरित होती है।

गाथा – २०

पुन: प्रश्न-गुणमाला प्राप्ति की प्रबल जिज्ञासा

किं दिप्त रत्नं बहुविहि अनंतं, किं धन अनंतं बहुभेय जुक्तं।
किं तिक्त राजं बनवास लेत्वं, किं तव तवेत्वं बहुविहि अनंतं ॥

अन्वयार्थ – (किं) क्या [जिनके पास] **(बहुविहि)** बहुत प्रकार के **(अनंतं)** अनन्त **(दिप्त रत्नं)** प्रकाशित रत्न हैं **(किं)** क्या [जो] **(बहुभेय)** बहुत प्रकार के **(अनंतं)** अनन्त **(धन)** धन से **(जुक्तं)** युक्त हैं, सम्पन्न हैं **(किं)** क्या [जिन्होंने] **(राजं)** राज्य को **(तिक्त)** छोड़कर, त्यागकर **(बनवास लेत्वं)** वनवास ले लिया है **(किं)** क्या [जो] **(बहुविहि)** बहुत प्रकार से **(अनंतं)** अनेक प्रकार का **(तव तवेत्वं)** तप तपते हैं [क्या उन्हें यह ज्ञान गुणमाला मिलेगी] ?

अर्थ – जिनके पास बहुत प्रकार के अनन्त प्रकाशित रत्न हैं ? क्या वे इसे प्राप्त करेंगे ? जो बहुत प्रकार के धन से संपन्न हैं या जिन्होंने राज्य को त्यागकर वनवास ले लिया है अथवा जो अनेक प्रकार से बहुत तपस्या करते हैं ? क्या उन्हें यह ज्ञान गुणमाला प्राप्त होगी ?

प्रश्न १ – इस गाथा के प्रश्नों को स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – राजा श्रेणिक पूछते हैं कि यह रत्नत्रयमयी ज्ञान गुण माला क्या उनको मिलेगी- जिनके पास बहुत प्रकार के हीरे जवाहरात आदि प्रकाशित अनेक रत्न हैं ? क्या उनको मिलेगी, जो कुबेरों के समान बहुत प्रकार की धन राशि के स्वामी हैं ? क्या जिनने राज्य का त्याग करके वनवास ले लिया, बाह्य वेष बना लिया है उनको मिलेगी ? जो बहुत प्रकार से तपस्या करते हैं, क्या उनको यह रत्नत्रय मालिका मिलेगी ?

प्रश्न २ – यह सब पूछने में राजा श्रेणिक का अभिप्राय क्या था ?

उत्तर – राजा श्रेणिक बहुत जिज्ञासु जीव थे, उनका अभिप्राय था कि यह ज्ञान गुणमाला किसको प्राप्त होगी क्योंकि वे स्वयं उसे प्राप्त करना चाहते थे।

प्रश्न ३ – भगवान महावीर स्वामी ने क्या कहा ?

उत्तर – भगवान महावीर स्वामी ने कहा कि हे राजा श्रेणिक ! निज शुद्धात्म स्वरूप रत्नत्रय मालिका बाहर की किसी विभूति से या किसी प्रकार के क्रिया कांड से नहीं मिलती क्योंकि यह रत्नत्रयमयी आत्मा का स्वरूप है, यह ज्ञान गुण माला मात्र स्वानुभूति पूर्वक ही ज्ञान में जानने में आती है। जिन जीवों को आत्म स्वरूप का श्रद्धान ज्ञान होता है वे अपने ज्ञान स्वभाव का दर्शन और अनुभव करते हैं।

गाथा – २१

भगवान महावीर स्वामी ने किया समाधान

श्री वीरनाथं उक्तंति सुद्धं, सुनु श्रेनिराया माला गुनार्थं ।
किं रत्न किं अर्थ किं राजनार्थं, किं तव तवेत्वं नवि माल दिस्टं ॥

अन्वयार्थ – (श्री वीरनाथं) श्री वीरनाथ प्रभु **(सुद्धं)** शुद्धता पूर्वक [ओंकार ध्वनि में] **(उक्तंति)** कहते हैं **(श्रेनिराया)** हे राजा श्रेणिक ! **(माला गुनार्थं)** प्रयोजनीय माला के गुणों को **(सुनु)** सुनो **(किं रत्न)** क्या रत्न **(किं अर्थ)** क्या धन **(किं राजनार्थं)** क्या राज्य **(किं तव तवेत्वं)** क्या तप तपने वाले [यह कोई भी] **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(नवि)** नहीं **(दिस्टं)** देख सकते।

अर्थ – श्री वीरनाथ प्रभु शुद्धता पूर्वक दिव्य ध्वनि में कहते हैं – हे राजा श्रेणिक ! प्रयोजनीय माला के गुणों को अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप की महिमा को सुनो, उसे प्राप्त करने में क्या रत्न, क्या धन, क्या राज्य, क्या तपस्या करने वाले, यह कोई भी ज्ञान गुणमाला को नहीं देख सकते, स्वानुभूति को उपलब्ध नहीं कर सकते।

प्रश्न १ – भगवान महावीर स्वामी ने राजा श्रेणिक से क्या कहा ?

उत्तर – केवलज्ञानी श्री महावीर भगवान कहते हैं कि हे राजा श्रेणिक ! शुद्ध चिदानन्द मयी यह ज्ञान गुणमाला अपना ही शुद्धात्म स्वरूप है। निज स्वरूप की अनुभूति करने में रत्नों का, धन का, राज वैभव का, कोरे तत्त्व ज्ञान का या सत्श्रद्धान रहित कोरे तप तपने का क्या प्रयोजन है ? जिसके पास रत्न, धन आदि वस्तुएं हों और दृष्टि अशुद्ध हो, मिथ्यादृष्टि हो उसे यह रत्नत्रय मालिका दिखाई नहीं देगी अर्थात् निज शुद्धात्म स्वरूप अनुभव में नहीं आयेगा।

प्रश्न २ – जीव के संसार में परिभ्रमण का क्या कारण है ?

उत्तर – अनादि से जीव ने अपने स्वरूप को नहीं जाना है। यह शरीर ही मैं हूँ – यह शरीरादि मेरे हैं, मैं इन सबका कर्ता हूँ, ऐसा अनादि से मान रहा है, यह अगृहीत मिथ्यात्व संसार परिभ्रमण का कारण है।

प्रश्न ३ – जीव के कल्याण का मार्ग कैसे बनता है ?

उत्तर – मनुष्य भव में सब शुभ योग प्राप्त हुए हैं, बुद्धि मिली है, स्वस्थ शरीर और पुण्य का उदय है। इनका सदुपयोग अपने शुद्धात्म स्वरूप को जानने, भेदज्ञान करने और वस्तु स्वरूप का विचार करने में करें, इससे ही जीव के कल्याण का मार्ग बनता है।

प्रश्न ४ – रत्नत्रय मालिका को प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्य स्वरूप के सम्मुख होकर निज स्वभाव की आराधना करना ही रत्नत्रय मालिका को प्राप्त करने का उपाय है।

प्रश्न ५ – सत्य धर्म को जीव क्यों भूले हैं और उसका स्वरूप क्या है ?

उत्तर – अनादि काल से जीव, शुभाशुभ भाव में रुचि होने से सत्य धर्म निज शुद्धात्म स्वरूप को भूले हैं। आत्मा स्वयं अनन्त गुण निधान अनन्त चतुष्टय का धारी आनन्द स्वरूप है, इसको जाने बिना जीव बाह्य में धर्म करना चाहते हैं। शुभाचरण पुण्य को धर्म मानते हैं, पुण्य की विभूति को हितकारी लाभदायक मानते हैं। दया, दान, व्रत, नियम, संयम आदि शुभाचरण पुण्य बन्ध का कारण है। एक मात्र अपना चैतन्य स्वरूप शुद्ध स्वभाव ही धर्म है।

गाथा – २२

आत्म दर्शन में धन आदि कार्यकारी नहीं

किं रत्न कार्जं बहुविहि अनंतं, किं अर्थ अर्थं नहि कोपि कार्जं।
किं राजचक्रं किं काम रूपं, किं तव तवेत्वं बिन सुद्ध दिस्टी ॥

अन्वयार्थ – (बहुविहि) [आत्मदर्शन में] बहुत प्रकार के **(अनंतं)** अनन्त **(रत्न)** रत्नों का **(किं)** क्या **(कार्जं)** कार्य है **(अर्थं)** धन का [भी] **(किं अर्थ)** क्या प्रयोजन है **(कोपि)** कोई भी **(कार्जं)** कार्यकारी **(नहि)** नहीं है **(किं राज)** क्या राजा **(चक्रं)** [क्या] चक्रवर्ती **(किं काम रूपं)** क्या कामदेव **(किं तव तवेत्वं)** क्या तप तपने वाले **(बिन सुद्ध दिस्टी)** बिना शुद्ध दृष्टि के [कोई भी शुद्धात्म स्वरूप को नहीं देख सकता]।

अर्थ – ज्ञान गुणमाला की प्राप्ति अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप का दर्शन करने के लिये बहुत प्रकार के अनन्त रत्नों का क्या काम है ? धन का भी इसमें क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कोई भी बाह्य वस्तु आत्म दर्शन में कार्यकारी नहीं है। क्या राजा, क्या चक्रवर्ती, क्या कामदेव, क्या तपस्या करने वाले, बिना शुद्ध दृष्टि के कोई भी गुणमाला शुद्धात्म स्वरूप को नहीं देख सकते, आत्मानुभूति नहीं कर सकते।

प्रश्न १ – इस गाथा का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – निज आत्मानुभूति करने में बहुत प्रकार के रत्नों का क्या काम है ? कुबेरों के समान विपुल धन की भी क्या आवश्यकता है ? अर्थात् शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति करने में (परमात्मा का दर्शन करने में) इन बाह्य पदार्थों की कोई आवश्यकता नहीं है। राजा,महाराजा, चक्रवर्ती, कामदेव, विद्याधर या तप के तपने वालों का भी इसमें क्या काम है ? बिना शुद्ध दृष्टि के कोई भी पद या क्रिया आदि से अपने स्वरूप की अनुभूति नहीं हो सकती और बिना सम्यग्दर्शन के मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न २ – पुण्य को धर्म मानने वाले जीव की अंतरंग इच्छा क्या होती है ?

उत्तर – सर्वज्ञ भगवान ने कहा है कि जो जीव पुण्य को धर्म मानता है वह मात्र भोग की ही इच्छा रखता है क्योंकि पुण्य के फल से स्वर्गादि के भोगों की प्राप्ति होती है इसलिये जिसे पुण्य की भावना है तथा वैभव आदि में सुख की कल्पना है, उसके अंतर में भोग की अर्थात् संसार की ही

भावना है, मोक्ष की भावना नहीं है। राग को, पुण्य को धर्म मानने वाला जीव मिथ्यादृष्टि संसारी है।

प्रश्न ३ – रत्नत्रय मालिका के दर्शन हेतु भगवान का क्या उपदेश है ?

उत्तर – आत्मा अचिन्त्य सामर्थ्यवान है। इसमें अनन्त गुण हैं। यह रत्नत्रय मयी है अर्थात् परम सुख, परम शान्ति, परमानन्द का भंडार है। उसकी रुचि हुए बिना उपयोग पर से हटकर स्व में नहीं आ सकता। जिन जीवों को पाप भावों की रुचि है, उनका तो कहना ही क्या है ? परन्तु पुण्य की रुचि वाले भी बाह्य त्याग करें, तप करें, द्रव्यलिंग धारण करें परन्तु जब तक शुभ की रुचि है, तब तक उपयोग पर से हट कर स्वसन्मुख नहीं होता और यह रत्नत्रय मयी ज्ञान गुण माला भी प्राप्त नहीं हो सकती और न मोक्ष हो सकता। अभिप्राय यह है कि बिना शुद्ध दृष्टि (सम्यग्दर्शन) के रत्नत्रय की मालिका को कोई नहीं देख सकता। रत्नत्रय मालिका के दर्शन हेतु भगवान का ऐसा उपदेश है।

गाथा – २३

आत्म दर्शन का बाह्य वेष से संबंध नहीं

जे इन्द्र धरनेन्द्र गंधर्व जष्यं, नाना प्रकारं बहुबिहि अनंतं।
ते नंतं प्रकारं बहुभेय कृत्वं, माला न दिस्टं कथितं जिनेन्द्रं ॥

अन्वयार्थ – (जिनेन्द्रं) भगवान महावीर स्वामी ने **(कथितं)** कहा **(जे)** जो **(इन्द्र)** इन्द्र **(धरनेन्द्र)** धरणेन्द्र **(गंधर्व)** गंधर्व **(जष्यं)** यक्ष **(नाना प्रकारं)** नाना प्रकार के **(बहुबिहि)** बहुत भेद वाले **(अनंतं)** अनेक देव हैं **(ते)** वे **(नंतं प्रकारं)** अनेक प्रकार के देव **(बहुभेय)** बहुत प्रकार के वेष **(कृत्वं)** करें, बनायें, [तो भी] **(माला)** ज्ञान गुणमाला, शुद्धात्म स्वरूप को **(न दिस्टं)** नहीं देख सकते, आत्म दर्शन, आत्म अनुभव नहीं कर सकते।

अर्थ – भगवान महावीर स्वामी ने राजा श्रेणिक से कहा – जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गंधर्व, यक्ष आदि अनेक प्रकार के बहुत भेद वाले अनेक देव हैं, वे अनेक प्रकार के देव बहुत प्रकार के वेष बनायें, अनेक प्रकार की विक्रिया करें तो भी ज्ञान गुणमाला का दर्शन नहीं कर सकते, वेष बनाने मात्र से शुद्धात्म स्वरूप की अनुभूति नहीं हो सकती।

प्रश्न १ – इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – भगवान महावीर स्वामी ने कहा – हे राजा श्रेणिक ! यह जो इन्द्र, धरणेन्द्र, गन्धर्व, यक्ष आदि अनेकों तरह के बहुत से देव उपस्थित हैं, इनमें से निज स्वभाव का लक्ष्य किसको है ? निजात्म दर्शन का किसी वेष, पर्याय और परिस्थिति से सम्बन्ध नहीं है। शुद्ध दृष्टि के बिना ज्ञान गुण माला की प्राप्ति असंभव है और जो शुद्ध दृष्टि हैं या होंगे वह किसी भी पर्याय में और किसी भी परिस्थिति में हो सकते हैं क्योंकि धर्म में कोई जाति-पांति, कुल पर्याय का भेद भाव नहीं होता। मनुष्य या देव क्या ? नारकी और तिर्यंच भी निज शुद्धात्मानुभूति द्वारा धर्म को उपलब्ध करके परमात्मा बन सकते हैं, आत्म दर्शन रूप धर्म की उपलब्धि करने में शुद्ध दृष्टि ही प्रमुख उपाय है। इसका बाह्य वेष और क्रिया से कोई संबंध नहीं है।

प्रश्न २ – संसार में किस जीव को रत्नत्रय मालिका प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर – संसार के समस्त जीवों में से किसी भी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक भव्य जीव को निज शुद्धात्मानुभूति (सम्यग्दर्शन) द्वारा रत्नत्रय मालिका प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न ३ – मुक्ति श्री का वरण कौन करता है ?

उत्तर – पाँच इन्द्रिय और मन की ओर प्रवर्तित बुद्धि को जो पुरुषार्थी भव्य जीव पर लक्ष्य में जाने से रोक कर आनन्द मयी आत्मा की ओर उन्मुख होता है, वह मोक्ष महल की सीढ़ियों पर चढ़ता है, उसे ही यह ज्ञान गुणमाला शुद्धात्मानुभूति रूप प्राप्त होती है और वही मुक्ति श्री का वरण करता है।

गाथा – २४

सम्यक्दृष्टि निर्विकारी साधक करते हैं स्वरूप दर्शन

जे सुद्ध दिस्टी संमिक्त जुक्तं, जिन उक्त सत्यं सु तत्वार्थ सार्धं।
आसा भय लोभ अस्नेह तिक्तं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि **(संमिक्त)** सम्यक्त्व से **(जुक्तं)** युक्त हैं **(जिन उक्त)** जिनेन्द्र भगवान के वचनानुसार **(सत्यं)** सत्य स्वरूप **(सु तत्वार्थ)** प्रयोजनीय निज शुद्धात्म तत्त्व की **(सार्धं)** साधना करते हैं **(आसा)** आशा **(भय)** भय **(लोभ)** लोभ **(अस्नेह)** स्नेह का **(तिक्तं)** त्याग करते हैं **(ते)** वे **(माल)** ज्ञान गुणमाला को **(ह्रिदै कंठ)** अपने हृदय कंठ में **(रुलितं)** झुलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं।

अर्थ – जो शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व से युक्त हैं, जिनेन्द्र भगवान के वचनानुसार प्रयोजनीय सत् स्वरूप शुद्धात्म तत्त्व की साधना करते हैं और आशा, भय, लोभ, स्नेह का त्याग करते हैं। वे ज्ञानी ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं।

प्रश्न १ – इस गाथा का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर – इस गाथा का अभिप्राय यह है कि जिन्हें निज स्वभाव का अनुभव हो गया है। जो शुद्ध दृष्टि निश्चय सम्यक्त्व से युक्त हैं और जिनवाणी कथित तत्त्व की यथार्थ प्रतीति सहित अपने इष्ट शुद्धात्म स्वरूप की साधना में रत रहते हैं तथा आनन्द मय रहने में बाधक कारण आशा, भय, लोभ, स्नेह, आदि का त्याग करते हैं। वे ज्ञानी अपने हृदय कंठ में ज्ञान गुणमाला को झुलती हुई देखते हैं अर्थात् निज शुद्धात्म तत्त्व का स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं और आनन्द-परमानन्द में रहते हैं।

प्रश्न २ – राजा श्रेणिक भगवान महावीर से प्रश्न करते हैं कि यह रत्नत्रय गुणमाला हृदयकंठ में कब झूलती है ? यह कैसे पूर्णता को प्राप्त करती है ?

उत्तर – भगवान की दिव्य ध्वनि में समाधान होता है कि हे राजा श्रेणिक ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता रूप यह गुणमाला क्रम पूर्वक जीव के पुरुषार्थ और कर्मों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से प्रगट होती है। जब जीव अपने पुरुषार्थ से आत्म बोध कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है, तब ही सम्यग्ज्ञान का उदय होता है। जिस तरह दीपक प्रज्ज्वलित होते ही प्रकाश हो जाता है, उसी तरह सम्यग्दर्शन रूपी दीपक प्रज्ज्वलित होते ही सम्यग्ज्ञान

रूप प्रकाश हो जाता है किन्तु सम्यक्चारित्र क्रम रूप उत्तरोत्तर होता है। प्रथम अनन्तानुबंधी कषाय चौकड़ी के क्षय पूर्वक चतुर्थ गुणस्थान होता है फिर अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क के क्षय पूर्वक पंचम गुणस्थान होता है। तत्पश्चात प्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षय पूर्वक छटवाँ, सातवाँ गुणस्थान अर्थात् मुनि दशा होती है। संज्वलन कषाय के और चार घातिया कर्मों के क्षय पूर्वक अरिहंत दशा होती है। वे अरिहंत चार अघातिया कर्मों का क्षय कर सिद्ध बनते हैं। इस तरह से यह रत्नत्रय गुणमाल हृदय कंठ में झूलते हुए पूर्णता को प्राप्त होती है।

प्रश्न ३ – 'जे सुद्ध दिस्टी संमिक्त जुक्तं' से क्या अभिप्राय है इसे दो बार क्यों कहा है ?

उत्तर – बुद्धि पूर्वक स्वरूप का निर्णय अंतर से स्वीकार करने पर जो मान्यता बदलती है,सम्यक् होती है इसे सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व के बिना स्वानुभव नहीं होता और स्वानुभव पूर्वक ही सम्यग्दर्शन होता है। स्वानुभव एक दशा (पर्याय) है जो जीव को अनादि काल से नहीं हुई, परन्तु दर्शन मोहनीय का उपशम होते ही प्रगट होती है। इस स्वानुभव की अद्‌भुत महिमा है। स्वानुभव में ही मोक्षमार्ग है। स्वानुभव में जो आनन्द है, वह आनन्द जगत में कहीं भी नहीं है।

प्रश्न ४ – आशा, भय, लोभ स्नेह क्या हैं, इनका आत्मा से क्या सम्बंध है ?

उत्तर – **आशा –** चाह को आशा कहते हैं। यह काम अभी नहीं हुआ, लेकिन अब हो जायेगा, ऐसा नहीं हुआ, तो ऐसा हो जायेगा, यह माया का चक्र ही आशा है और संसारी जीव इसी आशा से जीते हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार, धन, वैभव, परिग्रह इसी आशा की पूर्ति के लिये हैं। यदि आशा न हो, तो फिर इनकी क्या जरूरत है ? यह आशा मोह की तीव्रता में होती है, जो अज्ञान भाव है। अव्रत दशा में आशा छूटती नहीं है।

भय – शंकित होने, डरने को भय कहते हैं। सम्यग्दृष्टि के संसारी सात भय छूट जाते हैं परन्तु नो कषाय रूप भय तथा संज्ञा रूप भय सत्ता में रहते हैं इसलिये कर्मोदय जन्य स्थिति में भयभीतपना होता है, यह भी अज्ञान भाव है। मोह के कारण शंका-कुशंका और भय होता है, यह भी अव्रत दशा में छूटता नहीं है।

लोभ– परिग्रह की मूर्च्छा, धन वैभव की चाह और संग्रह करने को लोभ कहते हैं। लोभ पाप का बाप है, जब तक जीव पापादि के संयोग में अव्रत दशा में रहता है, तब तक यह होता है, इसी से नाना प्रकार के विकल्प भय और चिन्तायें होती हैं।

स्नेह– लगाव, अपनत्व, प्रियता, प्रेम भाव को स्नेह कहते हैं। स्नेह का बंधन ही संसार है, यह रेशम की गांठ की तरह सूक्ष्म होता है, सहज में नहीं छूटता, यह प्रमाद का अंग भी है, स्त्री आदि के स्नेह वश जीव संसार में रुलता है। यह सब परिणाम चारित्र मोहनीय के कारण अव्रत दशा में होते हैं और इनके सद्भाव में जीव अपने स्वभाव की ओर दृष्टि नहीं कर पाता। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है और यह आत्मा के स्वभाव में नहीं हैं परन्तु जब तक विभाव रूप परिणमन है और अव्रत भाव है, तब तक यह सब होते हैं, इनके होते हुए जीव अपने स्वरूप की साधना नहीं कर सकता। आशा, भय, लोभ, स्नेह का त्याग होने पर परिवार आदि से मोह भाव छूटने पर जब संयम भाव आता है, तब अपने स्वरूप की सुरत रहती है और वह साधक अपने स्वभाव की साधना करता हुआ आनंद में रहता है।

प्रश्न ५ – गाथा २४ से ३१ तक 'हृदय कंठ रुलितं' शब्द का विशेष प्रयोग हुआ है, इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज वीतरागी ज्ञानी आत्म साधना में निरंतर संलग्न रहने वाले महापुरुष थे। उन्होंने अपनी आत्म साधना के अंतर्गत उपयोग को अंतरंग में स्थित कर, पाँच ज्ञान के स्थान निर्धारित कर साधना की थी। जैसे – मति ज्ञान का स्थान कंठ में, श्रुत ज्ञान का स्थान हृदय में निर्धारित किया है। इस निर्देश के अनुसार 'हृदय कंठ में झूलती हुई देखते हैं' इसका अर्थ हुआ कि अपने मति श्रुत ज्ञान में स्वरूप का स्मरण रहता है। सम्यग्दृष्टि, व्रती श्रावक, महाव्रती साधु, श्रेणी पर चढ़ने वाले साधु आदि को अपनी-अपनी पात्रतानुसार ज्ञान में अपना स्वभाव झलकता है। आत्मा की अनंतगुण माला को कंठहार बनाया यही 'हृदय कंठ रुलितं' का अभिप्राय है।

गाथा – २५

संयमी उच्च पात्रता वाले साधकों को दिखती है – ज्ञान गुणमाला

जिनस्य उक्तं जे सुद्ध दिस्टी, संमिक्तधारी बहुगुन समिद्धं ।
ते माल दिस्टं हिदै कंठ रुलितं, मुक्ति प्रवेसं कथितं जिनेन्द्रं ॥

अन्वयार्थ – (जिनस्य उक्तं) भगवान महावीर स्वामी ने कहा है कि **(जे)** जो **(सुद्ध दिस्टी)** शुद्ध दृष्टि **(संमिक्तधारी)** सम्यक्त्व के धारी **(बहुगुन)** बहुत गुणों से **(समिद्धं)** समृद्धवान हैं **(ते)** वे **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(हिदै कंठ)** अपने हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं **(मुक्ति प्रवेसं)** मुक्ति में प्रवेश करते हैं [ऐसा] **(जिनेन्द्रं)** जिनेन्द्र भगवन्तों ने **(कथितं)** कथन किया है, निरूपण किया है।

अर्थ – भगवान महावीर स्वामी ने दिव्य संदेश में कहा – जो शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व के धारी बहुत गुणों से समृद्धवान हैं। वे ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं, उन्हें अपने शुद्धात्म स्वरूप का बोध रहता है, वही ज्ञानी संसार से मुक्त होकर परम आनंदमयी मोक्ष पद को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न १ – बहुत गुणों से समृद्धवान का क्या अर्थ है, संयमी साधक किस प्रकार ज्ञान गुण माला को देखते हैं ?

उत्तर – जो शुद्ध दृष्टि अपने ध्रुव स्वभाव की साधना करते हैं, जो सम्यक्त्व के धारी बहुत गुणों से समृद्धवान हैं। उनके अहिंसा उत्तम क्षमादि गुण प्रगट हो जाते हैं। जिनकी पात्रता बढ़ जाती है अर्थात् पंचम आदि गुणस्थानों में संयम, तप मय जीवन बनाते हुए, निज स्वभाव की साधना आराधना में रत रहते हैं, वे सम्यक्दृष्टि ज्ञानी, ज्ञान मई ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ अर्थात् स्व संवेदन में झूलती हुई देखते हैं। निज स्वभाव में लीन होकर मुक्ति में प्रवेश करते हैं ऐसा केवलज्ञानी जिनेन्द्र परमात्मा की दिव्य ध्वनि में निरूपण किया गया है।

प्रश्न २ – राजा श्रेणिक भगवान महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे प्रभु ! क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थंकर प्रकृति का बंध होने पर भी मैं चारित्र दशा अंगीकार क्यों नहीं कर पा रहा हूं। इसका क्या कारण है ?

उत्तर – भगवान महावीर स्वामी कहते हैं कि हे राजा श्रेणिक ! तुम्हें दर्शन मोहनीय की तीन एवं

अनंतानुबंधी कषाय चतुष्क के अभावपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट हो गया है और तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी हो गया। सम्यक्त्व होने के पहले यशोधर मुनिराज के गले में सर्प डालने से तुम्हें नरक आयु का बंध हो गया है इसलिये संयम धारण करने के भाव नहीं हो रहे हैं। संयम देव आयु का कारण है। सम्यग्दर्शन के पूर्व आयु बंध न हुआ हो, तो उस जीव को नियम से संयम के भाव होते हैं और वह देवगति जाता है।

प्रश्न ३ – राजा श्रेणिक पूछते हैं, कि मुक्ति में प्रवेश किसका होता है ?

उत्तर – जिस जीव ने सम्यग्दर्शन के द्वारा ज्ञानानन्द स्वभावी निज भगवान आत्मा को अपनत्वरूप से स्वीकार किया है। सम्यग्ज्ञान द्वारा जिसे अपनत्व रूप से जाना है। उसी में समर्पण है, लीनता है। वही शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व के धारी बहुत गुणों से समृद्धवान हैं, उन्हीं जीवों का मुक्ति में प्रवेश होता है।

गाथा – २६

वीतरागी साधु रखते हैं निरंतर स्वभाव का स्मरण

संमिक्त सुद्धं मिथ्या विरक्तं, लाजं भयं गारव जेवि तिक्तं।
ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं, मुक्तस्य गामी जिनदेव कथितं ॥

अन्वयार्थ – (जेवि) जो कोई भी भव्य जीव **(संमिक्त सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्त्व के धारी हैं **(मिथ्या विरक्तं)** मिथ्यात्व से विरक्त हैं **(लाजं)** लाज **(भयं)** भय **(गारव)** गारव का **(तिक्तं)** त्याग करते हैं **(ते)** वे **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(ह्रिदै कंठ)** अपने हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं **(मुक्तस्य)** मुक्ति को **(गामी)** प्राप्त करते हैं [ऐसा] **(जिनदेव)** जिनेन्द्र भगवान ने **(कथितं)** कहा है।

अर्थ – जो कोई भव्य जीव शुद्ध सम्यक्त्व के धारी हैं, मिथ्यात्व से विरक्त हैं, लाज, भय, गारव का त्याग करते हैं, वे ज्ञानी ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं, स्व संवेदन का प्रत्यक्ष रसास्वादन करते हुए मुक्ति को प्राप्त करते हैं, श्री जिनेन्द्र भगवान का ऐसा मंगलमय उपदेश है।

प्रश्न १ – इस गाथा का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर – जो आत्मानुभवी जीव सम्यक्त्व से शुद्ध हैं, मिथ्यात्व से विरक्त हैं तथा लोक लाज, भय, गारव (अहंकार) आदि दोषों को त्याग कर वीतरागी साधु पद धारण करते हैं, वे ज्ञानी रत्नत्रय मयी ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झूलती हुई देखते हैं। अपने चैतन्य स्वरूप का अनुभवन करते हैं तथा अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न २ – लाज और गारव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – **लाज –** शर्म, संकोच, मर्यादा अपने सत्स्वरूप को छिपाना लाज है। जब तक संसार की अपेक्षा, दूसरों का महत्व और मान्यता रहती है, तब तक यह लोक लाज रहती है। अन्तर की संकोच वृत्ति, अपने स्वरूप का पूर्ण स्वाभिमान, बहुमान न होने पर यह लाज रहती है इसीलिये यह आवरण वस्त्रादि पहने जाते हैं, मर्यादा का बंधन रहता है, जो इन सबको छोड़ देता है वह निर्बन्ध, निर्ग्रन्थ हो जाता है।

गारव – अहंकार, पद, सत्ता, सामाजिक अधिकार का गौरव रखना गारव है, राग भाव का अंश भी विद्यमान रहना गारव है। यह गारव छूटने पर ही वीतरागता आती है। गारव का अर्थ

है– लोभ, वजन, जिम्मेदारी, बड़प्पन का भान रहना, यह सब छूटने पर ही आकिंचन्यपना, वीतरागता होती है।

प्रश्न ३ – वीतरागी भावलिंगी साधु की महिमा क्या है ?

उत्तर – साधु निज स्वरूप में निरन्तर जाग्रत रहते हैं। द्रव्य स्वभाव का अवलम्बन लेकर विभावों से निवृत्त हो जाते हैं। रत्नत्रय के धारी, मुक्ति के अधिकारी, प्रचुर स्वसंवेदन में रत, वीतरागी भावलिंगी, धर्म शुक्ल ध्यान में रत रहने वाले, सांसारिक प्रपंचों से मुक्त मुनिराज सतत् स्वरूप में रमण करते हैं।

गाथा – २७

प्रमत्त–अप्रमत्त का झूला झूलने वाले देखते हैं – ज्ञान गुणमाला

जे दर्सनं न्यान चारित्र सुद्धं, मिथ्यात रागादि असत्यं च तिक्तं।
ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं, संमिक्त सुद्धं कर्मं विमुक्तं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो ज्ञानी साधक **(दर्सनं)** सम्यग्दर्शन **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान **(चारित्र)** सम्यक् चारित्र से **(सुद्धं)** शुद्ध हैं **(मिथ्यात)** मिथ्यात्व **(च)** और **(असत्यं)** असत्य **(रागादि)** रागादि भावों को **(तिक्तं)** त्याग देते हैं **(ते)** वे [ज्ञानी] **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(ह्रिदै कंठ)** अपने हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं [तथा] **(संमिक्त सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्त्व सहित **(कर्मं विमुक्तं)** कर्मों से मुक्त हो जाते हैं।

अर्थ – जो ज्ञानी साधक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र से शुद्ध हैं, मिथ्यात्व और असत्य रागादि भावों को त्याग देते हैं, वे ज्ञानी ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ से झुलती हुई देखते हैं तथा शुद्धात्म श्रद्धान सहित स्वानुभव में रमण करते हुए कर्मों से मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न १ – इस गाथा में आचार्य श्री मद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने ज्ञानी साधु की साधना का जो रहस्य व्यक्त किया है, उसे स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – जो ज्ञानी साधक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र से शुद्ध हैं अर्थात् वीतरागी साधु पद पर स्थित हैं, जिनका मिथ्यात्व छूट गया है, जो क्षणभंगुर रागादि भावों में युक्त नहीं होते, बल्कि ज्ञायक स्वरूप की साधना में लीन रहते हैं, प्रमत्त–अप्रमत्त गुणस्थानों में झूला झूलते हैं और स्वानुभवामृत का पान करते हैं। वह ज्ञानी अपने हृदय कंठ में रत्नत्रयमयी ज्ञान गुणमाला को झूलती हुई देखते हैं अर्थात् हर क्षण चिदानन्द मयी ध्रुवधाम का अनुभव करते हैं। इसी शुद्ध सम्यक्त्वमयी स्वभाव लीनता के बल से कर्मों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न २ – आत्मा में अनंत गुण हैं फिर ज्ञान गुणमाला ही क्यों कहा है ?

उत्तर – जानने का कार्य एकमात्र ज्ञान करता है, अन्य गुणों में जानने की क्रिया नहीं होती। ज्ञान का स्वभाव स्व – पर प्रकाशक है अर्थात् ज्ञान स्वयं के साथ – साथ अन्य गुणों को भी जानता है आत्मा के अनंत गुणों में ज्ञान गुण प्रधान है इसलिये ज्ञान गुणमाला कहने में अनंत गुण समाहित हो जाते हैं।

प्रश्न ३ – वीतरागी भावलिंगी साधु की अंतरंग स्थिति कैसी होती है ?

उत्तर – वीतरागी ज्ञानी साधु संसार की इच्छा नहीं रखते, वे संसार से विमुख होकर मोक्ष मार्ग पर

चलते हैं, स्वभाव में सुभट हैं, अन्तर में निर्भय हैं, उन्हें किसी कर्मोदय या उपसर्ग का भय नहीं है। मुनिराज को पंचाचार, व्रत नियम इत्यादि शुभ भावों के समय भी भेदज्ञान की धारा, शुद्ध स्वरूप की चारित्र दशा निरन्तर वर्तती रहती है। वे ध्रुव स्वभाव का अवलम्बन लेकर विशेष समाधि सुख प्रगट करने को उत्सुक रहते हैं। स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी जब श्रेणी मांड़कर पूर्ण वीतराग दशा प्रगट होगी। कब ऐसा अवसर आयेगा जब परिपूर्ण केवलज्ञान स्वभाव प्रगट होगा। कब ऐसा परम ध्यान होगा कि आत्मा शाश्वत रूप से शुद्ध स्वभाव में लीन हो जायेगा। ऐसी अंतरंग स्थिति वाले वीतरागी साधु समस्त कर्मों को क्षय करके अपने अनन्त गुणों को प्रगट कर रत्नत्रय मालिका से सुशोभित होकर मुक्ति श्री का वरण करते हैं।

गाथा – २८

ध्यानी योगी देखते हैं चैतन्य चमत्कार

पदस्त पिंडस्त रूपस्त चेतं, रूपा अतीतं जे ध्यान जुक्तं ।
आरति रौद्रं मय मान तिक्तं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो ज्ञानी योगी **(पदस्त)** पदस्थ ध्यान **(पिंडस्त)** पिंडस्थ ध्यान **(रूपस्त)** रूपस्थ ध्यान में **(चेतं)** चित्त लगाते हैं **(रूपा अतीतं)** रूपातीत **(ध्यान)** ध्यान में **(जुक्तं)** लीन होते हैं **(आरति)** आर्त ध्यान **(रौद्रं)** रौद्र ध्यान [और] **(मय मान)** मद मान का **(तिक्तं)** त्याग करते हैं **(ते)** वे योगी ज्ञानी **(माल)** ज्ञान गुणमाला को **(ह्रिदै कंठ)** हृदय कंठ में **(रुलितं)** झुलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं।

अर्थ – स्वानुभव सम्पन्न जो ज्ञानी पुरुष पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ ध्यान में चित्त लगाते हैं, रूपातीत ध्यान में लीन होते हैं, आर्त रौद्र ध्यान और मद मान का त्याग करते हैं। वे आत्मदृष्टा योगी ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं, उन्हें अपने आत्म स्वरूप का निरंतर स्मरण ध्यान रहता है।

प्रश्न १ – सम्यग्दृष्टि ज्ञानी ध्यानी योगी चैतन्य चमत्कार का दर्शन किस प्रकार करते हैं ?

उत्तर – जो आर्त रौद्र ध्यान, मद, मान आदि विकारी भावों से रहित भद्र परिणाम वाले हैं। स्वरूप में आनन्दित रहते हैं। जो ज्ञानी चैतन्य स्वरूप में स्थित होने के लक्ष्य से पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ धर्म ध्यान में चित्त लगाते हैं। आत्म स्वरूप का चिंतवन करते हैं और सिद्ध के समान कर्मों से रहित निज स्वभाव के रूपातीत ध्यान में लीन रहते हैं। ऐसे सम्यग्दृष्टि ज्ञानी–ध्यानी, वीतरागी, योगी, रत्नत्रयमयी ज्ञान गुण माला को अपने हृदयकंठ में झूलती हुई देखते हैं अर्थात् निज शुद्धात्म स्वरूप का स्वानुभूति में प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं।

प्रश्न २ – साधु जीवन क्या है ?

उत्तर – ज्ञान, ध्यान, तप ही साधु जीवन है। साधु मात्र ज्ञान–ध्यान में लीन रहते हैं। जिनके पाप, विषय, कषाय छूट गये हैं और आशा, स्नेह, लोभ, लाज,भय,गारव क्षय हो गये हैं, जो समस्त संयोग सम्बन्ध से मुक्त हो गये हैं। वह अपने स्वरूप में लीनता रूप आत्म ध्यान करते हैं। उनके छटवां – सातवां गुणस्थान होने से धर्म ध्यान होता है। श्रेणी मांड़ने पर शुक्ल ध्यान होता है, जो आठवें गुणस्थान से ऊपर ले जाता है, जिससे केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न ३ – पदस्थ आदि चारों ध्यान का संक्षिप्त स्वरूप क्या है ?

उत्तर – **पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्म चिंतनं ।**
रूपस्थं सर्व चिद्रूपं, रूपातीतं निरंजनम् ॥

पदस्थ – मंत्र, वाक्य और पदों में चित्त को स्थिर करना पदस्थ ध्यान है ।

पिण्डस्थ – निजात्म स्वरूप के चिंतवन में एकाग्र होना पिंडस्थ ध्यान है ।

रूपस्थ – शुद्ध चिद्रूप का चिंतवन करना रूपस्थ ध्यान है ।

रूपातीत – निरंजन त्रिकाली शुद्धात्मा का ध्यान रूपातीत ध्यान है ।

ये चारों ध्यान संस्थान विचय धर्म ध्यान के भेद हैं ।

प्रश्न ४ – आचार्य देव ने यहाँ पदस्थ पिण्डस्थ रूपस्थ ध्यान में चित्त लगाते हैं और रूपातीत ध्यान में युक्त होते हैं ऐसा किस कारण से कहा है ?

उत्तर – प्रथम तीन ध्यान सविकल्प चिंतन रूप हैं, यह तीनों ध्यान धर्म ध्यान में गर्भित हैं । रूपातीत ध्यान शांत शून्य विकल्प रहित ध्यान है और यह चिंतवन से अतीत, मात्र ज्ञाता दृष्टा रूप से ज्ञानानुभव रूप है । यह पूर्ण निर्विकल्प होने से शुक्ल ध्यान के समान है, इस कारण से ऐसा कथन किया है ।

ध्यान : विशेष तथ्य

१. किसी एक विचार या आलम्बन पर चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है । ध्यान की अवस्था में शरीर अत्यन्त भारहीन, मन सूक्ष्म और श्वास-प्रश्वास अलक्षित प्रतीत होते हैं ।

२. प्रथम भूमिका में ध्यान का अभ्यास करने से दैनिक जीवन चर्या में साधक मोह से विमुक्त हो जाता है । ज्यों-ज्यों वह मोह से विमुक्त होता है, त्यों-त्यों उसे ध्यान में सफलता मिलती है । ध्यान जनित आनन्द की अनुभूति होने पर व्यक्ति को भौतिक जगत में होने वाली कुटिलता, घृणा, स्वार्थ, परिग्रह, विषय भोग आदि नीरस एवं निरर्थक प्रतीत होने लगते हैं ।

३. अस्त, व्यस्त, ध्वस्त एवं भग्न मन को शान्त, सुखी एवं स्वस्थ करने के लिये ध्यान सर्वश्रेष्ठ औषधि है । जाग्रत अवस्था में ध्यान अन्तरंग का गहन सुख है, जो अनिर्वचनीय है ।

४. ध्यान कोई तंत्र, मंत्र नहीं है । ध्यान एक साधना है जिसके द्वारा अपने भीतर चैतन्य स्वरुप के आनन्द की प्राप्ति की जाती है । मौन, ध्यान का प्रथम चरण है । मौन का अर्थ है- बाह्य संचरण छोड़कर अन्त: संचरण करना । मौन का अर्थ है- संयम के द्वारा धीरे-धीरे इन्द्रियों तथा मन के व्यापार को शमन करना ।

५. मौन की सफलता होने पर ही ध्यान की सफलता होती है इसलिये जो मौन सो मुनि ऐसा कहते हैं । मौन व्रत धारण करने से राग-द्वेषादि मद मान शीघ्र नष्ट हो जाते हैं । मौन से गुणों की वृद्धि होती है, मौन से ज्ञान प्राप्त होता है, मौन से उत्तम श्रुतज्ञान प्रगट होता है । मौन से केवलज्ञान प्रगट होता है । भगवान महावीर स्वयं साधु अवस्था में १२ वर्ष तक मौन रहे ।

६. ध्यान में गहरे स्तर पर चेतना की निर्ग्रन्थ निर्मल अखण्ड सत्ता का दर्शन होता है । ध्यान द्वारा ही आत्म साक्षात्कार होता है । आत्म तत्त्व, परमात्म तत्त्व में लय हो जाता है । ध्यान की चरम अवस्था में साधक आनंद महोदधि में निमग्न हो जाता है ।

गाथा – २१

निर्मल श्रद्धान में दिखती है ज्ञान गुण माला

अन्या सु वेदं उवसम धरेत्वं, ष्यायिकं सुद्धं जिन उक्त सार्धं ।
मिथ्या त्रिभेदं मल राग षंडं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ॥

अन्वयार्थ – (अन्या) [जो ज्ञानी] आज्ञा सम्यक्त्व **(सु वेदं)** वेदक सम्यक्त्व **(उवसम)** उपशम सम्यक्त्व **(ष्यायिकं)** क्षायिक सम्यक्त्व **(सुद्धं)** शुद्ध सम्यक्त्व के **(धरेत्वं)**धारी हैं **(जिन उक्त)** जिनेन्द्र भगवान के वचनानुसार **(सार्धं)** स्वरूप साधना करते हैं **(त्रिभेदं)** तीन प्रकार के **(मिथ्या)** मिथ्यात्व और **(मल राग)** रागादि दोषों को **(षंडं)** खण्ड–खण्ड करते हैं **(ते)** वे निर्मल श्रद्धानी **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(ह्रिदै कंठ)** हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं।

अर्थ – जो मोक्षमार्गी साधक आज्ञा, वेदक, उपशम, क्षायिक अथवा शुद्ध सम्यक्त्व के धारी हैं, जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धान पूर्वक अपने शुद्धात्म स्वरूप की साधना करते हैं। तीन प्रकार के मिथ्यात्व और रागादि दोषों को खण्ड–खण्ड कर देते हैं, वे निर्मल श्रद्धानी आत्मज्ञानी साधक ज्ञान गुणमाला को हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं।

प्रश्न १ – शुद्धात्म स्वरूप के दर्शन के लिये कौन सा सम्यक्त्व होना चाहिये ?

उत्तर – जिन्हें शुद्धात्म स्वरूप की श्रद्धा अनुभूति होती है, ऐसे साधक आज्ञा, वेदक, उपशम, क्षायिक या शुद्ध किसी भी सम्यक्त्व को धारण करते हैं तथा जिन वचनों के श्रद्धान सहित स्वभाव साधना में रत रहते हैं। सम्यक्त्व पूर्वक ही जीव का मोक्षमार्ग प्रशस्त होता है; अत: शुद्धात्म स्वरूप का दर्शन करने के लिये आज्ञा, वेदक, उपशम, क्षायिक और शुद्ध सम्यक्त्व में से कोई भी सम्यक्त्व होना चाहिये।

प्रश्न २ – सम्यक्त्व के यह भेद किस अपेक्षा से हैं ?

उत्तर – साधना की अपेक्षा सम्यक्त्व के यह पाँच भेद हैं – (१) आज्ञा सम्यक्त्व (२) वेदक सम्यक्त्व (३) उपशम सम्यक्त्व (४) क्षायिक सम्यक्त्व (५) शुद्ध सम्यक्त्व। इनमें से कोई सा भी सम्यक्त्व हो। विशेष बात यह है कि जिनेन्द्र परमात्मा के कहे अनुसार जिसे निज शुद्धात्मानुभूति हो, यही निश्चय सम्यग्दर्शन मुक्ति मार्ग में प्रयोजनीय है।

प्रश्न ३ – सम्यक्त्व के पाँच भेदों का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – **(१) आज्ञा सम्यक्त्व –** देव, गुरू, शास्त्र की आज्ञानुसार जीवादि सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान करना आज्ञा सम्यक्त्व है।

(२) वेदक सम्यक्त्व – चार अनन्तानुबंधी कषाय, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व इन छह प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय और इन्हीं के सद्वस्था रूप उपशम तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति के उदय में जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है, इसी को वेदक सम्यक्त्व कहते हैं।

(३) उपशम सम्यक्त्व – तीन मिथ्यात्व – १. मिथ्यात्व २. सम्यक् मिथ्यात्व ३. सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व। चार अनंतानुबंधी कषाय – १. क्रोध २. मान ३. माया ४. लोभ। इन सात प्रकृतियों के उपशम होने पर कीचड़ के नीचे बैठ जाने से निर्मल जल के समान पदार्थों का जो निर्मल श्रद्धान होता है वह उपशम सम्यक्त्व है।

(४) क्षायिक सम्यक्त्व – चार अनंतानुबंधी कषाय और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के सर्वथा क्षय हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं।

(५) शुद्ध सम्यक्त्व – अपने स्वरूप में पूर्ण तल्लीन होकर अपने में परिपूर्ण शुद्ध हो जाना और निरंतर अपने स्वरूप की अनुभूति में रत रहना शुद्ध सम्यक्त्व है।

गाथा – ३०

श्रेणी आरोहण करने वाले योगियों को दिखता है –शुद्धात्म स्वरूप

जे चेतना लष्यनो चेतनित्वं, अचेतं विनासी असत्यं च तिक्तं ।
जिन उक्त सार्धं सु तत्वं प्रकासं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो वीतरागी ज्ञानी **(चेतना लष्यनो)** चैतन्य लक्षण स्वभाव का **(चेतनित्वं)** हमेशा चिंतवन, अनुभव करते हैं **(अचेतं)** अचेतन **(विनासी)** विनाशी **(च)** और **(असत्यं)** असत् भावों का **(तिक्तं)** त्याग कर देते हैं **(जिन उक्त)** जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार **(सार्धं)** साधना करते हुए **(सु तत्वं)** शुद्धात्म तत्त्व का **(प्रकासं)** प्रकाश करते हैं **(ते)** वे वीतरागी योगी **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(ह्रिदै कंठ)** हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं।

अर्थ – जो आत्मज्ञानी साधक चैतन्य लक्षण स्वभाव का हमेशा चिंतन – मनन और अनुभव करते हैं, अचेतन, विनाशीक और असत् भावों का त्याग कर देते हैं, जिनेन्द्र परमात्मा के कहे अनुसार आत्म साधना करते हुए शुद्धात्म तत्त्व का प्रकाश करते हैं वे वीतरागी योगी ज्ञान गुणमाला को हृदय कंठ मे झुलती हुई देखते हैं।

प्रश्न १ – वीतरागी ज्ञानी की दृष्टि कहाँ रहती है ?

उत्तर – श्रेणी आरोहण करने वाले जो ज्ञानी चैतन्य लक्षण मयी निज स्वभाव का चिन्तन करते हैं, शरीरादि संयोग और रागादि विभावों से दृष्टि हटाकर शुद्ध स्वभाव की साधना करते हैं। वह ज्ञानी शुद्धात्म तत्त्व का प्रकाश प्रगट करते हुए रत्नत्रयमयी ज्ञान गुण मालिका को अपने हृदय कंठ में झूलती हुई देखते हैं। ज्ञानी ने चैतन्य का अस्तित्व ग्रहण किया है इसलिये अभेद में ही दृष्टि रहती है।

प्रश्न २ – चैतन्य की शोभा निहारने वाले ज्ञानी कैसे होते हैं ?

उत्तर – साधक जीव को अपने अंतर में अनेक गुणों की निर्मल पर्यायें प्रगट हो जाती हैं। जिस प्रकार नन्दनवन में अनेक वृक्षों के विविध प्रकार के पत्र, पुष्प, फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार साधक के चैतन्य रूपी नन्दनवन में अनेक गुणों की विविध पर्यायें खिल उठती हैं। ज्ञानी, चैतन्य की शोभा निहारने के लिये कौतूहल बुद्धि वाले होते हैं। उन परम पुरुषार्थी महाज्ञानियों की दशा अपूर्व होती है।

प्रश्न ३ – वीतरागी ज्ञानी का क्या लक्ष्य रहता है ?

उत्तर – ज्ञानी की दृष्टि संसार से छूटने की है इसलिये वह स्वभाव के श्रद्धान ज्ञान में दृढ़ होकर अचेतन पर पदार्थ, असत्य रागादि विभाव और पुण्य–पाप आदि का आदर नहीं करता। जो सिद्ध परमात्मा पूर्ण शुद्ध मुक्त हुए हैं, मैं उनके कुल का उत्तराधिकारी हूँ, मुझे अतीन्द्रिय सिद्ध परमात्म दशा को प्रगट करना है, ज्ञानी के अंतर में निरंतर ऐसा लक्ष्य रहता है।

गाथा – ३१

प्रबल पुरुषार्थी योगी देखते हैं आत्मा प्रकाशमान

जे सुद्ध बुद्धस्य गुन सस्वरूपं, रागादि दोषं मल पुंज तिक्तं ।
धर्मं प्रकासं मुक्ति प्रवेसं, ते माल दिस्टं ह्रिदै कंठ रुलितं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो **(सुद्ध बुद्धस्य)** शुद्ध बुद्ध **(गुन)** गुणों मयी **(सस्वरूपं)** सत् स्वरूप में [लीन होते हैं] **(रागादि दोषं)** रागादि दोषों के **(मल पुंज)** मल समूह का **(तिक्तं)** त्याग कर देते हैं **(ते)** वे ज्ञानी **(धर्मं)** धर्म का **(प्रकासं)** प्रकाश करते हैं **(मुक्ति)** मुक्ति में **(प्रवेसं)** प्रवेश करते हैं [और] **(माल)** ज्ञान गुण माला को **(ह्रिदै कंठ)** हृदय कंठ में **(रुलितं)** झूलती हुई **(दिस्टं)** देखते हैं ।

अर्थ – सम्पूर्ण पुरुषार्थ के बल से जो मोक्षार्थी साधक वीतरागी ज्ञानी शुद्ध बुद्ध गुणोंमयी सत्स्वरूप में लीन होते हैं, रागादि दोषों के मल समूह का त्याग करते हैं, वे आत्मज्ञ सत्पुरुष आत्म धर्म को प्रकाशित करते हुए मुक्ति में प्रवेश करते हैं और ज्ञान गुणमाला को अपने हृदय कंठ में झुलती हुई देखते हैं अर्थात् अपने शुद्धात्म स्वरूप के निर्विकल्प स्वानुभव में निरंतर तल्लीन रहते हैं।

प्रश्न १ – प्रबल पुरुषार्थी ज्ञानी किस प्रकार मुक्ति की ओर अग्रसर होते हैं ?

उत्तर – जो शुद्ध दृष्टि ज्ञानी प्रबल पुरुषार्थी हैं वे शुद्ध ज्ञान गुणों मयी निज शुद्धात्म तत्त्व के आश्रय से समस्त रागादि दोषों के मल समूह को त्याग देते हैं। वे ज्ञानी कर्मों से रहित शुद्ध चैतन्य स्वभाव को प्रकाशित कर स्वभाव लीनता पूर्वक मुक्ति में प्रवेश करते हैं, सिद्ध पद पाते हैं। अनन्त काल तक ज्ञानादि गुणों मयी अभेद शुद्ध समयसार को स्व संवेदन में प्रत्यक्ष झूलता हुआ देखते हैं, परमानन्द में लीन रहते हैं।

प्रश्न २ – ज्ञानी की क्या विशेषता है ?

उत्तर – ज्ञानी, पर को ग्रहण नहीं करता। स्वयं में परिपूर्ण परमात्म स्वरूप को देखता है। शुद्ध स्वभाव के आश्रय से ज्ञायक रहता हुआ, विज्ञानघन आत्मा का अनुभव करता है।

गाथा – ३२

सम्यक्त्व की महिमा

जे सिद्ध नंतं मुक्ति प्रवेसं, सुद्धं सरूपं गुन माल ग्रहितं ।
जे केवि भव्यात्म संमिक्त सुद्धं, ते जांति मोष्यं कथितं जिनेन्द्रं ॥

अन्वयार्थ – (जे) जो **(नंतं)** अनन्त **(सिद्ध)** सिद्ध परमात्मा **(मुक्ति प्रवेसं)** मुक्ति को प्राप्त हुए हैं [उन्होंने] **(सुद्धं सरूपं)** शुद्ध स्वरूपी **(गुन माल)** ज्ञान गुण माला को **(ग्रहितं)** ग्रहण किया है **(जे)** जो **(केवि)** कोई भी **(भव्यात्म)** भव्यात्मा, भव्य जीव **(संमिक्त)** सम्यक्त्व से **(सुद्धं)** शुद्ध होंगे **(ते)** वे **(मोष्यं)** मुक्ति को, मोक्ष को **(जांति)** जायेंगे, प्राप्त करेंगे **(कथितं जिनेन्द्रं)** जिनेन्द्र भगवन्तों का ऐसा दिव्य संदेश है।

अर्थ – संसार के अनादिकालीन पंच परावर्तन से मुक्त होकर जिन अनन्त भव्यात्माओं ने मुक्ति को प्राप्त किया है, उन्होंने शुद्ध स्वरूपी ज्ञान गुणमाला अर्थात् निज शुद्धात्मानुभूति को ग्रहण किया है। जो

कोई भी भव्य जीव सम्यक्त्व से शुद्ध होंगे, वे स्वानुभूति में रमण करते हुए, आत्मा के अतीन्द्रिय अमृत रस का पान करते हुए मुक्ति को प्राप्त करेंगे। परम वीतरागी श्री जिनेन्द्र भगवंतों का यही कल्याणकारी दिव्य संदेश है।

प्रश्न १ – इस गाथा का अभिप्राय स्पष्ट कीजिये ?

उत्तर – जो अनन्त सिद्ध परमात्मा अनादि कालीन संसार के पंच परावर्तन रूप परिभ्रमण से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, उन सबने रत्नत्रयमयी ज्ञान गुण माला शुद्ध स्वरूप की अनुभूति को ग्रहण किया है। इसी प्रकार जो कोई भी भव्यजीव सम्यक्त्व से शुद्ध होंगे, निज शुद्धात्मानुभूति पूर्वक आत्म ध्यान में लीन होंगे, वे भी मोक्ष को प्राप्त करेंगे। ब्रह्मानन्दमयी ज्ञान स्वभाव में लीन रहेंगे। यह श्री जिनेन्द्र परमात्मा भगवान महावीर ने कहा है।

प्रश्न २ – सम्यग्दर्शन के लिये कैसा प्रयत्न करना ?

उत्तर – पहले तो अन्तर में आत्मा की बहुत प्रतीति जाग्रत करना। सद्गुरू का समागम करके तत्त्व का यथार्थ निर्णय करना। संसार को दु:ख रूप जानकर प्रतिसमय अन्तर में गहरा–गहरा मन्थन करके भेदज्ञान का अभ्यास करना। बार–बार भेदज्ञान का अभ्यास करते–करते जब हृदय में आत्म स्वरूप की महिमा आती है, तब उसका निर्विकल्प अनुभव होता है और उस अनुभव में सिद्ध भगवान के समान आनन्द का वेदन होता है, उसकी महिमा अनिर्वचनीय है।

प्रश्न ३ – जिस जीव को सम्यग्दर्शन होने वाला है ऐसे जीव के अन्तरंग बहिरंग कारण क्या हैं ?

उत्तर – जिस जीव को सम्यग्दर्शन होने वाला है ऐसे जीव के अन्तरंग कारण –१. निकट भव्यता। २. सम्यक्त्व के प्रति बाधक मिथ्यात्व आदि कर्मों का यथायोग्य उपशम, क्षय, क्षयोपशम। ३. उपदेश आदि ग्रहण करने की योग्यता। ४. संज्ञित्व (पंचेन्द्रिय–सैनी छहों पर्याप्ति से पूर्ण)। ५. परिणामों की शुद्धि (करणलब्धि)।

बहिरंग कारण–सद्गुरू का उपदेश, संसारी वेदना आदि का भय।

प्रश्न ४ – सम्यग्दर्शन होने पर क्या होता है ?

उत्तर – रागादि से भिन्न चिदानन्द स्वभाव का भान और अनुभव होते ही धर्मी को उसका नि:संदेह ज्ञान होता है कि मुझे आत्मा के अपूर्व आनन्द का वेदन हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ है, और मिथ्यात्व का नाश हो गया है, यह दृढ़ प्रतीति हो जाती है।

प्रश्न ५ – सम्यग्दृष्टि क्या करता है ?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि आत्मा के ज्ञानानन्द स्वभाव की सन्मुखता और रुचि पूर्वक बारह भावनाओं का चिंतवन कर उपयोग की एकाग्रता को बढ़ाता है। पर द्रव्यों को अच्छा बुरा नहीं मानता, वह अपने मोह, राग द्वेष भाव को ही बुरा मानता है और उन्हें दूर करने का प्रयास करता है। सम्यक् दृष्टि को ज्ञान वैराग्य की ऐसी शक्ति प्रगट होती है कि ग्रहस्थाश्रम में होने पर भी वह किसी भी कार्य में लिप्त नहीं होता। ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों परिणमती हैं। पुरुषार्थ की कमजोरी से अस्थिरता भी होती है। शरीरादि पर से भिन्नत्व भाषित होने से वह अपने चैतन्य ज्ञायक भाव उपयोग की निरंतर संभाल करता है।

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

प्रथम वर्ष (परिचय)
प्रश्न पत्र – श्री मालारोहण

समय –३ घंटा | अभ्यास के प्रश्न – गाथा १७ से ३२ | पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) सम्यग्दृष्टि.....................को अपने हृदय में झूलती हुई देखते हैं।
(ख) ....उनके हृदय में आनंद की उर्मियाँ जाग्रत कर रहा था।
(ग) अनादि से जीव ने अपने..............को नहीं जाना है।
(घ) ....अचिंतन सामर्थ्यवान है।
(ङ) संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक..................जीव को रत्नत्रय मालिका प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) उपदेश आदि ग्रहण करने की योग्यता सम्यग्दर्शन के बहिरंग कारण है।
(ख) पुरुषार्थ की कमजोरी से स्थिरता होती है।
(ग) ज्ञानी, पर को ग्रहण नहीं करता।
(घ) मौन की सफलता होने पर ही ध्यान की सफलता होती है।
(ङ) आशा मोह की मंदता में होती है।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ X ५ = १०)

(क) पंचेन्द्रिय की ओर प्रवृत्त बुद्धि कारण है – (१) संसार का (२) मोक्ष का (३) राग का (४) पुण्य का
(ख) शुद्धात्मा की आराधना से मिलती है – (१) ज्ञानगुण माला (२) मुक्ति (३) शांति (४) भक्ति
(ग) मुक्ति में ..... का प्रवेश होता है – (१) मनुष्य (२) देव (३) सम्यग्दृष्टि (४) विद्वान का
(घ) निज स्वरूप में निरंतर रहने वाले हैं – (१) मनुष्य (२) विद्वान (३) साधु (४) देव
(ङ) सात प्रकृति के उपशम से... सम्यक्त्व होता है– (१) शुद्ध (२) क्षायिक (३) उपशम (४) वेदक

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ X ५ = १०)

स्तंभ – क		स्तंभ – ख
चाह	–	मिथ्यात्व
शंका	–	स्नेह
परिग्रह	–	लोभ
अपनत्व	–	भय
शरीर मैं हूँ	–	आशा

प्रश्न ५ – अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ४ X ५ = २०)

(क) शुद्ध दृष्टि सत्पुरुषार्थ कैसे करते हैं ?
(ख) अनंत गुण कैसे प्रगट होते हैं ?
(ग) जीव के संसार परिभ्रमण का क्या कारण है ?
(घ) मुक्ति श्री का वरण कौन करता है ?
(ङ) वीतरागी भावलिंगी साधु की महिमा क्या है ? (अथवा) चार स्थान का नाम व संक्षिप्त परिभाषा लिखिए।

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ X ५ = ३०)

(१) शुद्धात्म दर्शन के लिए कौन सा सम्यक्त्व होना चाहिए ?
(२) जे सुद्ध दिस्टि संमिक्त जुक्तं का अभिप्राय लिखो।
(३) सम्यक्त्व के भेदों के नाम लिखकर किन्हीं तीन भेदों का स्वरूप लिखिए ?
(४) '' आत्म दर्शन का बाह्य वेष से संबंध नहीं है'' सिद्ध कीजिए।
(५) लाज और गारव का क्या स्वरूप है ?
(६) वीतरागी साधु की अंतरंग स्थिति कैसी होती है ?

प्रश्न ७ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न – (कोई एक) (अंक १ X १० = १०)

(क) ध्यानी योगी चैतन्य चमत्कार कैसे देखते हैं ? ध्यान का क्या स्वरूप है।
(ख) गाथा १६ से ३२ का सारांश लिखिए।
(ग) शुद्ध सम्यक्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। (मालारोहण के आधार पर)

पंडित दौलतराम जी – जीवन परिचय

अध्यात्म सृजन के क्षेत्र में विक्रम संवत् १८५५–५६ के मध्य एक नये सूर्य का जन्म हुआ, जो आज भी अध्यात्म आकाश में जगमगा रहा है। पंडित श्री बुधजन जी एवं पंडित श्री द्यानतराय जी ने ''छहढाला'' की रचना करके उद्‌बुद्ध किया परन्तु अध्यात्म के सागर को गागर में भरने वाले पंडित श्री दौलतराम जी ने छहढाला को नया स्वरूप तो दिया ही मोक्षमार्ग को भी स्पष्ट किया है।

पंडित श्री दौलतरामजी का जन्म अलीगढ़ के पास हाथरस जिले के सासनी नामक ग्राम में पल्लीवाल जाति में हुआ। इनके पिता का नाम टोडरमल तथा गोत्र गंगटीवाल था। आपने वस्त्र व्यवसाय (बजाजी) अपनाया, इसके लिये अलीगढ़ आकर रहने लगे। आपका विवाह अलीगढ़ निवासी चिंतामणि बजाज की सुपुत्री के साथ हुआ। आपके दो बड़े पुत्रों में से टीकाराम जी आपके समान कवि हृदय थे। आत्मप्रशंसा से दूर रहकर, अध्यात्म रस में निमग्न रहने वाले कवि पंडित दौलतराम जी की रचनाओं के अतिरिक्त उनका विस्तृत परिचय प्राप्त नहीं है। वे एक सरल स्वभावी, आत्मज्ञानी साधारण गृहस्थ थे। विक्रम संवत् १९२३ मार्गशीर्ष कृष्ण अमावस्या को दिल्ली में उनका देहावसान हुआ था। आपको अपनी मृत्यु का आभास छह दिन पूर्व हो गया था। तब आप गोम्मटसारजी ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद कर रहे थे और उस ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद आपने छह दिन पूर्व ही कर लिया था।

कविवर पंडित दौलतराम जी की प्रमुख दो रचनायें हैं – प्रथम रचना आपको अमृत प्रदान करने वाली ''गागर में सागर'' की उक्ति को चरितार्थ करने वाली ''छहढाला'' सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह संपूर्ण जैन धर्म के मर्म को अपने में समेटे हुए जन–जन के कंठ का हार बना हुआ अत्यंत लोकप्रिय, संक्षिप्त, सरल, सरस, आध्यात्मिक ग्रंथ है।

दूसरी रचना है ''दौलत विलास'' यह आपके अध्यात्म रसमय भजनों, पदों, स्तुतियों का संकलन है। इसमें अत्यंत भावपूर्ण ''देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर '' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले लगभग १५० पद हैं। ये भजन मात्र भक्तिमय नहीं हैं; अपितु जैन धर्म के गूढ़ रहस्यों से ओत–प्रोत हैं। इसकी भाषा भी अत्यंत सरल, सुबोध, प्रवाहमयी तथा शब्दों की सार्थकता को सिद्ध करने वाली प्रौढ़तायुक्त है।

हिन्दी गीत साहित्य में इन दोनों कृतियों का भाषा, शैली, गेयता की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रहा है।

ग्रंथ परिचय

छहढाला से तात्पर्य इस ग्रन्थ में वर्णित ढालों से है। जिस प्रकार युद्ध क्षेत्र में शत्रु पक्ष के वारों से बचाव के लिये ढालों का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार संसार–चक्र में इस जीव को चौरासी लाख योनियों में भटकाने वाले मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र से बचाव के लिये छहढाला ग्रंथ है।

सर्वप्रथम यह जीव मिथ्यात्व के वशीभूत होकर किन–किन गतियों व किन–किन योनियों में भटकता है – इसका सुविशद् व संक्षिप्त वर्णन पहली ढाल में किया गया है ।

जिनके वशीभूत होकर यह जीव संसार चक्र में जन्म–मरण के अनंत दुःख उठा रहा है, उन मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र (अगृहीत व गृहीत) का स्वरूप क्या है– इसका वर्णन दूसरी ढाल में सूत्रात्मक शैली में किया गया है।

तीसरी ढाल में मोक्षमार्ग का सामान्य स्वरूप दर्शन व सम्यग्दर्शन का विशेष लक्षण, फल एवं महिमा का वर्णन बहुत ही सुंदर रीति से किया गया है।

चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान का स्वरूप फल एवं महिमा के साथ–साथ सम्यक्‌चारित्र के अंतर्गत पंचम

गुणस्थानवर्ती देशव्रती श्रावक के बारह व्रतों का चित्रण भी प्रामाणिकता के साथ किया गया है।

देशव्रती श्रावक जब स्वयं विशेष पुरुषार्थ करके मुनिव्रत अंगीकार करता है, तब वह कैसी भावना भाता है– इसका सर्वांगीण चित्रण बारह भावनाओं के रूप में पांचवी ढाल में अत्युत्तम रीति से किया गया है।

समाज में अभी भी इन अनित्य, अशरण आदि भावनाओं का सतत् चिंतवन किया जाता है, पाँचवीं ढाल के प्रारम्भ में पंडित दौलतराम जी कहते हैं –

इन चिंतन सम सुख जागे, जिमि ज्वलन पवन के लागै।

जिस प्रकार वायु के स्पर्श से अग्नि और अधिक प्रज्ज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार भावनाओं के चिंतवन से समता रूपी सुख और अधिक वृद्धिंगत हो जाता है अर्थात् बारह भावनाओं का चिंतवन न तो रो – रोकर और न ही हँस–हँसकर; बल्कि वीतराग भाव से करना चाहिये, जिससे समता रूपी सुख उत्पन्न हो।

छटवीं ढाल में मुनि से लेकर भगवान बनने तक की सारी विधि सविस्तार बताई गई है। यहाँ पंडित जी ने छटवें गुणस्थानवर्ती मुनि के २८ मूलगुणों का वर्णन करने के पश्चात् स्वरूपाचरण चारित्र का वर्णन किया है, जिसमें आत्मानुभव का चित्रण बड़ी ही मग्नता के साथ किया गया है। ऐसा लगता है – मानो पंडितजी स्वयं मुनिराज के हृदय में बैठे हों और उनके अंतरंग भावों का अवलोकन कर रहे हों।

छहढाला – आध्यात्मिक जैन साहित्य का वह जगमगाता रत्न है, जिसे जौहरियों ने एकमत से 'अमूल्य' माना है। मनीषियों के कथन प्रस्तुत हैं –

सागर को गागर में भर दिया – स्व. गणेश प्रसाद जी वर्णी

अनेक आगमों का मंथन कर 'छहढाला' का निर्माण हुआ है –पं. दरबारीलाल कोठिया

भाव,भाषा और अनुभूति की दृष्टि से यह रचना बेजोड़ है – श्री नेमीचंद शास्त्री, आरा

दौलतराम जी प्रबुद्ध, आध्यात्मिक, प्रकृति के अन्तस्थल के अंतर्दृष्टा कवि हैं – पं. सुमेरचन्द्र दिवाकर

कवि दौलतराम के कारण माँ भारती का मस्तक उन्नत हुआ है – हिन्दी – जैन – साहित्य परिशीलन

इस प्रकार हम दौलतराम जी को सरल भाषा में गंभीर आध्यात्मिक रहस्यों को स्पष्ट करने वाले आध्यात्मिक कवि पाते हैं।

भाषा व शैली – 'छहढाला' ब्रज मिश्रित खड़ी बोली है , जो अलीगढ़ के आस–पास बोली जाती है। भाषा सरल, स्वाभाविक और मुहावरेदार है और सीधी हृदय को छूती है। भाषा–शैली समकालीन कवियों से मिलती–जुलती है, फिर भी प्रसाद गुण उसमें भरपूर है। दुरूह तात्विक विषय को इतने रोचक और सरल ढंग से लिखना इनकी लेखनी की विशेषता है।

रस अलंकार – यह ग्रंथ वैराग्य का पोषक व शान्त–रस प्रधान है। वैसे अन्य रसों के प्रसंग वश कुछ छींटे दिखाई देते हैं , किंतु मूलतः शान्त रस ही लहराता है। और अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि बिना प्रयास के उनकी कविता में अलंकृत हो गये हैं।

छन्द – 'छहढाला' में मुख्य छह छन्द हैं – चौपाई, पद्धड़ी, नरेन्द्र (जोगीरासा), रोला, छन्दचाल और हरिगीता छन्द। इनकी पदावली में अनेक गेय–छन्द हैं। मालूम होता है कि कवि संगीत के अच्छे जानकार और पिंगल–शास्त्र के भी पारंगत विद्वान थे। इस प्रकार पं. श्री दौलतराम जी एवं उनके द्वारा लिखित छहढाला ग्रंथ का समाज में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है।

पहली ढाल

– मंगलाचरण –

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥ १ ॥

अन्वयार्थ :– (वीतराग) राग–द्वेष रहित **(विज्ञानता)** केवलज्ञान **(तीन भुवन में)** तीन लोक में **(सार)** उत्तम वस्तु **(शिवस्वरूप)** आनन्दस्वरूप [और] **(शिवकार)** मोक्ष प्राप्त कराने वाला है, उसे मैं **(त्रियोग)** तीन योग से **(सम्हारिकैं)** सावधानी पूर्वक **(नमहुँ)** नमस्कार करता हूँ।

ग्रन्थ रचना का उद्देश्य और जीवों की इच्छा

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार ॥ २ ॥

अन्वयार्थ :– (त्रिभुवन में) तीनों लोक में **(जे)** जो **(अनन्त)** अनन्त **(जीव)** प्राणी [हैं वे] **(सुख)** सुख की **(चाहैं)** इच्छा करते हैं और **(दुखतैं)** दुःख से **(भयवन्त)** डरते हैं **(तातैं)** इसलिये **(गुरु)** आचार्य **(करुणा)** दया **(धार)** करके **(दुःखहारी)** दुःख का नाश करने वाली और **(सुखकार)** सुख को देने वाली **(सीख)** शिक्षा **(कहैं)** कहते हैं।

गुरु की शिक्षा सुनने की प्रेरणा तथा संसार–परिभ्रमण का कारण

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान ।
मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ :– (भवि) हे भव्य जीवो ! **(जो)** यदि **(अपनो)** अपना **(कल्यान)** हित **(चाहो)** चाहते हो [तो] **(ताहि)** गुरु की वह शिक्षा **(मन)** मन को **(थिर)** स्थिर **(आन)** करके **(सुनो)** सुनो [कि इस संसार में प्रत्येक प्राणी] **(अनादि)** अनादि काल से **(मोह महामद)** मोहरूपी महामदिरा **(पियो)** पीकर **(आपको)** अपने आत्मा को **(भूल)** भूलकर **(वादि)** व्यर्थ **(भरमत)** भटक रहा है।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता और निगोद का दुःख

तास भ्रमन की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्री तन धार ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ :– (तास) उस संसार में **(भ्रमन की)** भटकने की **(कथा)** कथा **(बहु)** बड़ी **(है)** है **(पै)** तथापि **(यथा)** जैसी **(मुनि)** पूर्वाचार्यों ने **(कही)** कही है [तदनुसार मैं भी] **(कछु)** थोड़ी सी **(कहूँ)** कहता हूँ [कि इस जीव का] **(निगोद मँझार)** निगोद में **(एकेन्द्री)** एकेन्द्रिय जीव के **(तन)** शरीर **(धार)** धारण करके **(अनन्त)** अनन्त **(काल)** काल **(वीत्यो)** व्यतीत हुआ है।

निगोद का दुःख और वहाँ से निकलकर प्राप्त की हुई पर्यायें

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुखभार ।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो ॥ ५ ॥

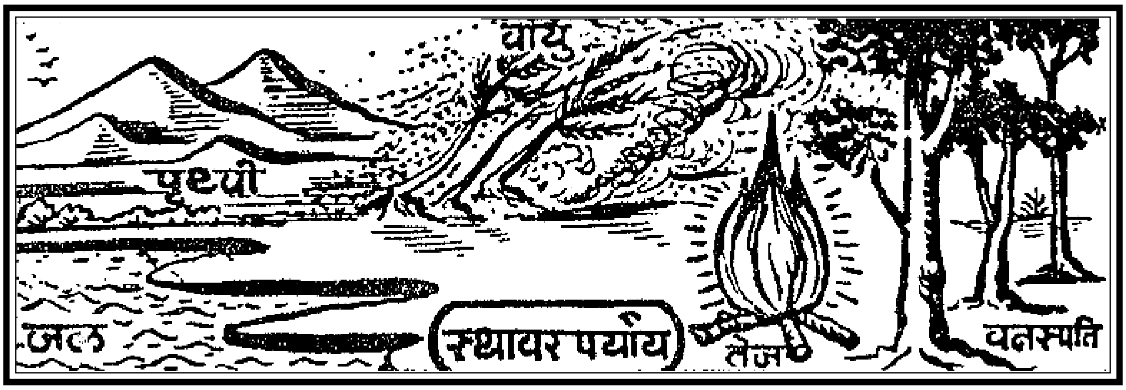

अन्वयार्थ :- [निगोद में यह जीव] **(एक श्वास में)** एक साँस में **(अठदस बार)** अठारह बार **(जन्म्यो)** जन्मा [और] **(मर्‌यो)** मरा [तथा] **(दुःखभार)** दुःखों का भार **(भर्‌यो)** सहन किया [और वहाँ से] **(निकसि)** निकलकर **(भूमि)** पृथ्वीकायिक जीव **(जल)** जलकायिक जीव **(पावक)** अग्निकायिक जीव **(भयो)** हुआ [तथा] **(पवन)** वायुकायिक जीव [और] **(प्रत्येक वनस्पति)** प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव **(थयो)** हुआ।

त्रस पर्याय की दुर्लभता और उसका दुःख

दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर धर मर्‌यो सही बहु पीर ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :- **(ज्यों)** जिस प्रकार **(चिंतामणि)** चिन्तामणि रत्न **(दुर्लभ)** कठिनाई से **(लहि)** प्राप्त होता है **(त्यों)** उसी प्रकार **(त्रसतणी)** त्रस की **(पर्याय)** पर्याय [भी बड़ी कठिनाई से] **(लही)** प्राप्त हुई। [वह भी] **(लट)** इल्ली **(पिपील)** चींटी **(अलि)** भँवरा **(आदि)** इत्यादि के **(शरीर)** शरीर **(धर धर)** बारम्बार धारण करके **(मर्‌यो)** मरण को प्राप्त हुआ [और] **(बहु पीर)** अत्यन्त पीड़ा **(सही)** सहन की।

तिर्यंचगति में असंज्ञी तथा संज्ञी के दुःख

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥ ७ ॥

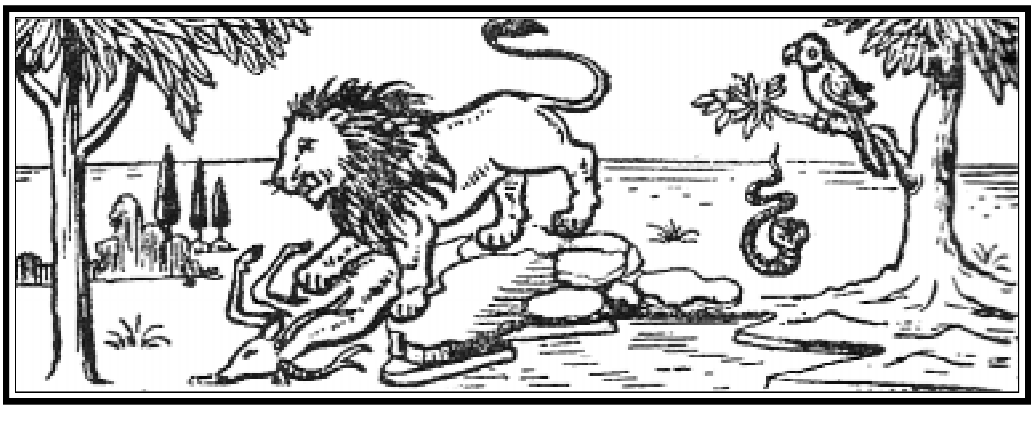

अन्वयार्थ :- [यह जीव] **(कबहूँ)** कभी **(पंचेन्द्रिय)** पंचेन्द्रिय **(पशु)** तिर्यंच **(भयो)** हुआ [तो] **(मन बिन)** मन के बिना **(निपट)** अत्यन्त **(अज्ञानी)** मूर्ख **(थयो)** हुआ [तब] **(सिंहादिक)** सिंह आदि **(क्रूर)** क्रूर जीव **(ह्वै)** होकर **(निबल)** अपने से निर्बल **(भूर)** अनेक **(पशु)** तिर्यंच **(हति)** मार-मारकर **(खाये)** खाये।

तिर्यंचगति में निर्बलता तथा दुःख

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन, हिम, आतप त्रास ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ :- [यह जीव तिर्यंच गति में] **(कबहूँ)** कभी **(आप)** स्वयं **(बलहीन)** निर्बल **(भयो)** हुआ [तो] **(अतिदीन)** असमर्थ होने से **(सबलनिकरि)** अपने से बलवान प्राणियों द्वारा **(खायो)** खाया गया [और] **(छेदन)** छेदा जाना **(भेदन)** भेदा जाना **(भूख)** भूख **(पियास)** प्यास **(भार-वहन)** बोझ ढोना **(हिम)** ठण्ड **(आतप)** गर्मी [आदि के] **(त्रास)** दुःख सहन किये।

तिर्यंच के दुःख की अधिकता और नरक गति की प्राप्ति का कारण

वध बंधन आदिक दुख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‌यो घोर श्वभ्रसागर में पर्‌यो ॥ ९ ॥

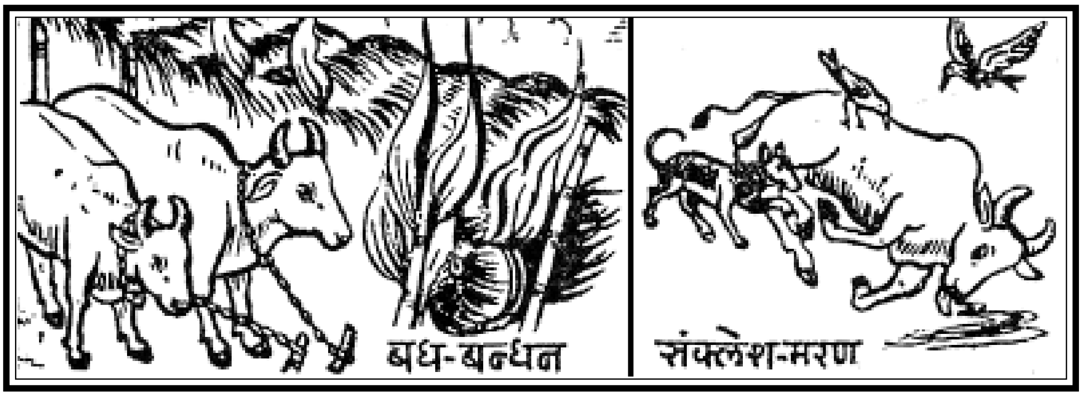

अन्वयार्थ :- [इस तिर्यंच गति में जीव ने अन्य भी] **(वध)** मारा जाना **(बंधन)** बँधना **(आदिक)** आदि **(घने)** अनेक **(दुःख)** दुःख सहन किये [वे] **(कोटि)** करोड़ों **(जीभतैं)** जीभों से **(भने न जात)** नहीं कहे जा सकते। [इस कारण] **(अति संक्लेश)** अत्यन्त बुरे **(भावतैं)** परिणामों से **(मर्‌यो)** मरकर **(घोर)** भयानक **(श्वभ्रसागर में)** नरकरूपी समुद्र में **(पर्‌यो)** जा गिरा।

नरकों की भूमि और नदियों का वर्णन

तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो।
तहाँ राध-श्रोणितवाहिनी, कृमि-कुल-कलित, देह-दाहिनी ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :- **(तहाँ)** उस नरक में **(भूमि)** धरती **(परसत)** स्पर्श करने से **(इसो)** ऐसा **(दुख)** दुःख होता है [कि] **(सहस)** हजारों **(बिच्छू)** बिच्छू **(डसे)** डंक मारें तथापि **(नहिं तिसो)** उसके समान दुःख नहीं होता [तथा] **(तहाँ)** वहाँ [नरक में] **(राध-श्रोणितवाहिनी)** रक्त और मवाद बहाने वाली

[वैतरणी नामक] नदी है जो **(कृमिकुलकलित)** छोटे-छोटे क्षुद्र कीड़ों से भरी है तथा **(देहदाहिनी)** शरीर में दाह उत्पन्न करनेवाली है।

नरकों के सेमर वृक्ष तथा सर्दी-गर्मी के दुःख

सेमर तरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥ ११ ॥

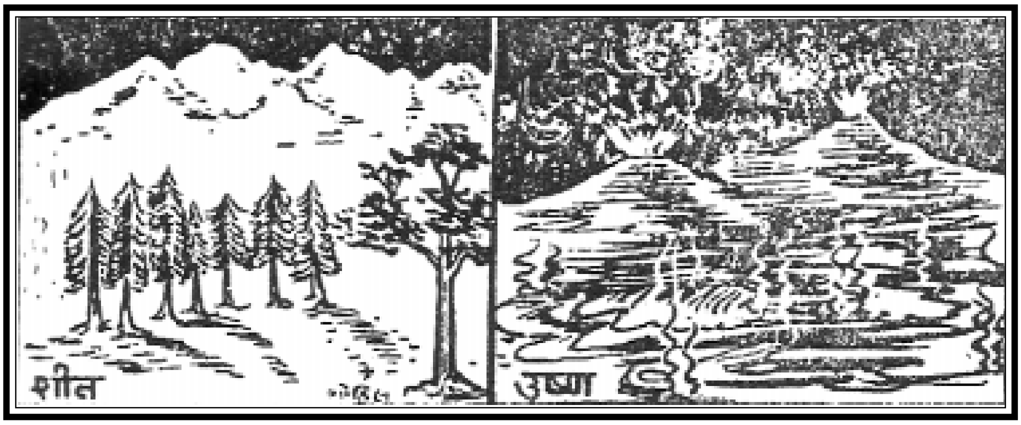

अन्वयार्थ :- (तत्र) उन नरकों में **(असिपत्र ज्यों)** तलवार की धार की भाँति तीक्ष्ण **(दलजुत)** पत्तों वाले **(सेमर तरु)** सेमल के वृक्ष [हैं,जो] **(देह)** शरीर को **(असि ज्यों)** तलवार की भाँति **(विदारैं)** चीर देते हैं, [और] **(तत्र)** वहाँ [उस नरक में] **(ऐसी)** ऐसी **(शीत)** ठण्ड [और] **(उष्णता)** गर्मी **(थाय)** होती है [कि] **(मेरु समान)** मेरु पर्वत के बराबर **(लोह)** लोहे का गोला भी **(गलि)** गल **(जाय)** सकता है।

नरकों में अन्य नारकी, असुरकुमार तथा प्यास का दुःख

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावै दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धुनीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ :- [उन नरकों में नारकी जीव एक-दूसरे के] **(देह के)** शरीर के **(तिल-तिल)** तिल्ली

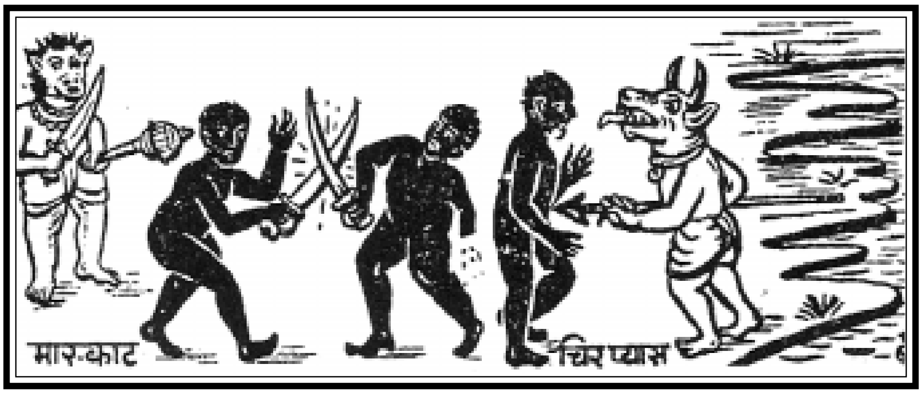

के दाने बराबर **(खण्ड)** टुकड़े **(करें)** कर डालते हैं [और] **(प्रचण्ड)** अत्यन्त **(दुष्ट)** क्रूर **(असुर)** असुरकुमार जाति के देव [एक – दूसरे के साथ] **(भिड़ावैं)** लड़ाते हैं, [तथा इतनी] **(प्यास)** प्यास [लगती है कि] **(सिन्धुनीर तैं)** समुद्रभर पानी पीने से भी **(न जाय)** शांत न हो **(तो पण)** तथापि **(एक बूँद)** एक बूँद भी **(न लहाय)** नहीं मिलती।

नरकों की भूख, आयु और मनुष्यगति प्राप्ति का वर्णन

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहै, करम जोगतैं नरगति लहै ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ :– [उन नरकों में इतनी भूख लगती है कि] **(तीन लोक को)** तीनों लोकों का **(नाज)** अनाज **(जु खाय)** खा जाये तथापि **(भूख)** क्षुधा **(न मिटै)** शांत न हो [परन्तु खाने के लिये] **(कणा)** एक दाना भी **(न लहाय)** नहीं मिलता। **(ये दुख)** ऐसे दुःख **(बहु सागर लौं)** अनेक सागरोपमकाल तक **(सहै)** सहन करता है, **(करम जोगतैं)** किसी विशेष शुभकर्म के योग से **(नर गति)** मनुष्यगति **(लहै)** प्राप्त करता है।

मनुष्यगति में गर्भनिवास तथा प्रसवकाल के दुःख

जननी उदर वस्यो नव मास, अंग सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ :– [मनुष्य गति में भी यह जीव] **(नव मास)** नौ महीने तक **(जननी)** माता के **(उदर)** पेट में **(वस्यो)** रहा; [तब वहाँ] **(अंग)** शरीर **(सकुचतैं)** सिकोड़कर रहने से **(त्रास)** दुःख **(पायो)** पाया [और] **(निकसत)** निकलते समय **(जे)** जो **(घोर)** भयंकर **(दुख पाये)** दुःख पाये **(तिनको)** उन दुःखों को **(कहत)** कहने से **(और)** अन्त **(न आवे)** नहीं आ सकता।

मनुष्य गति में बाल, युवा और वृद्धावस्था के दुःख

बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतकसम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ :– [मनुष्यगति में] **(बालपने में)** बचपन में **(ज्ञान)** ज्ञान **(न लह्यो)** प्राप्त नहीं कर सका [और] **(तरुण समय)** युवावस्था में **(तरुणी–रत)** युवती स्त्री में लीन **(रह्यो)** रहा [और] **(बूढ़ापनो)** वृद्धावस्था में **(अर्धमृतकसम)** अधमरा जैसा [रहा, ऐसी दशा में] **(कैसे)** किस प्रकार [जीव] **(आपनो)** अपना **(रूप)** स्वरूप **(लखै)** देखे–विचारे।

देवगति में भवनत्रिक का दुःख

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै ।
विषय-चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ :- [इस जीव ने] **(कभी)** कभी **(अकाम निर्जरा)** अकाम निर्जरा **(करै)** की [तो मरने के पश्चात्] **(भवनत्रिक में)** भवनवासी व्यंतर और ज्योतिषी में **(सुरतन)** देवपर्याय **(धरै)** धारण की [परन्तु वहाँ भी] **(विषय चाह)** पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी **(दावानल)** भयंकर अग्नि में **(दह्यो)** जलता रहा [और] **(मरत)** मरते समय **(विलाप करत)** रो - रो कर **(दुख)** दुःख **(सह्यो)** सहन किया।

देवगति में वैमानिक देवों का दुःख

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय ।
तहँतैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ :- (जो) यदि **(विमानवासी)** वैमानिक देव **(हू)** भी **(थाय)** हुआ [तो वहाँ] **(सम्यग्दर्शन)** सम्यग्दर्शन **(बिन)** बिना **(दुख)** दुःख **(पाय)** प्राप्त किया [और] **(तहँतैं)** वहाँ से **(चय)** मरकर **(थावर तन)** स्थावर जीव का शरीर **(धरै)** धारण करता है **(यों)** इस प्रकार [यह जीव] **(परिवर्तन)** पाँच परावर्तन **(पूरे करै)** पूर्ण करता रहता है।

प्रश्नोत्तर मंगलाचरण

प्रश्न १ - छहढाला में कुल कितने पद हैं, प्रत्येक ढाल के पदों की संख्या बताइये ?

उत्तर - छहढाला में कुल ९५ पद हैं, पहली ढाल में १७, दूसरी में १५, तीसरी में १७, चौथी में १५, पाँचवीं में १५ और छटवीं ढाल में १६ पद हैं।

प्रश्न २ - छहढाला में किस-किस छंद में पद लिखे गये हैं ?

उत्तर - छहढाला में चौपाई, पद्धरी, नरेन्द्र, रोला, छंदचाल और हरिगीता छंद में पद लिखे गये हैं।

प्रश्न ३ - वीतराग विज्ञानता किसे कहते हैं ?

उत्तर - वीतराग अर्थात् रागद्वेष रहित, विज्ञानता अर्थात् केवलज्ञान। रागद्वेष रहित केवलज्ञान स्वरूप को वीतराग विज्ञानता कहते हैं।

प्रश्न ४ - जैन धर्म विज्ञान है या कला ?

उत्तर - जैन धर्म कलात्मक विज्ञान है और वैज्ञानिक कला है क्योंकि इसका सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पक्ष, विज्ञान है और सम्यक्चारित्र पक्ष, कला है। विज्ञान में वस्तु का व्यवस्थित ज्ञान होता है और कला में जो शिक्षा ग्रहण की है उसका जीवन में उपयोग होता है। जैसे -

१. पढ़ना विज्ञान है। पढ़ाना कला है।

२. आत्मा को जानना विज्ञान है। जानते रहना, उसमें निमग्न रहना कला है।

प्रश्न ५ - तीन भुवन कौन से हैं, नाम लिखें ?

उत्तर - तीन भुवन - ऊर्ध्व लोक, मध्य लोक, अधो लोक हैं।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ - तीन लोक में कितने जीव हैं ?

उत्तर - तीन लोक में अनन्त जीव हैं।

प्रश्न २ – तीन लोक के जीव क्या चाहते हैं ?

उत्तर – तीन लोक के जीव सुख चाहते हैं और दुःख से भयभीत रहते हैं।

प्रश्न ३ – ऊर्ध्वलोक में कौन से जीव रहते हैं ?

उत्तर – ऊर्ध्वलोक में वैमानिक देव रहते हैं।

प्रश्न ४ – मध्यलोक में कौन से जीव रहते हैं ?

उत्तर – मनुष्य, तिर्यंच, भवनवासी देव, व्यन्तर देव और ज्योतिषी देव मध्यलोक में रहते हैं।

प्रश्न ५ – अधोलोक में कौन से जीव रहते हैं ?

उत्तर – असुरकुमार राक्षस आदि भवनवासीदेव, व्यन्तरदेव, नारकी तथा निगोदिया जीव अधोलोक में रहते हैं एवं एकेन्द्रिय सूक्ष्म जीव सर्वत्र लोक में व्याप्त हैं।

प्रश्न ६ – निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर – साधारण नामकर्म के उदय से एक शरीर के आश्रय से अनंतानंत जीव समान रूप से जिसमें एकसाथ रहते हैं, मरते हैं और पैदा होते हैं ऐसी अवस्था वाले जीवों को निगोद कहते हैं।

प्रश्न ७ – निगोद के कितने भेद हैं ?

उत्तर – निगोद के दो भेद हैं – १. नित्य निगोद २. इतर निगोद।

प्रश्न ८ – नित्य निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीव आज तक निगोद पर्याय से नही निकले हैं उन्हें नित्य निगोद कहते हैं परन्तु वे जीव भविष्य में त्रस पर्याय प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न ९ – इतर निगोद किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो जीव निगोद से निकलकर अन्य पर्याय को प्राप्त करके पुनः निगोद में उत्पन्न होते हैं उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

प्रश्न १०– निगोदिया जीव की कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

उत्तर – निगोदिया जीव एकेन्द्रिय होते हैं। उनके मात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

प्रश्न ११– निगोदिया जीवों को क्या दुःख है?

उत्तर – निगोदिया जीवों का एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण होता है इसलिये उन्हें जन्म–मरण का सबसे बड़ा दुःख है।

प्रश्न १२– स्थावर जीव किसे कहते हैं और यह कितने इन्द्रिय होते हैं ?

उत्तर – स्थावर नामकर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति कायिक जीवों को स्थावर जीव कहते हैं। स्थावर जीवों को एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

प्रश्न १३– त्रसजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था विशेष अर्थात् दो से पाँच इन्द्रिय तक के जीवों को त्रस जीव कहते हैं।

प्रश्न १४– नरक कितने होते हैं उनके रूढ़िगत नाम कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – नरक सात होते हैं –१. धम्मा २. वंशा ३. मेघा ४. अंजना ५. अरिष्टा ६. मघवी (मघवा)

७. माघवी।

प्रश्न १५– नरक की भूमियों के नाम कौन–कौन से हैं ?

उत्तर – नरक की भूमियों के सात नाम हैं – १. रत्नप्रभा २. शर्कराप्रभा ३. बालुकाप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तमःप्रभा ७. महातमःप्रभा।

प्रश्न १६– नरकों में ऊष्णता व शीत कौन–कौन से नरकों तक होती है ?

उत्तर – प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम भूमि के ऊपरी भाग तक ऊष्णता होती है एवं पांचवें नरक की भूमि के नीचे के भाग में तथा छटवें व सातवें नरक की भूमि में शीत होती है।

प्रश्न १७– नरक आयु के आस्रव का कारण क्या है ?

उत्तर – बहुत आरंभ और परिग्रह का होना नरक आयु के आस्रव का कारण है।

प्रश्न १८– निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा के साथ पूर्व में बंधे हुए कर्मों का एक देश झड़ जाना निर्जरा है।

प्रश्न १९– भवनत्रिक किसे कहते हैं ?

उत्तर – भवनवासी, व्यन्तर एवं ज्योतिषी देवों को भवनत्रिक कहते हैं।

प्रश्न २०– देव कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तर – देव चार प्रकार के होते हैं ?

१. भवनवासी २. व्यंतर ३. ज्योतिषी ४. वैमानिक।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १– वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(क) तीव्र कर्मोदय में युक्त न होकर जीव पुरुषार्थ द्वारा मंदकषाय रूप परिणमित हो, वह --------- है। (अकामनिर्जरा/निर्जरा)

(ख) जहाँ के जीवों ने अनादिकाल से आज तक त्रसपर्याय प्राप्त नहीं की, ऐसी जीवराशि -------- कहलाती है। (नित्य निगोद/निगोद)

(ग) अति --------- भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो। (क्लेश/संक्लेश)

(घ) दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही --------- । (त्रसतणी/मनुष्य)

(ङ) मन, वचन और काय अथवा द्रव्य और भाव को ------- कहते हैं। (भोग /योग)

प्रश्न २ – अतिलघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) तीन भुवन में सार क्या है ?

उत्तर – तीन भुवन (ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक) में सार तत्त्व राग–द्वेष रहित केवलज्ञान अर्थात् वीतराग विज्ञान है।

(ख) संसार परिभ्रमण का कारण क्या है ?

उत्तर – अनादिकाल से अपने आत्म स्वरूप को भूलकर मोह में फँसना ही संसार परिभ्रमण का कारण है।

(ग) एकेन्द्रिय के कितने भेद होते हैं ? नाम लिखिए।
उत्तर – पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक ये पाँच एकेन्द्रिय जीव हैं।

(घ) नरकों की नदी और वृक्ष के नाम लिखिए।
उत्तर – नरकों की रक्त, मवाद, कीट से भरी नदी वैतरणी नदी है और तलवार की धार जैसे तेज पत्तों वाले वृक्ष – सेमर वृक्ष हैं।

(ङ) देवगति में वैमानिक देव क्यों दुःखी होते हैं ?
उत्तर – देवगति में वैमानिक देव सम्यग्दर्शन के बिना दुःखी होते हैं।

प्रश्न ३ – दीर्घउत्तरीय प्रश्न –

(क) पहली ढाल का सारांश लिखिए।
उत्तर – संसार की कोई भी गति सुखदायक नहीं है। निश्चय सम्यग्दर्शन से ही पंच परावर्तनरूप संसार समाप्त होता है। अन्य किसी कारण से – दया, दानादि के शुभ राग से संसार नहीं छूटता। संयोग सुख–दुःख का कारण नहीं है, किन्तु मिथ्यात्व (पर के साथ एकत्व बुद्धि, कर्ता बुद्धि, शुभराग से धर्म होता है, शुभराग हितकर है– ऐसी मान्यता ही) दुःख का कारण है। सम्यग्दर्शन सुख का कारण है।

– तिर्यंच गति के दुःख –

१. यह जीव कभी पंचेन्द्रिय पशु हुआ, तो मन के बिना अत्यन्त अज्ञानी (मूर्ख) हुआ वहाँ मन रहित होने से कुछ विचार करने की सामर्थ्य ही नहीं रही।
२. कभी संज्ञी अर्थात् मन सहित भी हुआ तो अपने से निर्बल अनेक प्राणियों को मार–मार कर खाया।
३. कभी यह जीव स्वयं बलहीन हुआ तो अपने से बलवान प्राणियों द्वारा मारकर खाया गया।
४. पंचेन्द्रिय पशु छेदा जाना, भेदा जाना, भूख, प्यास, बोझा ढोना, ठंड, गर्मी के दुःखों से भी व्याकुलित होता है।
५. इस जीव ने पंचेन्द्रिय पशु होकर मारा जाना, बंधना आदि अनेक दुःख सहे। जिनका वर्णन करोड़ों जीभों से भी नहीं किया जा सकता और आयु के अंत में संक्लेशित परिणामों से (शरीर में एकत्वबुद्धि के कारण आर्तध्यान से) मरण कर घोर नरक गति में जा पहुँचा।

– नरक गति के दुःख तथा नरक गति का वातावरण –

१. नरक की भूमि का स्पर्श मात्र करने से नारकियों को इतनी वेदना होती है कि हजारों बिच्छू एक साथ डंक मारें तब भी उतनी वेदना न हो। वहाँ की मिट्टी का एक कण भी इस लोक में आ जाये तो उसकी दुर्गन्ध से कोसों के संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव मृत्यु को प्राप्त हो जावें।
२. वहाँ खून व मवाद की नदियाँ हैं जो छोटे–छोटे कीड़ों से भरी हुई हैं जो शरीर में दाह पैदा करती हैं। वहाँ असह्य वेदना से दुःखी जीव जब इस वैतरणी नदी में कूदता है, तो उसकी वेदना और भी भयंकर हो जाती है।
३. उन नरकों में तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तों वाले सेमर के वृक्ष हैं, जो शरीर को चीर देते हैं।
४. मेरू पर्वत के समान लोहे का पिंड भी गल जाये ऐसी भीषण सर्दी, गर्मी है।

५. उन नरकों में नारकी जीव एक दूसरे के शरीर के तिल्ली के दाने के बराबर टुकड़े कर डालते हैं तथापि उनका शरीर पारे की भाँति बिखरकर फिर जुड़ जाता है, आयु का अंत नहीं होता।
६. वहाँ असुर कुमार जाति के देव परस्पर बैर बताकर लड़वाते हैं।
७. नरकों में इतनी भीषण प्यास लगती है कि पूरे सागर का जल भी पी जाये तो भी तृषा शांत न हो तथापि पीने के लिये जल की एक बूँद भी नहीं मिलती।
८. उन नरकों में इतनी तीव्र भूख लगती है कि तीन लोक का अनाज एक साथ खा जाये तो भी क्षुधा शांत न हो तथापि वहाँ खाने के लिए एक कण भी नहीं मिलता।
९. नरकों में यह जीव ऐसे दुःख कम से कम दस हजार वर्ष और अधिक से अधिक तैंतीस सागरोपम काल तक (आयु के अनुसार) भोगता है।

– मनुष्य गति के दुःख –

१. किसी विशेष पुण्योदय से यह जीव जब कभी मनुष्य पर्याय प्राप्त करता है तब नौ माह माँ के पेट में रहा तब वहाँ शरीर को सिकोड़कर रहने से महान कष्ट सहता है।
२. गर्भवास के दुःखों को सहन कर जब वहाँ से यह जीव निकलता है, तो इतनी अपार वेदना होती है कि जिसका अंत नहीं, वह वेदना अवर्णनीय है।
३. मनुष्यगति में यह जीव बाल्यावस्था में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका।
४. युवावस्था में ज्ञान प्राप्त कर लिया, किंतु स्त्री के मोह में पड़कर विषयासक्त होकर यौवन नष्ट कर दिया।
५. वृद्धावस्था में इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं अथवा कोई रोग लग गया जिससे अधमरा जैसा पड़ा रहा। भावार्थ यह है कि तीनों ही अवस्था में यह जीव इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी आत्मस्वरूप से अनभिज्ञ रहते हुए महान दुःखी रहा।

– देवगति के दुःख –

१. जब कभी यह जीव अकामनिर्जरा के प्रभाव से भवनवासी, व्यंतरवासी और ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुआ। तब वहाँ अपने से अधिक ऋद्धि वाले देवों का वैभव देखकर महान दुःखी हुआ।
२. आयु का अंत निकट आने पर मंदारमाला को मुरझाते देखकर तथा शरीर और आभूषणों की कांति क्षीण होते देखकर अपना मृत्युसमय निकट जानकर, अवधिज्ञान से ऐसा जानकर कि – ''हाय ! अब यह भोग मुझे नहीं मिलेंगे।'' ऐसा विचार कर बहुत विलाप करता है।
३. जब यह जीव वैमानिक देवों में उत्पन्न हुआ तो वहाँ भी सम्यग्दर्शन अर्थात् अतीन्द्रिय आनंद की अनुभूति के बिना दुःख उठाये।
४. वहाँ से मरकर (सम्यक्त्व के बिना) पृथ्वीकायिक आदि स्थावरों के शरीर धारण कर पुनः तिर्यंचगति में जा पहुँचा।

(ख) अंतर बताइए–

१. त्रस और स्थावर २. संज्ञी और असंज्ञी ३. चारों गतियों के दुःख और दुःखों का कारण समझाइये।

उत्तर – (उक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं खोजें)

दूसरी ढाल

पद्धरि छन्द १५ मात्रा

संसार (चतुर्गति) में परिभ्रमण का कारण

ऐसे मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्णवश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥ १॥

अन्वयार्थ :- [यह जीव] **(मिथ्या दृग-ज्ञान-चर्णवश)** मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश होकर **(ऐसे)** इस प्रकार **(जन्म-मर्ण)** जन्म और मरण के **(दुख)** दुःखों को **(भरत)** भोगता हुआ [चारों गतियों में] **(भ्रमत)** भटकता फिरता है। **(तातैं)** इसलिये **(इनको)** इन तीनों को **(सुजान)** भलीभाँति जानकर **(तजिये)** छोड़ देना चाहिये। [इसलिये] **(तिन)** इन तीनों का **(संक्षेप)** संक्षेप से **(कहूँ बखान)** वर्णन करता हूँ उसे **(सुन)** सुनो।

अगृहीत-मिथ्यादर्शन और जीवतत्त्व का लक्षण

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमांहि विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप॥ २॥

अन्वयार्थ :- **(जीवादि)** जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष **(प्रयोजनभूत)** प्रयोजनभूत **(तत्त्व)** तत्त्व हैं **(तिनमांहि)** उनमें **(विपर्ययत्व)** विपरीत **(सरधैं)** श्रद्धा करना [सो अगृहीत मिथ्यादर्शन है] **(चेतन को)** आत्मा का **(रूप)** स्वरूप **(उपयोग)** देखना-जानना अथवा दर्शन-ज्ञान **(है)** है [और वह] **(विनमूरत)** अमूर्तिक **(चिन्मूरत)** चैतन्यमय [तथा] **(अनूप)** उपमा रहित है।

जीवतत्त्व के विषय में मिथ्यात्व (विपरीत श्रद्धा)

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान॥ ३॥

अन्वयार्थ :- **(पुद्गल)** पुद्गल **(नभ)** आकाश **(धर्म)** धर्म **(अधर्म)** अधर्म **(काल)** काल **(इनतैं)** इनसे **(जीव चाल)** जीव का स्वभाव अथवा परिणाम **(न्यारी)** भिन्न **(है)** है; [तथापि मिथ्यादृष्टि जीव] **(ताको)** उस स्वभाव को **(न जान)** नहीं जानता और **(विपरीत)** विपरीत **(मान करि)** मानकर **(देह में)** शरीर में **(निज)** आत्मा की **(पिछान)** पहिचान **(करै)** करता है।

मिथ्यादृष्टि का शरीर तथा परवस्तुओं सम्बन्धी विचार

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण॥ ४॥

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शन के कारण से मानता है कि] **(मैं)** मैं **(सुखी)** सुखी **(दुखी)** दुःखी **(रंक)** निर्धन, **(राव)** राजा हूँ **(मेरे)** मेरे यहाँ **(धन)** रुपया-पैसा आदि **(गृह)** घर **(गोधन)** गाय, भैंस आदि **(प्रभाव)** बड़प्पन [है और] **(मेरे सुत)** मेरी संतान तथा **(तिय)** मेरी स्त्री है **(मैं)** मैं **(सबल)** बलवान **(दीन)** निर्बल **(बेरूप)** कुरूप **(सुभग)** सुन्दर **(मूरख)** मूर्ख और **(प्रवीण)** चतुर हूँ।

अजीव और आस्रवतत्त्व की विपरीत श्रद्धा

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव] **(तन)** शरीर के **(उपजत)** उत्पन्न होने से **(अपनी)** अपना आत्मा **(उपज)** उत्पन्न हुआ **(जान)** ऐसा मानता है [और] **(तन)** शरीर के **(नशत)** नाश होने से **(आपको)** आत्मा का **(नाश)** मरण हुआ ऐसा **(मान)** मानता है। **(रागादि)** राग, द्वेष, मोहादि **(ये)** जो **(प्रगट)** स्पष्ट रूप से **(दुःख दैन)** दुःख देने वाले हैं **(तिनही को)** उनका ही **(सेवत)** सेवन करता हुआ **(चैन)**सुख **(गिनत)** मानता है।

बन्ध और संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा

शुभ अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करै निजपद विसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्ट दान ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव] **(निजपद)** आत्मा के स्वरूप को **(विसार)** भूलकर **(बंध के)** कर्म बंध के **(शुभ)** अच्छे **(फल मंझार)** फल में **(रति)** प्रेम **(करै)** करता है [और कर्म बंध के] **(अशुभ)** बुरे फल से **(अरति)** द्वेष करता है [तथा जो] **(विराग)** राग-द्वेष का अभाव [अर्थात् अपने यथार्थ स्वभाव में स्थिरता रूप सम्यक्चारित्र और] **(ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान [और सम्यग्दर्शन] **(आतमहित)** आत्मा के हित के **(हेतु)** कारण हैं **(ते)** उन्हें **(आपको)** आत्मा को **(कष्टदान)** दुःख देने वाले **(लखै)** मानता है।

निर्जरा और मोक्ष की विपरीत श्रद्धा तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव] **(निज शक्ति)** अपनी आत्म शक्ति को **(खोय)** भूलकर **(चाह)** इच्छा को **(न रोके)** नहीं रोकता और **(निराकुलता)** आकुलता के अभाव को **(शिव रूप)** मोक्ष का स्वरूप **(न जोय)** नहीं मानता **(याही)** इस **(प्रतीतिजुत)** मिथ्या मान्यता सहित **(कछुक ज्ञान)** जो कुछ ज्ञान है **(सो)** वह **(दुखदायक)** कष्ट देने वाला **(अज्ञान)** अगृहीत मिथ्या ज्ञान है [ऐसा] **(जान)** समझना चाहिये।

अगृहीत मिथ्याचारित्र (कुचारित्र) का लक्षण

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानो मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत, सुनिये सु तेह ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ :- (जो) जो **(विषयनि में)** पाँच इन्द्रियों के विषयों में **(इन जुत)** अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञान सहित **(प्रवृत्त)** प्रवृत्ति करता है **(ताको)** उसे **(मिथ्याचरित्त)** अगृहीत मिथ्याचारित्र **(जानो)** समझो **(यों)** इस प्रकार **(निसर्ग जेह)** यह अगृहीत **(मिथ्यात्वादि)** मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का [वर्णन किया] **(अब)** अब **(जे)** जो **(गृहीत)** गृहीत [मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र] है **(सु तेह)** उसे **(सुनिये)** सुनो।

गृहीत मिथ्यादर्शन और कुगुरु के लक्षण

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शन मोह एव ।
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह ॥ ९ ॥

छंद १० (पूर्वार्द्ध)

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपलनाव ।

अन्वयार्थ :- (जो) जो **(कुगुरु)** मिथ्या गुरु की **(कुदेव)** मिथ्यादेव की और **(कुधर्म)** मिथ्या धर्म की **(सेव)** सेवा करता है, वह **(चिर)** अति दीर्घकाल तक **(दर्शनमोह)** मिथ्यादर्शन **(एव)** ही **(पोषैं)** पोषता है। **(जेह)** जो **(अंतर)** अंतर में **(रागादिक)** मिथ्यात्व राग द्वेष आदि **(धरैं)** धारण करता है और **(बाहर)** बाह्य में **(धन अम्बरतैं)** धन तथा वस्त्रादि से **(सनेह)** प्रेम रखता है तथा **(महत भाव)** महात्मापने का भाव **(लहि)** ग्रहण करके **(कुलिंग)** मिथ्यावेषों को **(धारैं)** धारण करता है वह **(कुगुरु)** कुगुरु कहलाता है और वह कुगुरु **(जन्मजल)** संसार रूपी समुद्र में **(उपलनाव)** पत्थर की नौका समान है।

छंद १० (उत्तरार्द्ध) कुदेव (मिथ्यादेव) का स्वरूप

जो राग द्वेष मलकरि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥ १० ॥

छंद ११ (पूर्वार्द्ध) कुदेव (मिथ्यादेव) का स्वरूप

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव ।

अन्वयार्थ :- (जो) जो **(राग द्वेष मलकरि मलीन)** राग द्वेष रूपी मैल से मलिन हैं और **(वनिता)** स्त्री **(गदादि जुत)** गदा आदि सहित **(चिह्न चीन)** चिन्हों से पहिचाने जाते हैं **(ते)** वे **(कुदेव)** झूठे देव **(हैं)** हैं **(तिनकी)** उन कुदेवों की **(जु)** जो **(शठ)** मूर्ख **(सेव करत)** सेवा करते हैं **(तिन)** उनका **(भवभ्रमण)** संसार में भ्रमण करना **(न छेव)** नहीं मिटता।

छंद ११ (उत्तरार्द्ध) कुधर्म और गृहीत मिथ्यादर्शन का संक्षिप्त लक्षण

रागादि भाव हिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत ॥ ११ ॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म ।
याकूं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ :- (रागादि भाव हिंसा) राग-द्वेष आदि भाव हिंसा **(समेत)** सहित तथा **(त्रस थावर)** त्रस और स्थावर **(मरण खेत)** मरण का स्थान **(दर्वित)** द्रव्य हिंसा **(समेत)** सहित **(जे)** जो **(क्रिया)** क्रियाएँ [हैं] **(तिन्हैं)** उन्हें **(कुधर्म)** मिथ्या धर्म **(जानहु)** जानना चाहिये। **(तिन)** उनकी **(सरधै)** श्रद्धा करने से **(जीव)** आत्मा-प्राणी **(लहै अशर्म)** दुःख पाते हैं। **(याकूं)** इन कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का श्रद्धान करने को **(गृहीत मिथ्यात्व)** गृहीत मिथ्यादर्शन **(जान)** जानना, **(अब गृहीत)** अब गृहीत **(अज्ञान)** मिथ्याज्ञान **(जो है)** जिसे कहा जाता है [उसका वर्णन] **(सुन)** सुनो।

गृहीत मिथ्याज्ञान का लक्षण

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त ।
रागी कुमतिनकृत श्रुताभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ :- (एकान्तवाद) एकान्तरूप कथन से **(दूषित)** मिथ्या [और] **(विषयादिक)** पाँच इन्द्रियों के विषय आदि की **(पोषक)** पुष्टि करने वाले **(रागी कुमतिनकृत)** रागी कुमति आदिकों के द्वारा रचे हुए **(अप्रशस्त)** मिथ्या **(समस्त)** समस्त **(श्रुताभ्यास)** शास्त्रों को **(अभ्यास)** पढ़ना-पढ़ाना, सुनना

और सुनाना **(सो)** वह **(कुबोध)** मिथ्याज्ञान [है; वह] **(बहु)** बहुत **(त्रास)** दुःख को **(देन)** देने वाला है।

गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञान हीन, जे जे करनी तन करन छीन ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ :- (जो) जो **(ख्याति)** प्रसिद्धि **(लाभ)** लाभ [तथा] **(पूजादि)** मान्यता और आदर सत्कार आदि की **(चाह धरि)** इच्छा करके **(देहदाह)** शरीर को कष्ट देने वाली **(आतम अनात्म के)** आत्मा और पर वस्तुओं के **(ज्ञान हीन)** भेदज्ञान से रहित **(तन)** शरीर को **(छीन)** क्षीण **(करन)** करने वाली **(विविध विध)** अनेक प्रकार की **(जे जे करनी)** जो-जो क्रियाएँ हैं [वे सब] **(मिथ्याचारित्र)** मिथ्याचारित्र हैं।

मिथ्याचारित्र के त्याग का तथा आत्म हित में लगने का उपदेश

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग।
जग जाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत ! निज आतम सुपाग ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ :- (ते) उस **(सब)** समस्त **(मिथ्याचारित्र)** मिथ्याचारित्र को **(त्याग)** छोड़कर **(अब)** अब **(आतम के)** आत्मा के **(हित)** कल्याण के **(पंथ)** मार्ग में **(लाग)** लग जाओ **(जग जाल)** संसार रूपी जाल में **(भ्रमण को)** भटकना **(देहु त्याग)** छोड़ दो **(दौलत)** हे दौलतराम ! **(निज आतम)** अपने आत्मा में **(अब)** अब **(सुपाग)** भलीभाँति लीन हो जाओ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर – संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न २ – मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीवादि पदार्थों का विपरीत श्रद्धान करना मिथ्यादर्शन कहलाता है।

प्रश्न ३ – मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को विपरीत जानता है उसे मिथ्याज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ४ – मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर – मिथ्यात्व के दो भेद हैं – अगृहीत मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व।

प्रश्न ५ – तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – ''तद्भावस्तत्त्वम्'' जिस वस्तु का जो भाव है वह तत्त्व है।

प्रश्न ६ – प्रयोजन भूत तत्त्व क्या है ?

उत्तर – जिन तत्त्वों के यथार्थ ज्ञान श्रद्धान के बिना कभी भी आकुलता नष्ट नहीं होती, उन्हें प्रयोजनभूत तत्त्व कहते हैं। प्र = प्रकृष्ट रूप से, युज = युक्त होना, जिस कार्य में हम प्रकृष्ट रूप से जुड़ते हैं वह प्रयोजन है। भूत = होना, तत् = उस वस्तु का, त्व = मौलिक स्वभाव। अर्थात् वस्तु के जिस मौलिक स्वभाव के यथार्थ ज्ञान श्रद्धान से वास्तविक सुख उत्पन्न होता है उसे प्रयोजन भूत तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न ७ – प्रयोजन भूत जीवादि तत्त्व कौन–कौन से हैं और इनके लक्षण क्या हैं ?

उत्तर – प्रयोजनभूत तत्त्व सात हैं – १. जीव २. अजीव ३. आस्रव ४. बंध ५. संवर ६. निर्जरा ७. मोक्ष।

जीव – जो चेतना लक्षण से युक्त है वह जीव कहलाता है। **अजीव –** जो चेतना लक्षण से रहित है वह अजीव कहलाता है। **आस्रव –** शुभ और अशुभ कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं। **बंध –** आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर एक क्षेत्रावगाह रूप मिल जाना बंध है। **संवर –** शुभ–अशुभ कर्मों का आना रुक जाना संवर है। **निर्जरा –** आत्मा से कर्मों का एकदेश क्षय हो जाना निर्जरा है। **मोक्ष –** समस्त कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है।

प्रश्न ८ – उपयोग किसे कहते हैं, उपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर – उपयोग जीव का लक्षण है। चैतन्य गुण से संबंध रखने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं अथवा जीव की ज्ञान दर्शन अर्थात् जानने देखने की शक्ति का व्यापार उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं – १. दर्शनोपयोग २. ज्ञानोपयोग।

प्रश्न ९ – दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो सामान्य सत्ता मात्र को ग्रहण करता है उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। यह निर्विकल्प और निराकार होता है।

प्रश्न १०– ज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – चेतना का जो परिणमन पदार्थों का स्व–पर की भिन्नता पूर्वक अवभासन करता है उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं। यह सविकल्प और साकार होता है।

प्रश्न ११– जीव तत्त्व के विषय में विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – शरीर में अपनी आत्मा की पहिचान करना, जीव को अजीव मानना जीव तत्त्व संबंधी विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १२– अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – शरीर आदि भिन्न पदार्थों में आत्मा की मान्यता करना, शरीरादि को अपना मानना अजीव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १३– मिथ्यादृष्टि जीव अपना जन्म–मरण कैसे मानता है ?

उत्तर – मिथ्यादृष्टि जीव शरीर के उत्पन्न होने पर अपना जन्म एवं शरीर का विनाश हो जाने पर अपना मरण मानता है।

प्रश्न १४– आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – राग – द्वेष आदि भाव जो दुःख देने वाले हैं उनको सुख देने वाला मानना यह आस्रव तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १५– अजीव तत्त्व के भेद कौन से हैं ?

उत्तर – पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये पाँच अजीव तत्त्व के भेद हैं।

प्रश्न १६– बंध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – यह जीव अपने आत्म स्वरूप को भूलकर शुभ कर्म का फल भोगने में राग तथा अशुभ कर्म

का फल भोगने में द्वेष करता है यह बन्ध तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १७– संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – वैराग्य और ज्ञान जो आत्मा के हितकारी कारण हैं उन्हें दुःखदायक मानना संवर तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १८– निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – आत्मा अपनी अनंत ज्ञानादि शक्तियों को भूलकर पराश्रय में सुख मानता है। शुभाशुभ इच्छा तथा पाँच इंद्रियों की चाह को नहीं रोकता है। यह निर्जरा तत्त्व का विपरीत श्रद्धान है।

प्रश्न १९– मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान क्या है ?

उत्तर – परिपूर्ण निराकुलतामय वास्तविक सुखरूप अवस्था मोक्ष दशा है। उसे नहीं जानने के कारण पंचेन्द्रिय विषय भोग संबंधी सुख को ही सुख मानना तथा मोक्ष दशा में भी इसी जाति के अनंत सुख की कल्पना करना मोक्ष तत्त्व संबंधी भूल है।

प्रश्न २०– कुधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन कार्यों को करने से राग–द्वेष उत्पन्न होते हैं, अपने और दूसरे के प्राणों को दुःख होता है तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा होती है उन्हें कुधर्म कहते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सत्य असत्य चुनिये –

(क) मैं सुखी हूँ, मैं गरीब हूँ, ये धन सम्पत्ति मेरे हैं, ये स्त्री–पुत्रादि मेरे हैं, ऐसी मान्यता। (<u>असत्य</u>/सत्य)

(ख) आत्मा जन्म और मरण करता है, शरीर का वियोग आत्मा का मरण है। (<u>असत्य</u>/सत्य)

(ग) परद्रव्य जीव को लाभ–हानि नहीं पहुंचा सकते हैं। (असत्य/<u>सत्य</u>)

(घ) अघातिया कर्म के फलानुसार पदार्थ की संयोग–वियोग रूप अवस्थायें होती हैं। तत्त्वदृष्टि से ऐसा निश्चय करके पुण्य कार्य करना चाहिये। (<u>असत्य</u>/सत्य)

(ङ) स्वरूप में लीनता रूप पूर्ण निराकुल आत्मिक सुख की प्राप्ति अर्थात् जीव की संपूर्ण शुद्ध दशा मोक्ष का स्वरूप है। (असत्य/<u>सत्य</u>)

प्रश्न २ – लघु उत्तरीय प्रश्न

(क) अजीव द्रव्य कौन से हैं ? उनसे कौन भिन्न है ?

उत्तर–'पुद्‌गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल' अर्थात् पुद्‌गल, आकाश, धर्म, अधर्म और काल– यह पाँच अजीव द्रव्य हैं। जीव त्रिकाल ज्ञानस्वरूप तथा पुद्‌गलादि द्रव्यों से पृथक् है।

(ख) अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर –अनादि मिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान के साथ पाँचों इन्द्रियों के जो विषय हैं,उनमें आचरण करना अगृहीत मिथ्याचारित्र है।

(ग) आत्मा और जीव में क्या अंतर है ?

उत्तर–आत्मा और जीव में कोई अंतर नहीं है, दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

(घ) गृहीत मिथ्याचारित्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर –जो अपनी ख्याति, लाभ, पूजा आदि की चाहपूर्वक शरीर को कष्ट देने वाली अनेक प्रकार की क्रियायें करते हैं, वह गृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(क) दूसरी ढाल का संक्षिप्त सारांश लिखिये।

उत्तर १–यह जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के वश होकर चार गतियों में परिभ्रमण करके प्रतिसमय अनन्त दुःख भोग रहा है। जब तक देहादि से भिन्न अपने आत्मा की सच्ची प्रतीति तथा रागादि का अभाव न करे तब तक सुख–शान्ति और आत्मा का हित नहीं हो सकता।

२ – आत्महित के लिये (सुखी होने के लिये) – १. सच्चे देव, गुरू और धर्म की यथार्थ प्रतीति, २. जीवादि सात तत्त्वों की यथार्थ प्रतीति, ३. स्व–पर के स्वरूप की श्रद्धा, ४. निज शुद्धात्मा के प्रतिभासरूप आत्मा की श्रद्धा, इन चार लक्षणों के अविनाभाव सहित सत्य श्रद्धा (निश्चय सम्यग्दर्शन) जब तक जीव प्रगट न करे तब तक उद्धार नहीं हो सकता अर्थात् धर्म का प्रारम्भ भी नहीं हो सकता और तब तक आत्मा को अंश मात्र भी सुख प्रगट नहीं होता।

३ – सात तत्त्वों की मिथ्या श्रद्धा करना उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं। अपने स्वतंत्र स्वरूप की भूल का कारण आत्मस्वरूप में विपरीत श्रद्धा होने से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म, शरीरादि नो कर्म, पुण्य–पाप, रागादि मलिन भावों में एकत्व बुद्धि है और इसीलिये शुभराग तथा पुण्य हितकर है, शरीरादि पर पदार्थों की अवस्था (क्रिया) मैं कर सकता हूँ , पर मुझे लाभ–हानि पहुंचा सकता है, तथा मैं पर का कुछ कर सकता हूँ – ऐसी मान्यता के कारण जीव को सत्–असत् का विवेक नहीं होता। सच्चा सुख तथा हितरूप श्रद्धा –ज्ञान–चारित्र अपने आत्मा के ही आश्रय से होते हैं इस बात की भी उसे खबर नहीं होती।

४ – पुनश्च, कुदेव, कुगुरू, कुशास्त्र और कुधर्म की श्रद्धा, पूजा, सेवा तथा विनय करने की जो प्रवृत्ति है वह अपने मिथ्यात्वादि महान दोषों का पोषण करने वाली होने से दुःखदायक है, अनंत संसार भ्रमण का कारण है। जो जीव उसका सेवन करता है, उसे कर्तव्य समझता है वह दुर्लभ मनुष्य जीवन को नष्ट करता है।

५ – अगृहीत मिथ्यादर्शन–ज्ञान–चारित्र जीव को अनादिकाल से होते हैं फिर मनुष्य होने के पश्चात् कुशास्त्र का अभ्यास करके कुगुरू का उपदेश स्वीकार करके गृहीत मिथ्याज्ञान–मिथ्या श्रद्धा धारण करता है। कुमति का अनुसरण करके मिथ्याक्रिया करता है वह गृहीत मिथ्याचारित्र है। इसलिये जीव को भली–भाँति सावधान होकर गृहीत तथा अगृहीत दोनों प्रकार के मिथ्याभाव छोड़ने योग्य हैं। उनका यथार्थ निर्णय करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिये। मिथ्याभावों का सेवन कर–करके, संसार में भटककर, अनंत जन्म धारण करके अनंत काल गवां दिया अब सावधान होकर आत्मोद्धार करना चाहिये ।

(ख) मिथ्यात्व क्या है ? विस्तार से बताकर सिद्ध करें कि आत्महित का पंथ निज आतम सुपाग है।

उत्तर–विपरीत मान्यता अर्थात् विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। जो वस्तु जैसी है,उसे वैसी न मानकर अन्य तरह से मानना, यह मिथ्या श्रद्धान है। आचार्यों ने मिथ्यात्व को दो तरह से

कहा है – १. अग्रहीत मिथ्यात्व २. ग्रहीत मिथ्यात्व।

१. **अग्रहीत मिथ्यात्व** – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष प्रयोजन भूत तत्त्व हैं उनमें विपरीत श्रद्धा करना अग्रहीत मिथ्यात्व है।

अग्रहीत का सामान्य अर्थ है – जो अनादि से जीव के साथ मिथ्या मान्यता चली आ रही है। शरीर व पर वस्तुओं में मैं पने का संबंध जोड़ना, शुभ–अशुभ भावों–कर्मों के उदय में हर्ष–विषाद आदि करके नये कर्मों का बंध करना। तप आदि से निर्जरा होती है उसे कष्ट दायक मानना। पूर्ण निराकुलता ही मोक्ष तत्त्व है उसे स्वीकार न करना अग्रहीत मिथ्यात्व है।

२. **ग्रहीत मिथ्यात्व** – मनुष्य भव पाकर कुगुरू, कुदेव, कुधर्म का सेवन करना ग्रहीत मिथ्यात्व है। जो मनुष्य ग्रहीत मिथ्यात्व का सेवन करता है, वह अपने दर्शन मोहनीय कर्म को पुष्ट करता है।

कविवर दौलतराम जी कहते हैं –

'' अब आतम के हित पंथ लाग '' अर्थात् आत्म हितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ग्रहण करके अग्रहीत मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र का त्याग करके आत्म कल्याण के मार्ग में लगना चाहिये। वे आगे कहते हैं – '' निज आतम सुपाग '' अर्थात् जीव को भलीभाँति सावधान होकर ग्रहीत तथा अग्रहीत दोनों प्रकार के मिथ्याभाव छोड़कर, उनका यथार्थ निर्णय कर निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिये। आत्मा में भलीभाँति लीन हो जाना चाहिये यही आत्म हित का पंथ है।

प्रश्न – (ग) किसी एक छंद को शुद्ध रूप से लिखकर उसकी व्याख्या कीजिये।

उत्तर – (उक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं खोजें)

तारण वाणी - अमृत सूत्र

- **आत्मा परमात्म तुल्यं।**
  आत्मा परमात्मा के समान है।
- **अप्पं च अप्प तारं।**
  अपना आत्मा ही स्वयं को तारने वाला है।
- **कम्म सहावं षिपनं।**
  कर्मो का स्वभाव क्षय होने का है।
- **विकहा अधर्म मूलस्य।**
  विकथायें (व्यर्थ चर्चायें) अधर्म की जड़ हैं।
- **पूजा पूज्य समाचरेत्।**
  पूज्य के समान आचरण होना सच्ची पूजा है।
- **जिनवयनं सद्दहनं।**
  जिनेन्द्र भगवान के वचनों पर श्रद्धा करो।
- **पण्डिय विवेय सुद्धं।**
  पंडित अर्थात् ज्ञानी वह है जो विवेक से (आत्म–अनात्म बोध से) शुद्ध होता है।
- **ममात्मा ममलं सुद्धं।**
  मेरा आत्मा ममल स्वभावी है।
- **कमलं कलंक रहियं।**
  कमल के समान ज्ञायक ज्ञान स्वभावी आत्मा सर्व कर्म मल रहित है।

तीसरी ढाल

नरेन्द्र छन्द (जोगीरासा)

आत्महित, सच्चा सुख तथा दो प्रकार से मोक्षमार्ग का कथन

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमांहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन शिव मग, सो द्विविध विचारो ।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥ १ ॥

अन्वयार्थ :- **(आतम को)** आत्मा का **(हित)** कल्याण **(है)** है **(सुख)** सुख की प्राप्ति **(सो सुख)** वह सुख **(आकुलता बिन)** आकुलता रहित **(कहिये)** कहा जाता है **(आकुलता)** आकुलता **(शिवमांहिं)** मोक्ष में **(न)** नहीं है **(तातैं)** इसलिये **(शिवमग)** मोक्ष मार्ग में **(लाग्यो)** लगना **(चहिये)** चाहिये । **(सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन)** सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों की एकता रूप **(शिवमग)** जो मोक्ष का मार्ग है **(सो)** उस मोक्ष मार्ग का **(द्विविध)** दो प्रकार से **(विचारो)** विचार करना चाहिये कि **(जो)** जो **(सत्यारथ रूप)** वास्तविक स्वरूप है **(सो)** वह **(निश्चय)** निश्चय मोक्ष मार्ग है और **(कारण)** जो निश्चय मोक्ष मार्ग का निमित्त कारण है **(सो)** उसे **(व्यवहारो)** व्यवहार मोक्ष मार्ग कहते हैं।

निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का स्वरूप

पर द्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है ।
आपरूप को जानपनों, सो सम्यग्ज्ञान कला है ॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई ।
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥ २ ॥

अन्वयार्थ :- **(आपमें)** आत्मा में **(पर द्रव्यनतैं)** पर वस्तुओं से **(भिन्न)** भिन्नत्व की **(रुचि)** श्रद्धा करना **(भला)** निश्चय **(सम्यक्त्व)** सम्यग्दर्शन **(है)** है **(आपरूप को)** आत्मा के स्वरूप को [पर द्रव्यों से भिन्न] **(जानपनों)** जानना **(सो)** वह **(सम्यग्ज्ञान)** निश्चय सम्यग्ज्ञान **(कला)** प्रकाश **(है)** है [पर द्रव्यों से भिन्न] ऐसे **(आपरूप में)** आत्म स्वरूप में **(थिर)** स्थिरता पूर्वक **(लीन रहे)** लीन होना सो **(सम्यक्चारित्र)** निश्चय सम्यक्चारित्र **(सोई)** है। **(अब)** अब **(व्यवहार मोक्षमग)** व्यवहार मोक्ष मार्ग **(सुनिये)** सुनो [कि जो व्यवहार मोक्ष मार्ग] **(नियत को)** निश्चय मोक्ष मार्ग का **(हेतु)** निमित्त कारण **(होई)** है।

व्यवहार सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) का स्वरूप

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दिढ़ प्रतीत उर आनो ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ :- **(जिन)** जिनेन्द्र परमात्मा ने **(जीव)** जीव **(अजीव)** अजीव **(आस्रव)** आस्रव **(बंध रु)** बंध और **(संवर)** संवर **(निर्जर)** निर्जरा **(अरु)** और **(मोक्ष)** मोक्ष **(तत्त्व)** यह सात तत्त्व **(कहे)**

कहे हैं **(जानो)** ऐसा जानो **(तिनको)** उन सबकी **(ज्यों का त्यों)** यथावत् यथार्थ रूप से **(सरधानो)** श्रद्धा करो **(सोई)** इस प्रकार श्रद्धा करना **(समकित व्यवहारी)** व्यवहार से सम्यग्दर्शन **(है)** है। **(अब इन रूप)** अब इन सात तत्त्वों के स्वरूप का **(बखानो)** वर्णन करते हैं **(तिनको)** उन्हें **(सामान्य विशेषैं)** संक्षेप से तथा विस्तार से **(सुन)** सुनकर **(उर)** मन में **(दिढ़)** अटल **(प्रतीत)** श्रद्धा **(आनो)** करो।

जीव के भेद, बहिरात्मा और उत्तम अंतरात्मा का लक्षण

बहिरातम अन्तर आतम परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिने बहिरातम तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध उपयोगी मुनि उत्तम निजध्यानी ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ :- **(बहिरातम)** बहिरात्मा **(अन्तर आतम)** अन्तरात्मा [और] **(परमातम)** परमात्मा [इस प्रकार] **(जीव)** जीव **(त्रिधा)** तीन प्रकार के **(है)** हैं [उनमें] **(देह जीव को)** शरीर और आत्मा को **(एक गिने)** एक मानते हैं वे **(बहिरातम)** बहिरात्मा हैं [और वे बहिरात्मा] **(तत्त्व मुधा)** यथार्थ तत्त्वों से अजान अर्थात् तत्त्व मूढ़ मिथ्यादृष्टि हैं। **(आतम ज्ञानी)** आत्मा को पर वस्तुओं से भिन्न जानकर यथार्थ निश्चय करने वाले **(अन्तर आतम)** अंतरात्मा [कहलाते हैं, वे] **(उत्तम)** उत्तम **(मध्यम)** मध्यम और **(जघन)** जघन्य ऐसे **(त्रिविध के)** तीन प्रकार के हैं; [उनमें] **(द्विविध)** अंतरंग तथा बहिरंग ऐसे दो प्रकार के **(संग बिन)** परिग्रह रहित **(शुध उपयोगी)** शुद्ध उपयोगी **(निज ध्यानी)** आत्म ध्यानी **(मुनि)** दिगम्बर मुनि **(उत्तम)** उत्तम अन्तरात्मा हैं।

मध्यम और जघन्य अन्तरात्मा तथा सकल परमात्मा

मध्यम अन्तर आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिवमग चारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविध तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहंत सकल परमातम लोकालोक निहारी ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ :- **(अनगारी)** छटवें गुणस्थान के समय अंतरंग और बहिरंग परिग्रह रहित यथाजातरूप धर-भावलिंगी मुनि मध्यम अंतरात्मा हैं तथा **(जे)** जो **(देशव्रती)** दो कषाय के अभाव सहित ऐसे पंचम गुणस्थान वर्ती सम्यक्दृष्टि श्रावक [हैं वे] **(मध्यम)** मध्यम **(अंतर आतम)** अंतरात्मा **(हैं)** हैं और **(अविरत)** व्रत रहित **(समदृष्टि)** सम्यक्दृष्टि जीव **(जघन)** जघन्य अंतरात्मा **(कहे)** कहलाते हैं **(तीनों)** यह तीनों **(शिवमग चारी)** मोक्षमार्ग पर चलने वाले हैं। **(सकल निकल)** सकल और निकल के भेद से **(परमातम)** परमात्मा **(द्वैविध)** दो प्रकार के हैं **(तिनमें)** उनमें **(घाति)** चार घातिया कर्मों को **(निवारी)** नाश करने वाले **(लोकालोक)** लोक तथा अलोक को **(निहारी)** जानने देखने वाले **(श्री अरिहंत)** अरिहंत परमेष्ठी **(सकल)** शरीर सहित **(परमातम)** परमात्मा हैं।

निकल परमात्मा का लक्षण तथा परमात्मा के ध्यान का उपदेश

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम भोगैं शर्म अनन्ता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजै ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :- (ज्ञान शरीरी) ज्ञान मात्र जिनका शरीर है ऐसे **(त्रिविध)** ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म, रागादि भाव कर्म तथा औदारिक शरीरादि नोकर्म, ऐसे तीन प्रकार के **(कर्म मल)** कर्म रूपी मैल से **(वर्जित)** रहित **(अमल)** निर्मल और **(महंता)** महान **(सिद्ध)** सिद्ध परमेष्ठी **(ते)** वे **(निकल)** निकल **(परमातम)** परमात्मा **(है)** हैं। वे **(अनन्ता)** अपरिमित **(शर्म)** सुख **(भोगैं)** भोगते हैं। इन तीनों में **(बहिरातमता)** बहिरात्मपने को **(हेय)** छोड़ने योग्य **(जानि)** जानकर और **(तजि)** उसे छोड़कर **(अंतरआतम)** अंतरात्मा **(हूजै)** होना चाहिये और **(निरंतर)** सदा **(परमातम को)** [निज] परमात्म पद का **(ध्याय)** ध्यान करना चाहिये **(जो)** जिसके द्वारा **(नित)** अर्थात् सदैव **(आनंद)** आनन्द **(पूजै)** प्राप्त किया जाता है।

अजीव-पुद्गल धर्म और अधर्म द्रव्य के लक्षण तथा भेद

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस, गंध दो फरस वसु जाके हैं ॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :- जो **(चेतनता बिन)** चेतनता रहित है **(सो)** वह **(अजीव)** अजीव है **(ताके)** उस अजीव के **(पंच भेद)** पाँच भेद हैं **(जाके पंच वरन रस गंध दो)** जिसके पाँच वर्ण और रस, दो गंध और **(वसु)** आठ **(फरस)** स्पर्श **(हैं)** होते हैं वह **(पुद्गल)** पुद्गल द्रव्य है। जो **(जिय)** जीव को [और]**(पुद्गल को)** पुद्गल को **(चलन सहाई)** चलने में निमित्त [और] **(अनरूपी)** अमूर्तिक है वह **(धर्म द्रव्य)** धर्म द्रव्य है। [तथा] **(तिष्ठत)** गति पूर्वक स्थिति परिणाम को प्राप्त [जीव और पुद्गल को] **(सहाई)** निमित्त **(होय)** होता है वह **(अधर्म)** अधर्म द्रव्य है। **(जिन)** जिनेन्द्र भगवान ने उस अधर्म द्रव्य को **(बिन मूर्ति)** अमूर्तिक **(निरूपी)** अरुपी कहा है।

आकाश, काल और आस्रव के लक्षण अथवा भेद

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ :- (जास में) जिसमें **(सकल)** समस्त **(द्रव्य को)** द्रव्यों का **(वास)** निवास है **(सो)** वह **(आकाश)** आकाश द्रव्य **(पिछानो)** जानना **(वर्तना)** स्वयं प्रवर्तित हो और दूसरों को प्रवर्तित होने में निमित्त हो वह **(नियत)** निश्चय काल द्रव्य है तथा **(निशदिन)** रात्रि, दिवस आदि **(व्यवहार काल)** व्यवहार काल **(परिमानो)** जानो **(यों)** इस प्रकार **(अजीव)** अजीव तत्त्व का वर्णन हुआ। **(अब)** अब **(आस्रव)** आस्रव तत्त्व **(सुनिये)** का वर्णन सुनो। **(मन वच काय)** मन, वचन और काय के आलम्बन से आत्मा के प्रदेश चंचल होने रूप **(त्रियोगा)** तीन प्रकार के योग [तथा] **(मिथ्या अविरत)** मिथ्यात्व, अविरत **(अरु)** और **(कषाय)** कषाय **(परमाद)** प्रमाद **(सहित)** सहित **(उपयोग)** आत्मा की प्रवृत्ति वह **(आस्रव)** आस्रव तत्त्व कहलाता है।

आस्रव त्याग का उपदेश और बंध, संवर, निर्जरा का लक्षण

ये ही आतम को दु:ख कारण, तातैं इनको तजिये ।
जीव प्रदेश बंधै विधि सों सो, बंधन कबहुं न सजिये ॥
शम दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये ।
तप बलतैं विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ :- **(ये ही)** मिथ्यात्वादि ही **(आतम को)** आत्मा को **(दु:ख कारण)** दु:ख के कारण हैं **(तातैं)** इसलिये **(इनको)** इन मिथ्यात्वादि को **(तजिये)** छोड़ देना चाहिये **(जीव प्रदेश)** आत्मा के प्रदेशों का **(विधि सों)** कर्मों से **(बंधै)** बंधना वह **(बंधन)** बंध [कहलाता] है **(सो)** वह [बंध] **(कबहुं)** कभी भी **(न सजिये)** नहीं करना चाहिये। **(शम)** कषायों का अभाव [और] **(दम तैं)** इन्द्रियों तथा मन को जीतने से **(जो)** जो **(कर्म)** कर्म **(न आवैं)** नहीं आयें वह **(संवर)** संवर तत्त्व है **(ताहि)** उस संवर को **(आदरिये)** ग्रहण करना चाहिये । **(तप बलतैं)** तप की शक्ति से **(विधि)** कर्मों का **(झरन)** एक देश खिर जाना सो **(निर्जरा)** निर्जरा है **(ताहि)** उस निर्जरा को **(सदा)** सदैव **(आचरिये)** आचरण करना चाहिये ।

मोक्ष का लक्षण, व्यवहार सम्यक्त्व का लक्षण तथा कारण

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।
इहि विध जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट अंग जुत धारो ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :- **(सकल कर्मतैं)** समस्त कर्मों से **(रहित)** रहित **(थिर)** स्थिर, अटल **(सुखकारी)** अनन्त सुखदायक **(अवस्था)** दशा, पर्याय **(सो)** वह **(शिव)** मोक्ष है **(इहि विध)** इस प्रकार **(जो)** जो **(तत्त्वन की)** सात तत्त्वों के भेद सहित **(सरधा)** श्रद्धा करना सो **(व्यवहारी)** व्यवहार **(समकित)** सम्यग्दर्शन है । **(जिनेन्द्र)** वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी **(देव)** सच्चे देव **(परिग्रह बिन)** चौबीस परिग्रह से रहित **(गुरु)** वीतराग गुरु [तथा] **(सारो)** सारभूत **(दयाजुत)** अहिंसामय **(धर्म)** जिन धर्म **(येहु)** इन सबको **(समकित को)** सम्यग्दर्शन का **(कारण)** निमित्त कारण **(मान)** जानना चाहिये । सम्यग्दर्शन को उसके **(अष्ट)** आठ **(अंग जुत)** अंगों सहित **(धारो)** धारण करना चाहिये ।

सम्यक्त्व के पच्चीस दोष तथा आठ गुण

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो ।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपै कहिये ।
बिन जाने तैं दोष गुननकों, कैसे तजिये गहिये ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ :- **(वसु)** आठ **(मद)** मद का **(टारि)** त्याग करके **(त्रिशठता)** तीन प्रकार की मूढ़ता को **(निवारि)** हटाकर **(षट्)** छह **(अनायतन)** अनायतनों का **(त्यागो)** त्याग करना चाहिये। **(शंकादिक)** शंकादि **(वसु)** आठ **(दोष बिना)** दोषों से रहित होकर **(संवेगादिक)** संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम में **(चित)** चित्त को **(पागो)** लगाना चाहिये। [अब, सम्यक्त्व के] **(अष्ट)** आठ **(अंग)** अंग **(अरु)** और **(पचीसों दोष)** पच्चीस दोष **(तिन)**उनको **(संक्षेपै)** संक्षेप में **(कहिये)** कहा जाता है। [क्योंकि]

(बिन जाने तैं) उन्हें जाने बिना **(दोष)** दोषों को **(कैसे)** किस प्रकार **(तजिये)** छोड़ें [और] **(गुननकों)** गुणों को किस प्रकार **(गहिये)** ग्रहण करें।

सम्यक्त्व के आठ अंग (गुण) और शंकादिक आठ दोषों का लक्षण

जिन वच में शंका न धार वृष, भव सुख वांछा भानै ।
मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
निज गुण अरु पर औगुण ढांके, वा निज धर्म बढ़ावै ।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज पर को सु दिढ़ावै ॥ १२ ॥

छंद १३ पूर्वार्द्ध

धर्मी सों गौ वच्छ प्रीति सम, कर जिन धर्म दिपावै ।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ॥

अन्वयार्थ :- **१. (जिन वच में)** सर्वज्ञ देव के कहे हुए तत्त्वों में **(शंका न)** संशय-संदेह नहीं करना [सो निःशंकित अंग है] २. **(वृष)** धर्म को **(धार)** धारण करके **(भव सुख वांछा)** सांसारिक सुखों की इच्छा **(भानै)** न करे [सो निःकांक्षित अंग है] ३. **(मुनि तन)** मुनियों के शरीरादि **(मलिन)** मैले **(देख)** देखकर **(न घिनावै)** घृणा न करे [सो निर्विचिकित्सा अंग है] ४. **(तत्त्व कुतत्त्व)** सच्चे और झूठे तत्त्वों को [यथार्थतया] **(पिछानै)** पहिचाने [सो अमूढ़दृष्टि अंग है] ५. **(निज गुण)** अपने गुणों को **(अरु)** और **(पर औगुण)** दूसरे के औगुणों को **(ढांके)** छिपाये **(वा)** तथा **(निज धर्म)** अपने आत्म धर्म को **(बढ़ावै)** बढ़ाये अर्थात् निर्मल बनाए [सो उपगूहन अंग है] ६. **(कामादिक कर)** काम विकारादि के कारण **(वृषतैं)** धर्म से **(चिगते)** च्युत होते हुए **(निज पर को)** अपने को तथा पर को **(सु दिढ़ावै)** उसमें पुनः दृढ़ करे [सो स्थितिकरण अंग है] ७. **(धर्मी सों)** अपने साधर्मीजनों से **(गौ वच्छ प्रीति सम)** बछड़े पर गाय की प्रीति समान **(कर)** प्रेम रखना [सो वात्सल्य अंग है और] ८. **(जिन धर्म)** जिन धर्म की **(दिपावै)** शोभा में वृद्धि करना [सो प्रभावना अंग है] **(इन गुणतैं)** इन [आठ] गुणों से **(विपरीत)** उल्टे **(वसु)** आठ **(दोष)** दोष हैं, **(तिनको)** उन्हें **(सतत)** हमेशा **(खिपावै)** दूर करना चाहिये।

छंद १३ उत्तरार्द्ध मद के आठ प्रकार

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तौ मद ठानै ।
मद न रूप कौ मद न ज्ञान कौ, धन बल कौ मद भानै ॥ १३ ॥

छंद १४ पूर्वार्द्ध

तप कौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै ।
मद धारै तौ यही दोष वसु, समकित कौ मल ठानै ॥

अन्वयार्थ :- [जो जीव] **(जो)** यदि **(पिता)** पिता आदि पितृपक्ष के स्वजन **(भूप)** राजादि **(होय)** हों **(तौ)** तो **(मद)** अभिमान **(न ठानै)** नहीं करता [यदि] **(मातुल)** मामा आदि मातृपक्ष के स्वजन **(नृप)** राजादि **(होय)** हों तो **(मद)** अभिमान **(न)** नहीं करता **(रूप कौ)** शारीरिक सौंदर्य का **(मद न)** अभिमान नहीं करता **(ज्ञान कौ)** विद्या का अभिमान नहीं करता **(धन कौ)** लक्ष्मी का **(बलकौ)** शक्ति का **(मद भानै)** अभिमान नहीं करता **(तप कौ)** तप का **(मद न)** अभिमान नहीं करता **(जु)** और **(प्रभुता कौ)** ऐश्वर्य-बड़प्पन का **(मद न करै)** अभिमान नहीं करता **(सो)** वह **(निज)** अपने आत्मा

को **(जानै)** जानता है। [यदि जीव उनका] **(मद)** अभिमान **(धारै)** रखता है तो **(यही)** ऊपर कहे हुए मद **(वसु)** आठ **(दोष)** दोष रूप होकर **(समकित कौ)** सम्यक्त्व को–सम्यग्दर्शन को **(मल)** दूषित **(ठानै)** करता है।

छंद १४ उत्तरार्द्ध

छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता दोष

कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है ।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ :– [सम्यक्दृष्टि जीव] **(कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की)** कुगुरु कुदेव और कुधर्म की तथा उनके सेवक की **(प्रशंस)** प्रशंसा **(नहिं उचरै है)** नहीं करता है। **(जिन)** जिनेन्द्र देव **(मुनि)** वीतरागी मुनि [और] **(जिन श्रुत)** जिनवाणी **(बिन)** के अतिरिक्त [जो] **(कुगुरादिक)** कुगुरु कुदेव कुधर्म हैं **(तिन्हें)** उन्हें **(नमन)** नमस्कार **(न करै है)** नहीं करता है।

अव्रती सम्यक्दृष्टि की देवों द्वारा पूजा और गृहस्थपने में अप्रीति

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजै हैं ।
चरितमोह वश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं ॥
गेही पै गृह में न रचैं ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है ।
नगर नारिको प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ :– **(जे)** जो **(सुधी)** बुद्धिमान पुरुष [ऊपर कहे हुए] **(दोषरहित)** पच्चीस दोष रहित [तथा] **(गुणसहित)** नि:शंकितादि आठ गुणों सहित **(सम्यक्दरश)** सम्यग्दर्शन से **(सजै हैं)** भूषित हैं [उन्हें] **(चरितमोह वश)** अप्रत्याख्यानावरणीय चारित्रमोहनीय कर्म के उदय वश **(लेश)** किंचित् भी **(संजम)** संयम **(न)** नहीं है **(पै)** तथापि **(सुरनाथ)** देवों के स्वामी इन्द्र [उनकी] **(जजै हैं)** पूजा करते हैं [यद्यपि वे] **(गेही)** गृहस्थ हैं **(पै)** तथापि **(गृह में)** घर में **(न रचैं)** नहीं राचते। **(ज्यों)** जिस प्रकार **(कमल)** कमल **(जलतैं)** जल से **(भिन्न)** भिन्न **(है)** है [तथा] **(यथा)** जिस प्रकार **(कादे में)** कीचड़ में **(हेम)** स्वर्ण **(अमल है)** शुद्ध रहता है [उसी प्रकार उसका घर में] **(नगर नारिकौ)** वेश्या के **(प्यार यथा)** प्रेम की भाँति प्रेम [होता है]।

सम्यक्त्व की महिमा, सम्यक्दृष्टि के अनुत्पत्ति स्थान तथा सर्वोत्तम सुख और सर्व धर्म का मूल

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी ।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी ॥
तीन लोक तिहुँकाल माँहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी ।
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ :– **(सम्यक्धारी)** सम्यक्दृष्टि जीव **(प्रथम नरक बिन)** पहले नरक के अतिरिक्त **(षट् भू)** शेष छह नरकों में, **(ज्योतिष)** ज्योतिषी देवों में, **(वान)** व्यंतर देवों में, **(भवन)** भवनवासी देवों में **(षंड)** नपुंसकों में, **(नारी)** स्त्रियों में, **(थावर)** पाँच स्थावरों में, **(विकलत्रय)** द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में तथा **(पशु में)** कर्मभूमि के पशुओं में **(नहिं उपजत)** उत्पन्न नहीं होते। **(तीन लोक)** तीन लोक **(तिहुँकाल माँहिं)** तीन काल में **(दर्शन सो)** सम्यग्दर्शन के समान **(सुखकारी)** सुखदायक **(नहिं)** अन्य कुछ नहीं है, **(यही)** यह सम्यग्दर्शन ही **(सकल धर्म)** समस्त धर्मों **(को)** का

(मूल) मूल है **(इस बिन)** इस सम्यग्दर्शन के बिना **(करनी)** समस्त क्रियाएँ **(दुखकारी)** दु:खदायक हैं।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापना

मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा ।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
''दौल'' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ :– [यह सम्यग्दर्शन] **(मोक्ष महल की)** मोक्ष रूपी महल की **(परथम)** प्रथम **(सीढ़ी)** सीढ़ी है **(या बिन)** इस सम्यग्दर्शन के बिना **(ज्ञान चरित्रा)** ज्ञान और चारित्र **(सम्यक्ता)** सच्चाई **(न लहै)** प्राप्त नहीं करते इसलिये **(भव्य)** हे भव्य जीवो ! **(सो)** ऐसे **(पवित्रा)** पवित्र **(दर्शन)** सम्यग्दर्शन को **(धारो)** धारण करो । **(सयाने दौल)** हे समझदार दौलतराम ! **(सुन)** सुन **(समझ)** समझ और **(चेत)** सावधान हो **(काल)** समय को **(वृथा)** व्यर्थ **(मत खोवै)** न गँवा [क्योंकि] **(जो)** यदि **(सम्यक्)** सम्यग्दर्शन **(नहिं होवै)** नहीं हुआ तो **(यह)** यह **(नरभव)** मनुष्य पर्याय **(फिर)** पुन: **(मिलन)** मिलना **(कठिन है)** दुर्लभ है ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – आत्मा का हित किसमें है ?
उत्तर – आत्मा का हित सुख प्राप्त करने में है।

प्रश्न २ – सुख कैसा होता है ?
उत्तर – सुख आकुलता से रहित होता है।

प्रश्न ३ – आकुलता कहाँ पर नहीं है ?
उत्तर – आकुलता मोक्ष में नहीं है।

प्रश्न ४ – सुख प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये ?
उत्तर – सुख प्राप्त करने के लिये मोक्ष मार्ग में लगना चाहिये।

प्रश्न ५ – मोक्ष का मार्ग क्या है ?
उत्तर – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता ही मोक्ष का मार्ग है।

प्रश्न ६ – मोक्ष मार्ग का कथन कितने प्रकार से किया गया है ?
उत्तर – मोक्ष मार्ग का कथन दो प्रकार से किया गया है –
१. निश्चय मोक्ष मार्ग   २. व्यवहार मोक्ष मार्ग।

प्रश्न ७ – निश्चय मोक्ष मार्ग किसे कहते हैं ?
उत्तर – अपने ज्ञायक स्वभाव के आश्रय पूर्वक अंतर में अभेद निश्चय रत्नत्रय (मोक्षमार्ग) को प्रगट करने को निश्चय मोक्ष मार्ग कहते हैं।

प्रश्न ८ – व्यवहार मोक्ष मार्ग किसे कहते हैं ?
उत्तर – जो निश्चय मोक्षमार्ग में कारणभूत है उसे व्यवहार मोक्ष मार्ग कहते हैं।

प्रश्न ९ – नय किसे कहते हैं ?
उत्तर – प्रमाण द्वारा जानी हुई वस्तु के एक अंश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

प्रश्न १०– नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – नय के दो भेद हैं –१. निश्चयनय २. व्यवहारनय।

प्रश्न ११– निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उत्तर – निश्चय शब्द निः और चय से मिलकर बना है। निः = निःशेष रूप से/नियम रूप से/निश्चित रूप से चय = संग्रह करना/इकट्ठा करना/ग्रहण करना अर्थात् वस्तु के मूल स्वरूप को/यथार्थ अंश को/भूतार्थ अंश को जानने वाले ज्ञान या कहने वाले शब्द को निश्चय नय कहते हैं।

प्रश्न १२– व्यवहार नय किसे कहते हैं ?

उत्तर – व्यवहार शब्द वि और अवहार – इन दो शब्दों से मिलकर बना है। वि = विशेष रूप से, अवहार = ज्ञान कराने वाला। अर्थात् वस्तु के जिस अंश की मुख्यता से वस्तु का विशेष ज्ञान होता है उसे जानने वाले या कहने वाले शब्दों को व्यवहार नय कहते हैं।

प्रश्न १३– निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्म स्वरूप का श्रद्धान करना निश्चय सम्यग्दर्शन है।

प्रश्न १४– निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्म स्वरूप को जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है।

प्रश्न १५– निश्चय सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – पर द्रव्यों से भिन्न अपने आत्म स्वरूप में स्थिरतापूर्वक लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है।

प्रश्न १६– रत्नत्रय किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं।

प्रश्न १७– व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीवादि सात तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न १८– उत्पत्ति की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के कितने भेद हैं ?

उत्तर – उत्पत्ति की अपेक्षा सम्यग्दर्शन के २ भेद हैं – १. निसर्गज २. अधिगमज।

१. निसर्गज – दूसरों के उपदेश के बिना स्वयमेव ही दर्शन मोहनीय के उपशम, क्षय या क्षयोपशम पूर्वक परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की प्रतीति होती है उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

२. अधिगमज – जो परोपदेश के निमित्त पूर्वक दर्शन मोहनीय के उपशमादि होते हैं तथा आत्मप्रतीति होती है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न १९– दर्शन मोह और चारित्र मोह किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान न होने दे उसे दर्शन मोह कहते हैं और जो चारित्र का घात करे उसे चारित्र मोह कहते हैं।

प्रश्न २०– सम्पूर्ण धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन सब धर्मों का मूल है, इसके बिना जो भी क्रियायें हैं वे सब दुःख देने वाली हैं।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(क) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये।

१. सम्यग्दर्शन ज्ञान चरन ------- सो द्विविध विचारो। (शिवमग)

२. आत्मा में पर वस्तुओं से भिन्नत्व की श्रद्धा करना सो ------- सम्यग्दर्शन है। (निश्चय)

३. देह जीव को एक गिने ------- तत्त्व मुधा है। (बहिरातम)

४. मध्यम अन्तर आतम हैं जे देशव्रती -------। (अनगारी)

५. धर्म को धारण करके सांसारिक सुखों की इच्छा न करना उसे ------- कहते हैं। (निःकांक्षित अंग)

(ख) सही जोड़ी बनाइये –

(अ)	(ब)	सही उत्तर
१. शंका	जिनधर्म का विरोध	८
२. कांक्षा	साधर्मीजनों से विरोध/द्वेष	७
३. चिकित्सा	धर्म से दूर रखना/रहना	६
४. मूढ़दृष्टि	गुणों का प्रकाशन, अवगुणों को छिपाना	५
५. अनुपगूहन	सांसारिक सुख की इच्छा	२
६. अस्थितिकरण	जिनवचनों में संदेह	१
७. अवात्सल्य	साधुओं के प्रति घृणा	३
८. अप्रभावना	सत्य और झूठे तत्त्वों में अविवेक	४

प्रश्न २ – लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) गुणस्थान के विषय में लिखिये।

उत्तर – मोह और योग के निमित्त से जीव के श्रद्धा और चारित्र गुण की होने वाली तारतम्य रूप अवस्था को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान १४ होते हैं – १. मिथ्यात्व, २. सासादन, ३. मिश्र (सम्यक्‌मिथ्यात्व), ४. अविरत सम्यक्त्व, ५. देश विरत, ६. प्रमत्त विरत, ७. अप्रमत्त विरत, ८. अपूर्वकरण, ९. अनिवृत्ति करण, १०. सूक्ष्म साम्पराय, ११. उपशांत मोह, १२. क्षीण मोह, १३. सयोग केवली, १४. अयोग केवली।

(ख) गुण किसे कहते हैं, गुण के कितने भेद हैं स्वरूप सहित बताइए ?

उत्तर – जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में और उसकी संपूर्ण अवस्थाओं में रहता है उसे गुण कहते हैं। गुण के दो भेद हैं – सामान्य गुण और विशेष गुण।

(१) सामान्य गुण – जो सब द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं उन्हें सामान्य गुण कहते हैं। सामान्य गुण अनन्त हैं; किन्तु उनमें छह गुण मुख्य हैं – १. अस्तित्व, २. वस्तुत्व, ३. द्रव्यत्व, ४. प्रमेयत्व, ५. अगुरुलघुत्व, ६. प्रदेशत्व।

(२) विशेष गुण – जो सब द्रव्यों में न रहकर अपने–अपने द्रव्यों में रहते हैं उन्हें विशेष गुण कहते हैं। जैसे – जीव में चैतन्य, सम्यक्त्व, चारित्र, सुख, क्रियावती शक्ति आदि। पुद्‌गल

में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, क्रियावती शक्ति आदि। धर्म द्रव्य में गति हेतुत्व। अधर्म द्रव्य में स्थिति हेतुत्व। आकाश द्रव्य में अवगाहन हेतुत्व। काल द्रव्य में परिणमन हेतुत्व इत्यादि विशेष गुण हैं।

(ग) ''मोक्षमहल की परथम सीढ़ी'' पंक्ति का भावार्थ लिखें।

उत्तर – सम्यग्दर्शन मोक्ष महल की प्रथम सीढ़ी है, जिसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो तब तक ज्ञान, मिथ्याज्ञान होता है और चारित्र मिथ्याचारित्र होता है। अतः प्रत्येक आत्मार्थी को मनुष्य जीवन रूपी अमूल्य निधि पाकर सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये ऐसा छहढाला की तीसरी ढाल के सत्रहवें छंद का भावार्थ है।

प्रश्न ३ – दीर्घउत्तरीय प्रश्न –

(क) टिप्पणी लिखिये –

१. हेय–ज्ञेय–उपादेय – छोड़ने योग्य को हेय कहते हैं, जानने योग्य को ज्ञेय कहते हैं और ग्रहण करने योग्य को उपादेय कहते हैं। सात तत्त्वों की जानकारी के बिना हेय उपादेय करना उचित नहीं है। ज्ञेय तो सातों ही तत्त्व हैं। उनमें से जीव तत्त्व के आश्रय से संपूर्ण दुःखों का अंत होकर परिपूर्ण सुखमय दशा प्रगट होती है। अतः यह ज्ञेय के साथ–साथ एकमात्र आश्रय योग्य परम उपादेय भी है। अजीव तत्त्व स्वयं के लिये सुख दुःखमय नहीं होने से वह न स्वयं हेय है और न उपादेय अपितु मात्र ज्ञेय है। आस्रव, बंध, पुण्य, पाप स्वयं पूर्णतया दुःखमय होने के कारण सर्वथा हेय ही हैं। संवर और निर्जरा तत्त्व सुख का कारण होने से प्रगट करने की अपेक्षा एकदेश उपादेय हैं। मोक्ष तत्त्व पूर्ण सुखमय होने से प्रगट करने की अपेक्षा पूर्ण उपादेय है। इस प्रकार अजीव तत्त्व मात्र– ज्ञेय। आस्रव, बंध– हेय। संवर, निर्जरा – एकदेश उपादेय हैं। मोक्ष की शुद्धावस्था प्रगट करने की अपेक्षा सर्वदेश उपादेय है। जीव स्वभाव से पूर्ण उपादेय है।

(२) जीव के भेद–प्रभेद –

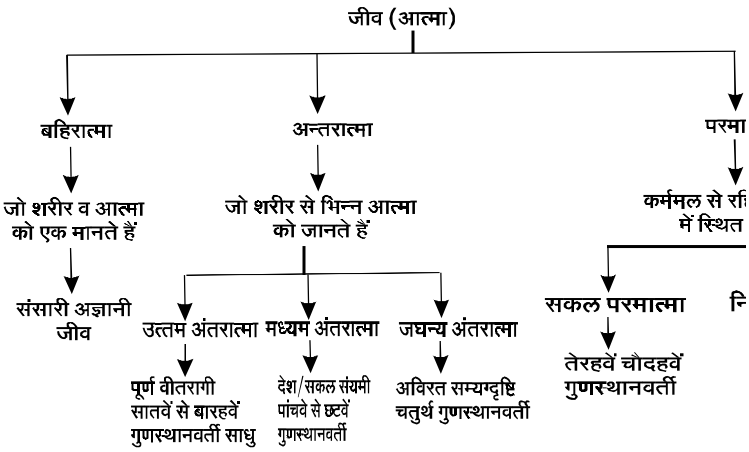

(३) कर्म के भेद–प्रभेद –

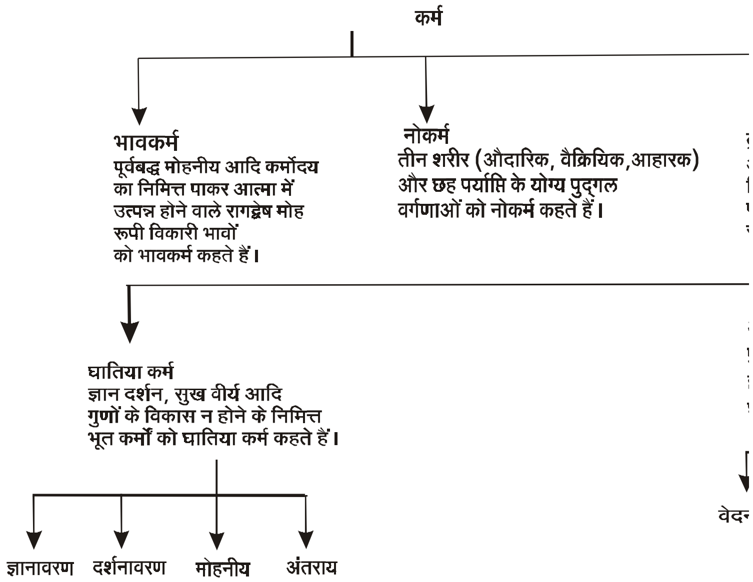

(४) द्रव्य – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य अनंत वैभव संपन्न है। अनंत वैभव संपन्न होने से द्रव्यों को दूसरे के सहयोग की रंच मात्र भी अपेक्षा नहीं है अतः वे स्वाधीन, स्वतंत्र, पर–से पूर्ण निरपेक्ष, परिपूर्ण सत्ता वाले हैं।

जाति अपेक्षा द्रव्य छह हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। संख्या अपेक्षा – जीव अनंत हैं, पुद्गल अनंतानंत हैं। धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य एक–एक और कालद्रव्य लोक प्रमाण असंख्यात हैं, इस प्रकार कुल अनंतानंत द्रव्य हैं।

छह द्रव्यों का स्वरूप इस प्रकार है –

१. जीव द्रव्य– जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान दर्शन रूप शक्ति हो उसे जीव द्रव्य कहते हैं।

२. पुद्गल द्रव्य – जिस द्रव्य में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि गुण पाये जायें उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं। पुद्गल = पुद् + गल। पुद् = जुड़ना, गल = बिछुड़ना अर्थात् जिसका जुड़ना (मिलना) और बिछुड़ना (अलग होना) स्वभाव हो वह पुद्गल है, यह रूपी द्रव्य है।

३. धर्म द्रव्य – जो स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को गमन करने में सहकारी हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे चलती हुई मछली को चलने में जल सहकारी है। यह गति हेतुत्व है।

४. अधर्म द्रव्य – जो स्वयं गति पूर्वक ठहरते हुए जीव और पुद्गलों को ठहरने में निमित्त होता है उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे–चलते हुए पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया। यह स्थिति हेतुत्व है।

५. आकाश द्रव्य – जो जीवादि पांच द्रव्यों को स्थान देने में निमित्त होता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। यह अवगाहन हेतुत्व है।

६. काल द्रव्य – अपनी–अपनी अवस्था रूप स्वयं परिणमित होने वाले जीवादि द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त होता है उसे काल द्रव्य कहते हैं। यह परिणमन हेतुत्व है। जैसे – कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

(ख) – तीसरी ढाल का सारांश लिखिये।

उत्तर – आत्मा का हित सुख प्राप्त करने में है। आकुलता का मिट जाना सच्चा सुख है। मोक्ष सुख स्वरूप है। इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करना चाहिये। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों की एकता मोक्षमार्ग है, उसका कथन दो प्रकार से किया गया है। निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तो वास्तव में मोक्षमार्ग है, और व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र वह मोक्षमार्ग नहीं है अपितु बंधमार्ग है लेकिन निश्चयमोक्षमार्ग में सहकारी होने से उसे व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है।

आत्मा की परद्रव्यों से भिन्नता का यथार्थ श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है। परद्रव्यों से भिन्नता का यथार्थ ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान है और परद्रव्यों का आलंबन छोड़कर आत्मस्वरूप में लीन होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। सात तत्त्वों का यथावत् भेदरूप अटल श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है। यद्यपि सात तत्त्वों के भेद की अटल श्रद्धा शुभराग होने से वास्तव में सम्यग्दर्शन नहीं है किन्तु निचली दशा में अर्थात् चौथे, पांचवें और छटवें गुणस्थान में निश्चय सम्यक्त्व के साथ सहचर होने से वह व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और शंकादि आठ दोष यह सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं। निःशंकितादि सम्यक्त्व के आठ अंग (गुण) हैं। उन्हें भलीभाँति जानकर दोषों का त्याग तथा गुणों को ग्रहण करना चाहिये। जो विवेकवान जीव निश्चय सम्यक्त्व को धारण करता है, उसे जब तक निर्बलता है तब तक पुरुषार्थ की मंदता के कारण यद्यपि किंचित् संयम नहीं होता तथापि वह इन्द्रादि के द्वारा पूजा जाता है। तीन लोक और तीन काल में निश्चय सम्यक्त्व के समान कोई भी अन्य वस्तु सुखकारी नहीं है। सब धर्मों का मूल, सार तथा मोक्षमार्ग की प्रथम सीढ़ी यह सम्यक्त्व ही है। उसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते इसलिये मिथ्या कहलाते हैं।

आयु का बंध होने से पूर्व सम्यक्त्व धारण करने वाला जीव मृत्यु के पश्चात् दूसरे भव में नारकी, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, नपुंसक, स्त्री, स्थावर, विकलत्रय, पशु, हीन अंग, नीच गोत्रवाला, अल्पायु तथा दरिद्री नहीं होता। सम्यक्दृष्टि मनुष्य और तिर्यंच मरकर वैमानिक देव होते हैं। देव और नारकी सम्यक्दृष्टि मरकर कर्मभूमि में उत्तम क्षेत्र में मनुष्य ही होता है। यदि सम्यग्दर्शन होने से पूर्व – १. देव, २. मनुष्य, ३. तिर्यंच या ४. नरकायु का बंध हो गया हो तो वह मरकर – १. वैमानिक देव २. भोगभूमि का मनुष्य ३. भोगभूमि का तिर्यंच अथवा ४. प्रथम नरक का नारकी होता है। इससे अधिक नीचे के स्थान में जन्म नहीं होता। इस प्रकार निश्चय सम्यग्दर्शन की अपार महिमा है।

इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को सत्शास्त्रों का स्वाध्याय, तत्त्वचर्चा, सत्समागम तथा यथार्थ तत्त्वविचार द्वारा निश्चय सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये। क्योंकि यदि इस मनुष्य भव में निश्चय सम्यक्त्व प्रगट नहीं किया तो पुनः मनुष्य पर्याय आदि सुयोग का मिलना कठिन है।

छह द्रव्यों के स्वरूप का विस्तृत चार्ट

क्र.	विषय	जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
१	नाम	जीवद्रव्य	पुद्गलद्रव्य	धर्मद्रव्य	अधर्मद्रव्य	आकाशद्रव्य	कालद्रव्य
२	लक्षण	ज्ञान–दर्शन	स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण	गति हेतुत्व	स्थिति हेतुत्व	अवगाहन हेतुत्व	परिणमन हेतुत्व
३	संख्या	अनन्त	अनन्तानन्त	एक	एक	एक	लोकप्रमाण असं.
४	प्रदेश संख्या	असंख्यातप्रदेशी	संख्यात असंख्यात अनंतप्रदेशी	असंख्यातप्रदेशी	असंख्यातप्रदेशी	अनन्तप्रदेशी	एकप्रदेशी
	(माप)		परमाणु अपेक्षा – एकप्रदेशी				
५	काय	अस्तिकाय	अस्तिकाय	अस्तिकाय	अस्तिकाय	अस्तिकाय	अस्ति काय नहीं
६	भेद	संसारी और मुक्त	परमाणु और स्कन्ध	–	–	लोकाकाश और अलोकाकाश	निश्चयकाल व्यवहारकाल
७	सामान्य गुण	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि	अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि
८	विशेष गुण	ज्ञान, दर्शन आदि	स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण आदि	गति हेतुत्व आदि	स्थिति हेतुत्व आदि	अवगाहन हेतुत्व आदि	परिणमन हेतुत्व
९	पर्यायें	एक व्यञ्जन पर्याय और अनन्त अर्थ पर्यायें।	एक व्यञ्जन और अनन्त अर्थ पर्यायें (स्कन्ध अपेक्षा) और प्रत्येक परमाणु में एक स्वभाव व्यञ्जन और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्यायें।	एक स्वभाव व्यञ्जन और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्यायें।	एक स्वभाव व्यञ्जन और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्यायें।	एक स्वभाव व्यञ्जन और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्यायें।	एक स्वभाव व्यञ्जन और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्यायें।

चौथी ढाल

(रोला छन्द)

सम्यग्ज्ञान का लक्षण और उसका समय

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान ॥ १ ॥

अन्वयार्थ :- (सम्यक् श्रद्धा) सम्यग्दर्शन **(धारि)** धारण करके **(पुनि)** फिर **(सम्यग्ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान का **(सेवहु)** सेवन करो [जो सम्यग्ज्ञान] **(बहु धर्मजुत)** अनेक धर्मात्मक **(स्व-पर अर्थ)** अपना और दूसरे पदार्थों का **(प्रकटावन)** ज्ञान कराने में **(भान)** सूर्य समान है।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ ॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत् होते हू , प्रकाश दीपकतैं होई ॥ २ ॥

अन्वयार्थ :- (सम्यक् साथै) सम्यग्दर्शन के साथ **(ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(होय)** होता है **(पै)** तथापि [उन दोनों को] **(भिन्न)** भिन्न **(अराधौ)** समझना चाहिये क्योंकि **(लक्षण)** उन दोनों के लक्षण [क्रमशः] **(श्रद्धा)** श्रद्धा करना और **(जान)** जानना है तथा **(सम्यक्)** सम्यग्दर्शन **(कारण)** कारण है और **(ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(कारज)** कार्य है। **(सोई)** यह भी **(दुहू में)** दोनों में **(भेद)** अन्तर **(अबाधौ)** निर्बाध है। [जिस प्रकार] **(युगपत्)** एकसाथ **(होते हू)** होने पर भी **(प्रकाश)** उजाला **(दीपकतैं)** दीपक की ज्योति से **(होई)** होता है उसी प्रकार।

सम्यग्ज्ञान के भेद, परोक्ष और देशप्रत्यक्ष के लक्षण

तास भेद दो हैं, परोक्ष परतछि तिन मांहीं ।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं ।।
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश प्रतच्छा ।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये जानै जिय स्वच्छा ।। ३ ।।

अन्वयार्थ :- **(तास)** उस सम्यग्ज्ञान के **(परोक्ष)** परोक्ष और **(परतछि)** प्रत्यक्ष **(दो)** दो **(भेद हैं)** भेद हैं **(तिन मांहीं)** उनमें **(मति श्रुत)** मतिज्ञान और श्रुतज्ञान **(दोय)** यह दोनों **(परोक्ष)** परोक्षज्ञान हैं। [क्योंकि वे] **(अक्ष मनतैं)** इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से **(उपजाहीं)** उत्पन्न होते हैं। **(अवधिज्ञान)** अवधिज्ञान और **(मनपर्जय)** मनःपर्यय ज्ञान **(दो)** यह दोनों ज्ञान **(देश प्रतच्छा)** देश प्रत्यक्ष **(हैं)** हैं [क्योंकि उन ज्ञानों से] **(जिय)** जीव **(द्रव्य क्षेत्र परिमाण)** द्रव्य और क्षेत्र की मर्यादा **(लिये)** लेकर **(स्वच्छा)** स्पष्ट **(जानैं)** जानता है।

सकल प्रत्यक्ष ज्ञान का लक्षण और ज्ञान की महिमा

सकल द्रव्य के गुन अनंत, परजाय अनंता ।
जानैं एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता ।।
ज्ञान समान न आन जगत में सुख कौ कारन ।
इहि परमामृत जन्म जरा मृत रोग निवारन ।। ४ ।।

अन्वयार्थ :- [जिस ज्ञान से] **(केवलि भगवन्ता)** केवलज्ञानी भगवान **(सकल द्रव्य के)** छहों द्रव्यों के **(अनंत)** अपरिमित **(गुन)** गुणों को [और] **(अनन्ता)** अनन्त **(परजाय)** पर्यायों को **(एकै काल)** एक साथ **(प्रगट)** स्पष्ट **(जानैं)** जानते हैं [उस ज्ञान को] **(सकल)** सकल प्रत्यक्ष अथवा केवल ज्ञान कहते हैं। **(जगत में)** इस जगत में **(ज्ञान समान)** सम्यग्ज्ञान जैसा **(आन)** दूसरा कोई पदार्थ **(सुख कौ)** सुख का **(न कारन)** कारण नहीं है। **(इहि)** यह सम्यग्ज्ञान ही **(जन्म जरा मृत रोग निवारन)** जन्म, जरा [वृद्धावस्था] और मृत्युरुपी रोगों को दूर करने के लिये **(परमामृत)** उत्कृष्ट अमृत समान है।

ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाश के विषय में अंतर

कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिन में त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते ।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ ।। ५ ।।

अन्वयार्थ :- [अज्ञानी जीव को] **(ज्ञान बिन)** सम्यग्ज्ञान के बिना **(कोटि जन्म)** करोड़ों जन्मों तक **(तप तपैं)** तप करने से **(जे कर्म)** जितने कर्म **(झरैं)** नाश होते हैं **(ते)** उतने कर्म **(ज्ञानी के)** सम्यग्ज्ञानी जीव के **(त्रिगुप्ति तैं)** मन वचन और काय की ओर की प्रवृत्ति को रोकने से [निर्विकल्प शुद्ध स्वभाव से] **(छिन में)** क्षणमात्र में **(सहज)** सरलता से **(टरैं)** नष्ट हो जाते हैं। [यह जीव] **(मुनिव्रत)** मुनियों के महाव्रतों को **(धार)** धारण करके **(अनन्त बार)** अनन्तबार (ग्रीवक) नववें ग्रैवेयक तक **(उपजायो)** उत्पन्न हुआ **(पै)** परन्तु **(निज आतम)** अपने आत्मा के **(ज्ञान बिना)** ज्ञान बिना **(लेश)**

किंचित्मात्र **(सुख)** सुख **(न पायो)** प्राप्त न कर सका।

ज्ञान के दोष और मनुष्य पर्याय आदि की दुर्लभता

तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजे ।
संशय विभ्रम मोह त्याग आपो लख लीजे ॥
यह मानुष पर्याय सुकुल सुनिवौ जिनवानी ।
इह विध गये न मिले, सुमणि ज्यौं उदधि समानी ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :- **(तातैं)** इसलिये **(जिनवर कथित)** जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए **(तत्त्व)** परमार्थ तत्त्व का **(अभ्यास)** अभ्यास **(करीजे)** करना चाहिये [और] **(संशय)** संशय **(विभ्रम)** विपर्यय [तथा] **(मोह)** अनध्यवसाय [अनिश्चितता को] **(त्याग)** छोड़कर **(आपो)** अपने आत्मा को **(लख लीजे)** लक्ष्य में लेना चाहिये अर्थात् जानना चाहिये। [यदि ऐसा नहीं किया तो] **(यह)** यह **(मानुष पर्याय)** मनुष्य भव **(सुकुल)** उत्तम कुल [और] **(जिनवानी)** जिनवाणी का **(सुनिवौ)** सुनना **(इह विध)** ऐसा सुयोग **(गये)** बीत जाने पर **(उदधि)** समुद्र में **(समानी)** समाये-डूबे हुए **(सुमणि ज्यौं)** सच्चे रत्न की भाँति [पुनः] **(न मिलै)** मिलना कठिन है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा और कारण

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञान को कारन स्व-पर विवेक बखानौ ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :- **(धन)** पैसा **(समाज)** परिवार **(गज)** हाथी **(बाज)** घोड़ा **(राज)** राज्य **(तो)** तो **(काज)** अपने काम में **(न आवै)** नहीं आते [किन्तु] **(ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(आपको रूप)** आत्मा का स्वरूप [जो] **(भये)** प्राप्त होने के **(फिर)** पश्चात् **(अचल)** अचल **(रहावै)** रहता है **(तास)** उस **(ज्ञान को)** सम्यग्ज्ञान का **(कारन)** कारण **(स्व-पर विवेक)** आत्मा और पर वस्तुओं का भेदविज्ञान **(बखानौ)** कहा है [इसलिये] **(भव्य)** हे भव्य जीवो ! **(कोटि)** करोड़ों **(उपाय)** उपाय **(बनाय)** करके **(ताको)** उस भेदविज्ञान को **(उर आनौ)** हृदय में धारण करो।

सम्यग्ज्ञान की महिमा और विषयेच्छा रोकने का उपाय

जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगे जैहैं ।
सो सब महिमा ज्ञान तनी मुनिनाथ कहै हैं ॥
विषय चाह दव दाह जगत जन अरनि दझावै ।
तास उपाय न आन ज्ञान घनघान बुझावै ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ:- **(पूरब)** पूर्वकाल में **(जे)** जो जीव **(शिव)** मोक्ष में **(गये)** गये हैं [वर्तमान में] **(जाहिं)** जा रहे हैं **(अरु)** और **(आगे)** भविष्य में **(जैहैं)** जायेंगे **(सो)** वह **(सब)** सब **(ज्ञान तनी)** सम्यग्ज्ञान की **(महिमा)** महिमा है [ऐसा] **(मुनिनाथ)** जिनेन्द्रदेव ने **(कहे हैं)** कहा है। **(विषय चाह)** पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छारूपी **(दव दाह)** भयंकर दावानल **(जगत जन)** संसारी जीवों रूपी **(अरनि)** अरण्य-पुराने वन को **(दझावै)** जला रहा है **(तास)** उसकी शांति का **(उपाय)** उपाय **(आन)**

दूसरा **(न)** नहीं है [मात्र] **(ज्ञान घनघान)** ज्ञानरूपी वर्षा का समूह **(बुझावै)** शान्त करता है।

पुण्य-पाप में हर्ष-विषाद का निषेध और तात्पर्य की बात

पुण्य पाप फलमाहिं हरख बिलखौ मत भाई ।
यह पुद्गल परजाय उपजि विनसै फिर थाई ॥
लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जग दंद-फंद नित आतम ध्याओ ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ :- (भाई) हे आत्मार्थी प्राणी ! **(पुण्य पाप फलमाहिं हरख विलखौ मत)** पुण्य के फल में हर्ष न कर [और] पाप के फल में द्वेष न कर [क्योंकि पुण्य और पाप] **(यह)** यह **(पुद्गल परजाय)** पुद्गल की पर्यायें हैं। [वे] **(उपजि)** उत्पन्न होकर **(विनसै)** नष्ट हो जाती हैं [और] **(फिर)** पुनः **(थाई)** उत्पन्न होती हैं। **(उर)** अपने अन्तर में **(निश्चय)** निश्चय से वास्तव में **(लाख बात की बात)** लाखों बातों का सार **(यही)** इतना ही **(लाओ)** ग्रहण करो कि **(सकल)** पुण्य-पापरूप समस्त **(जग दंद फंद)** जन्म-मरण के द्वंद [राग-द्वेष] रूप विकारी मलिन भाव **(तोरि)** तोड़कर **(नित)** सदैव **(आतम ध्याओ)** अपने आत्मा का ध्यान करो।

सम्यक्चारित्र का समय और भेद तथा अहिंसाणुव्रत और सत्याणुव्रत का लक्षण

सम्यक् ज्ञानी होय बहुरि दिढ़ चारित लीजै ।
एकदेश अरु सकलदेश तसु भेद कहीजै ॥
त्रसहिंसा को त्याग वृथा थावर न सँहारै ।
पर वधकार कठोर निंद्य नहिं वयन उचारै ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :- (सम्यक्ज्ञानी) सम्यक्ज्ञानी **(होय)** होकर **(बहुरि)** फिर **(दिढ़)** दृढ़ **(चारित)** सम्यक्चारित्र **(लीजै)** का पालन करना चाहिये **(तसु)** उसके [सम्यक्चारित्र के] **(एकदेश)** एकदेश **(अरु)** और **(सकल देश)** सर्वदेश [ऐसे दो] **(भेद)** भेद **(कहीजै)** कहे गये हैं। [उनमें] **(त्रसहिंसा को)** त्रस जीवों की हिंसा का **(त्याग)** त्याग करना [और] **(वृथा)** बिना कारण **(थावर)** स्थावर जीवों का **(न सँहारै)** घात न करना [वह अहिंसाणुव्रत कहलाता है] **(पर वधकार)** दूसरों को दुःखदायक **(कठोर)** कठोर [और] **(निंद्य)** निंद्यनीय **(वयन)** वचन **(नहिं उचारै)** न बोलना [वह सत्याणुव्रत है]।

अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह परिमाणाणुव्रत तथा दिग्व्रत का लक्षण

जल मृतिका विन और नाहिं कछु गहै अदत्ता ।
निज वनिता विन सकल नारिसों रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै ।
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ :- (जल मृतिका विन) पानी और मिट्टी के अतिरिक्त **(और कछु)** अन्य कोई वस्तु **(अदत्ता)** बिना दिये **(नाहिं)** नहीं **(गहै)** लेना [उसे अचौर्याणुव्रत कहते हैं] **(निज)** अपनी **(वनिता विन)** स्त्री के अतिरिक्त **(सकल नारिसौं)** अन्य सर्व स्त्रियों से **(विरत्ता)** विरक्त **(रहे)** रहना [वह ब्रह्मचर्याणुव्रत है] **(अपनी)** अपनी **(शक्ति विचार)** शक्ति का विचार करके **(परिग्रह)** परिग्रह **(थोरो)** मर्यादित **(राखै)** रखना [सो परिग्रह परिमाणाणुव्रत है] **(दश दिश)** दस दिशाओं में **(गमन)** जाने-आने

की **(प्रमाण)** मर्यादा **(ठान)** रखकर **(तसु)** उस **(सीम)** सीमा का **(न नाखै)** उल्लंघन न करना [सो दिग्व्रत है]।

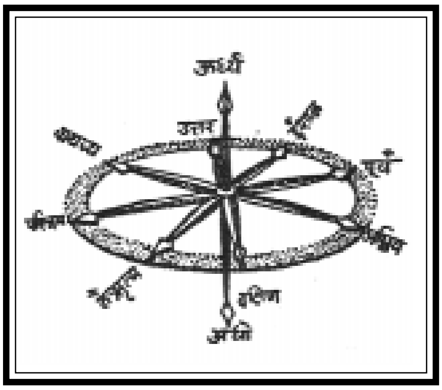

छन्द १२ पूर्वार्द्ध देशव्रत (देशावगाशिक) नामक गुणव्रत का लक्षण

ताहू में फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमाण ठान अन,सकल निवारा ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ :- (फिर) फिर **(ताहू में)** उसमें [किन्हीं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध] **(ग्राम)** गांव **(गली)** गली **(गृह)** मकान **(बाग)** उद्यान तथा **(बजारा)** बाजार तक **(गमनागमन)** जाने-आने का **(प्रमाण)** माप **(ठान)** रखकर **(अन)** अन्य **(सकल)** सबका **(निवारा)** त्याग करना [उसे देशव्रत अथवा देशावगाशिक व्रत कहते हैं]।

छन्द १२ उत्तरार्द्ध अनर्थदण्डव्रत के भेद और उनका लक्षण

काहू की धनहानि,किसी जय हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनज कृषी तैं ॥ १२ ॥
कर प्रमाद जल भूमि वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरण नहिं दे यश लाधै ॥
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै।
और हु अनरथ दंड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ :- १. (काहू की) किसी के **(धनहानि)** धन के नाश का **(किसी)** किसी की **(जय)** विजय का [अथवा] **(हार)** किसी की हार का **(न चिन्तै)** विचार न करना [उसे अपध्यान अनर्थदंडव्रत कहते हैं] २. **(वनज)** व्यापार और **(कृषी तैं)** खेती से **(अघ)** पाप **(होय)** होता है। इसलिये **(सो)** उसका **(उपदेश)** उपदेश **(न देय)** न देना [उसे पापोपदेश अनर्थदंडव्रत कहा जाता है] **(कर प्रमाद)** प्रमाद से ३. **(जल)** जलकायिक **(भूमि)** पृथ्वीकायिक, **(वृक्ष)** वनस्पतिकायिक, **(पावक)** अग्निकायिक [और वायुकायिक] जीवों का **(न विराधै)** घात न करना [सो प्रमादचर्या अनर्थदंडव्रत कहलाता है] ४. **(असि)** तलवार, **(धनु)** धनुष **(हल)** हल [आदि] **(हिंसोपकरण)** हिंसा होने में कारणभूत पदार्थों को **(दे)** देकर **(यश)** यश **(नहिं लाधै)** न लेना [सो हिंसादान अनर्थदंडव्रत कहलाता है] ५. **(राग द्वेष करतार)** राग और द्वेष उत्पन्न करने वाली **(कथा)** कथाएँ **(कबहूँ)** कभी भी **(न सुनीजै)** नहीं सुनना [सो

दुःश्रुति श्रवण अनर्थ दंडव्रत कहा जाता है] **(और हु)** तथा अन्य भी **(अघहेतु)** पाप के कारण **(अनरथ दंड)** अनर्थदंड हैं **(तिन्हें)** उन्हें भी **(न कीजै)** नहीं करना चाहिए।

सामायिक, प्रोषध, भोगोपभोगपरिमाण और अतिथिसंविभागव्रत

धर उर समताभाव,सदा सामायिक करिये ।
परव चतुष्टय मांहि, पाप तज प्रोषध धरिये ।।
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै ।
मुनि को भोजन देय फेर, निज करहि अहारै ।। १४ ।।

अन्वयार्थ :– **(उर)** मन में **(समताभाव)** निर्विकल्पता अर्थात् शल्य के अभाव को **(धर)** धारण करके **(सदा)** हमेशा **(सामायिक)** सामायिक **(करिये)** करना [सो सामायिक शिक्षाव्रत है] **(परव चतुष्टय मांहि)** चार पर्व के दिनों में **(पाप)** पापकार्यों को **(तज)** छोड़कर **(प्रोषध)** प्रोषधोपवास **(धरिये)** करना [सो प्रोषध उपवास शिक्षाव्रत है] **(भोग)** एक बार भोगा जा सके ऐसी वस्तुओं का तथा **(उपभोग)** बारम्बार भोगा जा सके ऐसी वस्तुओं का **(नियमकरि)** परिमाण करके मर्यादा रखकर **(ममत)** मोह **(निवारै)** छोड़ दे [सो भोग उपभोग परिमाणव्रत है] **(मुनि को)** वीतरागी मुनि को **(भोजन)** आहार **(देय)** देकर **(फेर)** फिर **(निज करहि आहारै)** स्वयं भोजन करे [सो अतिथि संविभागव्रत कहलाता है]।

निरतिचार श्रावक व्रत पालन करने का फल

बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै ।
मरण समय संन्यास धारि तसु दोष नशावै ।।
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलह उपजावै ।
तहँतें चय नरजन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ।। १५ ।।

अन्वयार्थ :– जो जीव **(बारह व्रत के)** बारह व्रतों के **(पन पन)** पाँच–पाँच **(अतिचार)** अतिचारों को **(न लगावै)** नहीं लगाता, और **(मरण समय)** मृत्यु काल में **(संन्यास)** समाधि **(धारि)** धारण करके **(तसु)** उनके **(दोष)** दोषों को **(नशावै)** दूर करता है वह **(यों)** इस प्रकार **(श्रावक व्रत)** श्रावक के व्रत **(पाल)** पालन करके **(सोलह)** सोलहवें **(स्वर्ग)** स्वर्ग तक **(उपजावै)** उत्पन्न होता है [और] **(तहँतें)** वहाँ से **(चय)** देह छोड़कर **(नर जन्म)** मनुष्य पर्याय **(पाय)** प्राप्त करके **(मुनि)** मुनि **(ह्वै)** होकर **(शिव)** मोक्ष **(जावै)** जाता है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित तथा विपरीतता रहित जैसा का तैसा संदेह रहित जानता है उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न २ – लक्षण, कारण एवं कार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – **लक्षण –** मिली हुई वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को अलग करने वाले चिह्न को लक्षण कहते हैं। **कारण –** कार्य की उत्पादक सामग्री को कारण कहते हैं। **कार्य –** उद्देश्य की पूर्ति को कार्य कहते हैं।

प्रश्न ३ – प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – इन्द्रिय, प्रकाश, उपदेश आदि की सहायता के बिना जो ज्ञान आत्मा से ही उत्पन्न होता है

उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ४ – द्रव्य, गुण, पर्याय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – **द्रव्य –** गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

गुण – जो द्रव्य के पूरे हिस्से में और उसकी सब अवस्थाओं में रहता है उसे गुण कहते हैं।

पर्याय – गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं।

प्रश्न ५ – संशय किसे कहते हैं ?

उत्तर – विरुद्ध अनेक कोटि का स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे–यह सीप है या चांदी।

प्रश्न ६ – विपर्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर – विपरीत एक कोटि के निश्चय करने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जैसे – सीप को चाँदी जानना। (इसको विभ्रम भी कहते हैं।)

प्रश्न ७ – अनध्यवसाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – 'कुछ है' ऐसे निर्धार रहित ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं। जैसे – यह सीप है या चांदी इसका निर्णय न होना।

प्रश्न ८ – सम्यग्ज्ञान का कारण क्या है ?

उत्तर – सम्यग्ज्ञान का कारण आत्मा और पर पदार्थों का भेद विज्ञान है।

प्रश्न ९ – सम्यग्ज्ञान की महिमा क्या है ?

उत्तर – जो जीव पहले मोक्ष जा चुके हैं, अभी जा रहे हैं और आगे जावेंगे, यह सब सम्यग्ज्ञान की महिमा है।

प्रश्न १०– विषयों की चाह रूपी अग्नि को शांत करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – विषयों की चाह रूपी अग्नि को सम्यग्ज्ञान रूपी मेघ (बादल) ही शांत कर सकते हैं उसे शांत करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न ११– पुण्य और पाप के फल में भव्य जीवों को क्या नहीं करना चाहिये ?

उत्तर – आत्म हितैषी भव्य जीवों को पुण्य के फल में हर्ष और पाप के फल में विषाद नहीं करना चाहिये क्योंकि ये पुण्य और पाप दोनों ही पुद्गल की पर्यायें हैं जो पुनः–पुनः उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न १२– सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – हिंसादि पापों से निवृत्त होने को चारित्र कहते हैं। अशुभ कार्यों से निवृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होने को व्यवहार सम्यक्चारित्र कहते हैं। अपने स्वरूप में रमणता को निश्चय सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्रश्न १३– हिंसा के कितने भेद हैं ?

उत्तर – हिंसा के चार भेद हैं –

१. संकल्पी हिंसा २. आरम्भी हिंसा ३. उद्योगी हिंसा ४. विरोधी हिंसा।

प्रश्न १४– श्रावक किसे कहते हैं और श्रावक के कितने भेद होते हैं ?

उत्तर – सात व्यसन के त्याग पूर्वक जो अष्ट मूल गुणों का पालन करता हो, तत्त्वार्थ श्रद्धानी एवं आत्मानुभवी हो, सच्चे देव, गुरु, धर्म का आराधक हो, पानी छानकर पीता हो, रात्रि भोजन का त्यागी हो उसे श्रावक कहते हैं।

श्रावक के तीन भेद हैं – १. पाक्षिक श्रावक २. नैष्ठिक श्रावक ३. साधक श्रावक।

प्रश्न १५– पाक्षिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो अभ्यास रूप से श्रावक धर्म का पालन करता है उसे पाक्षिक श्रावक कहते हैं।

प्रश्न १६– नैष्ठिक श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो निरतिचार श्रावक धर्म का पालन करता है उसे नैष्ठिक श्रावक कहते हैं।

प्रश्न १७– साधक श्रावक किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो श्रावक धर्म का आचरण करता हुआ ग्यारह प्रतिमा का पालन करता है उसे साधक श्रावक कहते हैं।

प्रश्न १८– नैष्ठिक श्रावक के कितने भेद हैं ?

उत्तर – नैष्ठिक श्रावक के तीन भेद हैं – १ से ६ प्रतिमा तक जघन्य श्रावक। ७ से ९ प्रतिमा तक मध्यम श्रावक। १० वीं ११ वीं प्रतिमाधारी उत्तम श्रावक कहलाते हैं।

नैष्ठिक श्रावक ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते हैं –१. दर्शन २. व्रत ३. सामायिक ४ प्रोषधोपवास ५. सचित्तविरत ६. रात्रिभुक्तित्याग ७. ब्रह्मचर्य ८. आरम्भविरत ९. परिग्रहविरत १०. अनुमति विरत ११. उद्दिष्टविरत।

प्रश्न १९– श्रावक को मरण के समय क्या करना चाहिये ?

उत्तर – श्रावक को मरण के समय प्रीतिपूर्वक सन्यास (सल्लेखना) धारण करना चाहिये।

प्रश्न २०– सल्लेखना किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्यक्प्रकार से शरीर और कषायों के कृश करने को सल्लेखना कहते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – उचित शब्दों का चयन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

(क) चौथी ढाल में ------- की आराधना का उपदेश है। (सम्यग्दर्शन/<u>सम्यग्ज्ञान</u>)

(ख) यह जीव अनादि से संसार के ------- भोग रहा है। (<u>दुःख</u> / सुख)

(ग) स्व-पर को प्रकाशित करने के लिये आत्मा ------- के समान है। (<u>सूर्य</u> / चंद्र)

(घ) जो ज्ञान इन्द्रियों तथा मन के निमित्त से वस्तु को स्पष्ट जानता है उसे ------- कहते हैं। (प्रत्यक्षज्ञान / <u>परोक्षज्ञान</u>)

(ङ) मुनिव्रत धार अनंतबार ------- उपजायो। (<u>ग्रीवक</u> / सर्वार्थ सिद्धि)

प्रश्न २ – अतिलघुउत्तरीय/लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) सम्यक्ज्ञान कब होता है ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान होता है।

(ख) दर्शन की आराधना कब पूर्ण व प्रगट होती है ?

उत्तर – दर्शन की आराधना क्षायिक सम्यक्त्व के पूर्ण होने पर प्रगट होती है।

(ग) अतिचार से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर – व्रतों के पालन करने की भावना होते हुए भी उसका एक देश भंग होना अतिचार है।

(घ) पर्व चतुष्टय क्या है ?

उत्तर – प्रत्येक माह की दो अष्टमी और दो चतुर्दशी पर्व चतुष्टय हैं।

(ङ) क्या यह सत्य है ?

(१) ग्रहस्थ अवस्था में स्वसंवेदन ज्ञान होता है। (हाँ)

(२) आत्मा को जानने में इन्द्रियाँ निमित्त हैं। (नहीं)

(३) तिर्यंच अवस्था में आत्मा का अनुभव संभव है। (हाँ)

(४) शुभ राग से अज्ञान अंधकार टल सकता है। (नहीं)

(५) अनुकूलता मिलने पर ही आत्म साधना हो सकती है। (नहीं)

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) चौथी ढाल का सारांश संक्षेप में लिखिये

उत्तर –सम्यग्दर्शन के अभाव में जो ज्ञान होता है उसे कुज्ञान (मिथ्याज्ञान) कहा जाता है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् वही सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इस प्रकार यद्यपि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ होते हैं तथापि उनके लक्षण भिन्न-भिन्न हैं और कारण कार्य भाव का अन्तर है अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान का निमित्त कारण है। स्वयं को और परवस्तुओं को स्वसन्मुखता पूर्वक यथावत् जाने वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है, उसकी वृद्धि होने पर अंत में केवलज्ञान प्राप्त होता है। सम्यग्ज्ञान के अतिरिक्त सुखदायक अन्य कोई वस्तु नहीं है और वही जन्म, जरा तथा मरण का नाश करता है। मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यग्ज्ञान के बिना करोड़ों जन्म तक तप तपने से जितने कर्मों का नाश होता है उतने कर्म सम्यक्ज्ञानी जीव के त्रिगुप्ति से क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं। पूर्व काल में जो जीव मोक्ष गये हैं, भविष्य में जायेंगे और वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र से जा रहे हैं वह सब सम्यग्ज्ञान का प्रभाव है। जिस प्रकार मूसलाधार वर्षा वन की भयंकर अग्नि को क्षणमात्र में बुझा देती है उसी प्रकार यह सम्यग्ज्ञान विषय वासना को क्षणमात्र में नष्ट कर देता है। पुण्य-पाप के भाव जीव के चारित्रगुण की विकारी (अशुद्ध) पर्यायें हैं। वे रहँट के घड़ों की भाँति उल्टी-सीधी होती रहती हैं। उन पुण्य-पाप के फलों में जो संयोग प्राप्त होते हैं उनमें हर्ष विषाद करना अज्ञानता है। प्रयोजन भूत बात तो यह है कि पुण्य-पाप, व्यवहार और निमित्त की रुचि छोड़कर स्वसन्मुख होकर सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। आत्मा और परवस्तुओं का भेदविज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान होता है। इसलिये संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय (तत्त्वार्थ का अनिर्धार) का त्याग करके तत्त्व के अभ्यास द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिये क्योंकि मनुष्य पर्याय, उत्तम श्रावक कुल और जिनवाणी का सुनना आदि सुयोग – जिस प्रकार समुद्र में डूबा हुआ रत्न हाथ नहीं आता उसी प्रकार यह शुभयोग बारंबार प्राप्त नहीं होते। ऐसा दुर्लभ सुयोग प्राप्त करके

सम्यक्धर्म प्राप्त न करना मूढ़ता है।

सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके फिर सम्यक्चारित्र प्रगट करना चाहिये। सम्यक्चारित्र की भूमिका में जो कुछ भी राग रहता है वह श्रावक को अणुव्रत और मुनि को पंच महाव्रत के प्रकार का होता है, उसे सम्यक्दृष्टि पुण्य मानते हैं।

जो श्रावक निरतिचार समाधिमरण को धारण करता है वह समता पूर्वक आयु पूर्ण होने से योग्यतानुसार सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न होता है और वहाँ से आयु पूर्ण होने पर मनुष्य पर्याय प्राप्त करता है पश्चात मुनिपद धारण करके मुक्ति को प्राप्त करता है। इसलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक चारित्र का पालन करना प्रत्येक आत्मार्थी जीव का कर्तव्य है।

निश्चय सम्यक्चारित्र ही सच्चा चारित्र है ऐसी श्रद्धा करना तथा उस भूमिका में जो श्रावक और मुनिव्रत के विकल्प उठते हैं वह सच्चा चारित्र नहीं, चारित्र में होने वाला राग है किन्तु उस भूमिका में वैसा राग आये बिना नहीं रहता और उस सम्यक्चारित्र में ऐसा राग निमित्त होता है। उसे सहचर मानकर व्यवहार सम्यक्चारित्र कहा जाता है। व्यवहार सम्यक्चारित्र को सच्चा सम्यक्चारित्र मानने की श्रद्धा छोड़ देना चाहिये।

(ख) भेद-प्रभेद लिखिये

(१) काल - निश्चय काल, व्यवहार काल।

(२) विकथा - स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, चोर कथा।

(३) श्रावक व्रत - पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत कुल बारह व्रत हैं।

(४) रोगत्रय - जन्म, जरा, मृत्यु।

(ग) चौथी ढाल के आधार पर भेद-प्रभेद लिखिये -

(अ) प्रमाद के भेद-प्रभेद -

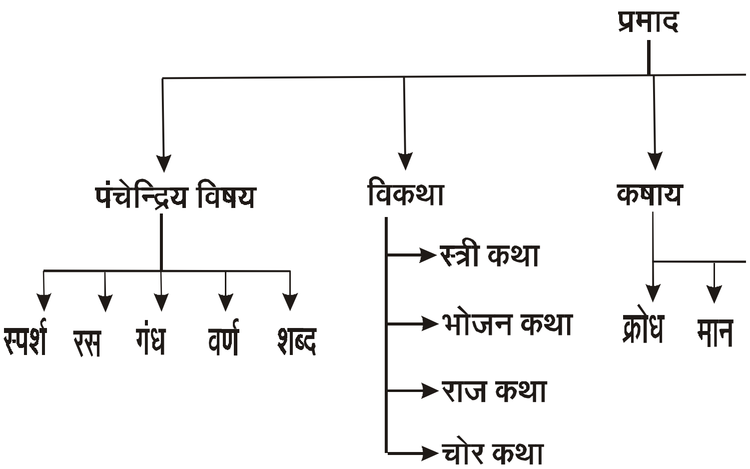

(ब) श्रावक के व्रत के भेद-प्रभेद -

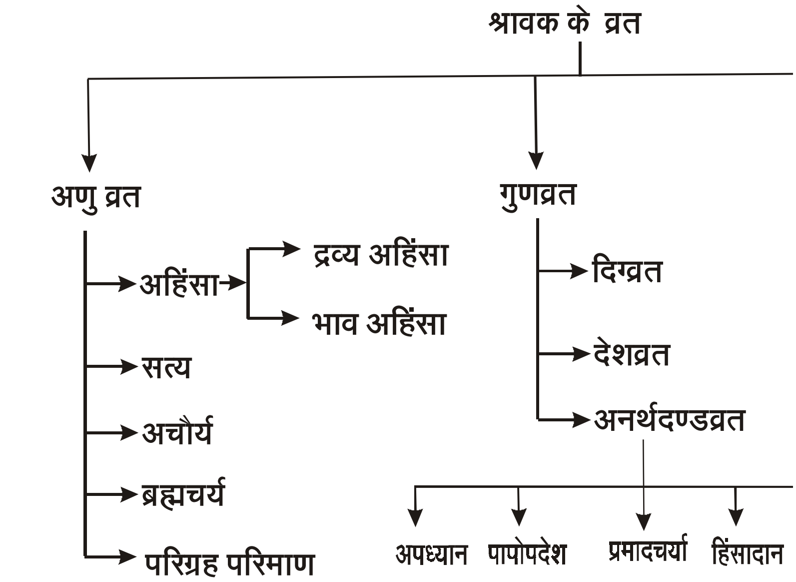

(स) सम्यग्ज्ञान के भेद-प्रभेद -

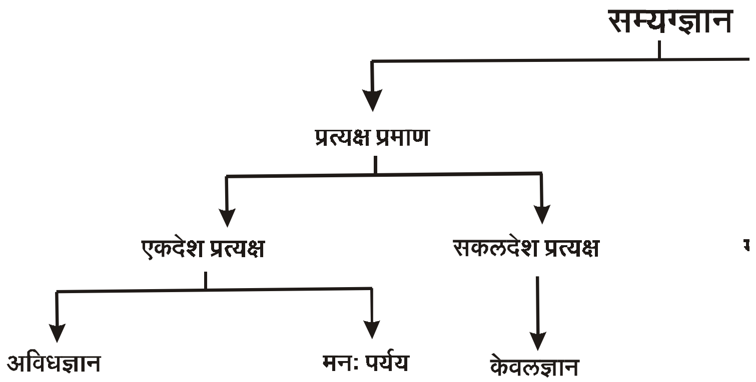

(घ) अंतर बताइये -

(१) भोग - उपभोग
(२) दिग्व्रत - देशव्रत
(३) सम्यग्दर्शन - सम्यग्ज्ञान
(४) अणुव्रत - महाव्रत

(ङ) चौथी ढाल के आधार पर ''श्रावक के व्रत'' पर एक निबंध लिखिये।

उत्तर - (घ और ङ - उक्त प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोजें)

पाँचवीं ढाल

(छन्द चाल या सखी छन्द)

भावनाओं के चिंतवन का कारण, उसके अधिकारी और उसका फल

मुनि सकलव्रती बड़भागी भव भोगनतैं वैरागी ।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥

अन्वयार्थ :– **(भाई)** हे भव्य जीव ! **(सकलव्रती)** महाव्रतों के धारक **(मुनि)** भावलिंगी मुनिराज **(बड़भागी)** महान पुरुषार्थी हैं [क्योंकि वे] **(भव भोगनतैं)** संसार और भोगों से **(वैरागी)** विरक्त होते हैं [और] **(वैराग्य)** वीतरागता को **(उपावन माई)** उत्पन्न करने के लिए माता के समान **(अनुप्रेक्षा)** बारह भावनाओं का **(चिन्तैं)** चिंतवन करते हैं।

भावनाओं का फल और मोक्षसुख की प्राप्ति का समय

इन चिन्तत सम सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै ।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥ २ ॥

अन्वयार्थ :– **(जिमि)** जिस प्रकार **(पवन के)** वायु के **(लागै)** लगने से **(ज्वलन)** अग्नि **(जागै)** भभक उठती है, [उसी प्रकार] **(इन)** बारह भावनाओं का **(चिन्तत)** चिंतवन करने से **(सम सुख)** समतारूपी सुख **(जागै)** प्रगट होता है। **(जब ही)** जिस समय **(जिय)** जीव **(आतम)** आत्म स्वरूप को **(जानै)** जानता है **(तब ही)** तभी **(जीव)** जीव **(शिवसुख)** मोक्षसुख को **(ठानै)** प्राप्त करता है।

बारह भावनाओं का स्वरूप

१ – अनित्य भावना

जोबन गृह गोधन नारी, हय, गय, जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ :– **(जोबन)** यौवन, **(गृह)** मकान, **(गो)** गाय–भैंस, **(धन)** लक्ष्मी, **(नारी)** स्त्री, **(हय)** घोड़ा, **(गय)** हाथी, **(जन)** कुटुम्ब, **(आज्ञाकारी)** नौकर–चाकर तथा **(इन्द्रिय भोग)** पाँच इंन्द्रियों के भोग – यह सब **(सुरधनु)** इन्द्रधनुष [तथा] **(चपला)** बिजली की **(चपलाई)** चंचलता–क्षणिकता की भांति **(छिन थाई)** क्षणमात्र रहने वाले हैं।

२ – अशरण भावना

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि, काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥ २ ॥

अन्वयार्थ :– **(सुर असुर खगाधिप)** देवों के इन्द्र, असुरों के इन्द्र और खगेन्द्र [गरुड़, हंस] **(जेते)** जो–जो हैं **(ते)** उन सबका **(मृग हरि ज्यों)** जिस प्रकार हिरन को सिंह मार डालता है उसी प्रकार **(काल)** मृत्यु **(दले)** नाश करता है। **(मणि)** चिन्तामणि आदि मणिरत्न, **(मंत्र)** बड़े–बड़े रक्षामंत्र, **(तंत्र)** तंत्र, **(बहु होई)** बहुत से होने पर भी **(मरते)** मरने वाले को **(कोई)** वे कोई **(न बचावै)** नहीं बचा सकते।

३ – संसार भावना

चहुँगति दु:ख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करै है ।
सब विधि संसार असारा, या में सुख नाहिं लगारा ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ :– (जीव) जीव **(चहुँगति)** चार गति में **(दु:ख)** दु:ख **(भरै है)** भोगता है और **(परिवर्तन पंच)** पाँच परावर्तन, पाँच प्रकार से परिभ्रमण **(करै है)** करता है । **(संसार)** संसार **(सब विधि)** सर्व प्रकार से **(असारा)** सार रहित है, **(या में)** इसमें **(सुख)** सुख **(लगारा)** लेश मात्र भी **(नाहिं)** नहीं है ।

४ – एकत्व भावना

शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगै जिय एक हि ते ते ।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :– (जेते) जितने **(शुभ–अशुभ करम फल)** शुभ और अशुभ कर्म के फल **हैं (ते ते)** वे सब **(जिय)** यह जीव **(एक हि)** अकेला ही **(भोगै)** भोगता है **(सुत)** पुत्र **(दारा)** स्त्री **(सीरी)** साथ देने वाले **(न होय)** नहीं होते **(सब)** यह सब **(स्वारथ के)** अपने स्वार्थ के **(भीरी)** सगे **(हैं)** हैं ।

५ – अन्यत्व भावना

जल पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला ।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :– (जिय तन) जीव और शरीर **(जल पय ज्यों)** पानी और दूध की भांति **(मेला)** मिले हुए हैं **(पै)** तथापि **(भेला)** एकरूप **(नहिं)** नहीं हैं, **(भिन्न भिन्न)** पृथक्–पृथक् हैं **(तो)** तो फिर **(प्रगट)** जो बाह्य में प्रगट रूप से **(जुदे)** पृथक् दिखाई देते हैं ऐसे **(धन)** लक्ष्मी, **(धामा)** मकान, **(सुत)** पुत्र और **(रामा)** स्त्री आदि **(मिलि)** मिलकर **(इक)** एक **(क्यों)** कैसे **(ह्वै)** हो सकते हैं ?

६ – अशुचि भावना

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितैं मैली ।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करे किम यारी ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ :– [जो] **(पल)** मांस **(रुधिर)** रक्त **(राध)** पीव और **(मल)** विष्ठा की **(थैली)** थैली है, **(कीकस)** हड्डी, **(वसादितैं)** चरबी आदि से **(मैली)** अपवित्र है और जिसमें **(घिनकारी)** घृणा–ग्लानि उत्पन्न करने वाले **(नव द्वार)** नौ दरवाजे **(बहैं)** बहते हैं **(अस)** ऐसे **(देह)** शरीर में **(यारी)** प्रेम–राग **(किम)** कैसे **(करे)** किया जा सकता है ?

७ – आस्रव भावना

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ :– (भाई) हे भव्य जीव ! **(योगन की)** योगों की **(जो)** जो **(चपलाई)** चंचलता है **(तातैं)** उससे **(आस्रव)** आस्रव **(ह्वै)** होता है और **(आस्रव)** वह आस्रव **(घनेरे)** अत्यंत **(दु:खकार)** दु:खदायक है [इसलिये] **(बुधिवंत)** बुद्धिमान **(तिन्हें)** उसे **(निरवेरे)** दूर करें ।

८ – संवर भावना

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :– (जिन) जिन्होंने **(पुण्य)** शुभभाव और **(पाप)** अशुभ भाव **(नहिं कीना)** नहीं किये, तथा मात्र **(आतम)** आत्मा के **(अनुभव)** अनुभव में [शुद्ध उपयोग में] **(चित)** ज्ञान को **(दीना)** लगाया है **(तिनही)** उन्होंने ही **(आवत)** आते हुए **(विधि)** कर्मों को **(रोके)** रोका है और **(संवर लहि)** संवर प्राप्त करके **(सुख)** सुख का **(अवलोके)** साक्षात्कार किया है।

९ – निर्जरा भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ :– [जो] **(निज काल)** अपनी–अपनी स्थिति **(पाय)** पूर्ण होने पर **(विधि)** कर्म **(झरना)** खिर जाते हैं **(तासों)** उससे **(निज काज)** जीव का धर्मरूपी कार्य **(न सरना)** नहीं होता किन्तु **(जो)** [निर्जरा] **(तप करि)** आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा **(कर्म)** कर्मों का **(खिपावै)** नाश करती है [वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा] **(सोई)** वह **(शिवसुख)** मोक्ष का सुख **(दरसावै)** दिखलाती है।

१० – लोक भावना

किनहू न करौ न धरै को, षड् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमांहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ :– [इस लोक को] **(किनहू)** किसी ने **(न करौ)** बनाया नहीं है **(को)** किसी ने **(न धरै)** टिका नहीं रखा है, **(को)** कोई **(न हरै)** नाश नहीं कर सकता [और यह लोक] **(षड्द्रव्यमयी)** छह प्रकार के द्रव्य स्वरूप है [छह द्रव्यों से परिपूर्ण है] **(सो)** ऐसे **(लोकमांहि)** लोक में **(बिन समता)** वीतरागी समता बिना **(नित)** सदैव **(भ्रमता)** भटकता हुआ **(जीव)** जीव **(दुख सहै)** दुःख सहन करता है।

११ – बोधिदुर्लभ भावना

अंतिम ग्रीवकलौं की हद, पायो अनन्त विरियां पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ :– (अंतिम) अंतिम, नववें **(ग्रीवकलौं की हद)** ग्रैवेयक तक के **(पद)** पद **(अनन्त विरियां)** अनन्त बार **(पायो)** प्राप्त किये **(पर)** तथापि **(सम्यग्ज्ञान)** सम्यग्ज्ञान **(न लाधौ)** प्राप्त न हुआ **(दुर्लभ)** ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को **(मुनि)** मुनिराजों ने **(निज में)** अपने आत्मा में **(साधौ)** धारण किया है।

१२ – धर्म भावना

जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारे ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ – (मोह तैं) मोह से **(न्यारे)** भिन्न **(सारे)** साररूप अथवा निश्चय **(जो)** जो **(दृग ज्ञान व्रतादिक)** दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप रत्नत्रय आदिक **(भाव)** भाव हैं **(सो)** वह **(धर्म)** धर्म कहलाता है। **(जबै)** जब **(जिय)** जीव **(धारै)** उसे धारण करता है **(तब ही)** तभी वह **(अचल सुख)**अचल सुख–मोक्ष **(निहारे)** देखता है–प्राप्त करता है।

आत्मानुभवपूर्वक भावलिंगी मुनि का स्वरूप

सो धर्म मुनिनकरि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ :- **(सो)** ऐसा रत्नत्रय **(धर्म)** धर्म **(मुनिनकरि)** मुनियों द्वारा **(धरिये)** धारण किया जाता है **(तिनकी)** उन मुनियों की **(करतूत)** क्रियाएँ **(उचरिये)** कही जाती हैं **(भवि प्रानी)** हे भव्य जीवो ! **(ताको)** उसे **(सुनिये)** सुनो और **(अपनी)** अपने आत्मा के **(अनुभूति)** अनुभव को **(पिछानौ)** पहिचानो ।

प्रश्न १ – अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनुप्रेक्षा अर्थात् भावना । भेदज्ञानपूर्वक संसार, शरीर और भोगादि के स्वरूप का बारम्बार विचार करके उनके प्रति वैराग्यभाव उत्पन्न करना अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न २ – अनुप्रेक्षा कितनी हैं ?

उत्तर – अनुप्रेक्षा बारह हैं – अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ, धर्म भावना ।

प्रश्न ३ – अनित्य अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – यौवन, मकान, गाय, धन, स्त्री, घोड़ा, हाथी, कुटुम्बी, नौकर और इन्द्रिय विषय आदि सब क्षण भंगुर अनित्य हैं ऐसा बार– बार चिन्तन करना अनित्य अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ४ – अशरण अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जैसे हिरण को सिंह नष्ट कर देता है, वैसे ही संसार में इन्द्र, नरेन्द्र, नागेन्द्र और खगेन्द्र (विद्याधर) आदि को मृत्यु नष्ट कर देती है अर्थात् संसार में कोई शरण नहीं है, ऐसा बार–बार चिन्तन करना अशरण अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ५ – संसार अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव चारों गतियों के दुःख भोगता हुआ पंच परावर्तन करता है और यह संसार सब प्रकार से असार है इसमें थोड़ा सा भी सुख नहीं है ऐसा चिंतन करना संसार अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ६ – एकत्व अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने शुभ कर्मों के अच्छे और अशुभ कर्मों के बुरे फल को जीव अकेला ही भोगता है । पुत्र और स्त्री आदि कोई भी साथी नहीं होते, वे सब स्वार्थ के साथी हैं ऐसा चिन्तन करना एकत्व अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ७ – अन्यत्व अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – मैं शरीर से भिन्न हूँ फिर स्त्री पुत्र धन आदि बाह्य परिग्रह मेरे कैसे हो सकते हैं अर्थात् आत्मा से सभी पदार्थ भिन्न हैं ऐसा चिंतन करना अन्यत्व अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ८ – अशुचि अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – यह शरीर माँस खून पीव मल–मूत्रादि का घर है । इस तरह शरीर की अपवित्रता का चिंतन करना अशुचि अनुप्रेक्षा है ।

प्रश्न ९ – संवर अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – शुभ – अशुभ भावों से उपयोग को हटाकर जिस स्वानुभूति के बल से कर्मों का आना रुकता है, उसमें तन्मय होने का निरंतर चिंतन करना संवर अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न १०– निर्जरा अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – संवर पूर्वक तप के बल से संचित कर्मों का झड़ जाना निर्जरा है ऐसा चिंतन करना निर्जरा अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न ११– निर्जरा कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर – निर्जरा दो प्रकार की होती है – १. सविपाक निर्जरा २. अविपाक निर्जरा।

प्रश्न १२– सविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपना समय पूर्ण करके कर्मों का झड़ जाना सविपाक निर्जरा है और इस निर्जरा से कोई लाभ नहीं है।

प्रश्न १३– अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्थिति पूरी होने के पहले ही तप के बल से कर्मों का एक देश क्षय हो जाना अविपाक निर्जरा है। इससे मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

प्रश्न १४– लोक अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – छह द्रव्यों से भरे हुए लोक को न किसी ने बनाया है, न किसी ने इसे धारण किया है और न कोई इसे नष्ट कर सकता है, ऐसे संसार में समता के बिना यह जीव भटकता हुआ दुःख भोगता रहता है ऐसा चिन्तन करना लोक अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न १५– बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – इस जीव ने नव ग्रैवेयकों तक जाकर अनन्त बार अहमिन्द्र पद प्राप्त किया किन्तु सम्यग्ज्ञान एक बार भी प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे दुर्लभ सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का बार–बार चिन्तन करना बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न १६– धर्म अनुप्रेक्षा किसे कहते हैं ?

उत्तर – मिथ्यात्व से भिन्न सम्यग्दर्शन,सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आदि जो भाव हैं वे धर्म कहलाते हैं। जब यह जीव इस धर्म को धारण करता है तभी मोक्ष को प्राप्त करता है, ऐसा विचार करना धर्म अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न १७– पूर्ण रत्नत्रय धर्म को कौन धारण करता है ?

उत्तर – रत्नत्रय को पूर्ण रूप से निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज ही धारण करते हैं।

प्रश्न १८– वैराग्य चिंतवन से क्या होता है ?

उत्तर – वैराग्य चिंतवन से समता रूपी सुख प्रगट होता है।

प्रश्न १९– सम्यक्त्व सहित बारह भावनाओं के चिंतन से क्या लाभ है ?

उत्तर – सम्यक्त्व सहित बारह भावनाओं के चिंतन से पूर्व में बांधे हुए कर्मों की निर्जरा होती है। नए कर्मों का आना और बंधना रुकता है अर्थात् संवर होता है।

प्रश्न २० – ग्रैवेयक क्या है ?

उत्तर – सोलहवें स्वर्ग से ऊपर और प्रथम अनुदिश से नीचे देवों के रहने के स्थान को ग्रैवेयक कहते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(क) रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये –

(१) पाँचवीं ढाल में ------- का वर्णन है। (बारह अनुप्रेक्षाओं)

(२) मुनि ------- होते हैं। (सकलव्रती)

(३) जोबन, गृह, गोधन नारी ------- आज्ञाकारी। (हय गय जन)

(४) इंद्रिय आदि के विषय भोग ------- के समान हैं। (इन्द्रधनुष)

(५) किनहू न करौ न धरै को, ------- न हरै को। (षड्द्रव्यमयी)

(ख) सत्य–असत्य लिखिये –

(१) बारह भावनायें वैराग्य उत्पन्न करने के लिए माता के समान हैं। (सत्य)

(२) आयु पूर्ण होने पर मरण से कोई नहीं बचा सकता, ऐसा एकत्व भावना में बताया है। (असत्य)

(३) शुभ–अशुभ कर्मों के फल को यह जीव अपने परिवार के साथ भोगता है। (असत्य)

(४) चतुर्गति रूप संसार में बहुत सुख भरा हुआ है और यह जीव सुखपूर्वक भ्रमण करता है। (असत्य)

(५) दुर्लभ सम्यग्ज्ञान को मुनिराजों ने अपने आत्मा में धारण किया है। (सत्य)

प्रश्न २ – लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) बारह भावनाओं के नाम लिखिए।

उत्तर – अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ, धर्म भावना।

(ख) योगों की चंचलता से क्या होता है ?

उत्तर – योगों की चंचलता से कर्मों का आस्रव होता है।

(ग) परावर्तन कितने होते हैं ?

उत्तर – परावर्तन पाँच होते हैं – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव।

(घ) सुर–असुर से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – देवगति नामकर्म के उदय वाले भवन वासी, कल्पवासी, वैमानिक देवों को सुर – असुर कहते हैं।

(ङ) द्रव्य और भाव योग किसे कहते हैं ?

उत्तर – मन, वचन, काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में कम्पन होना द्रव्ययोग तथा कर्म, नोकर्म के ग्रहण में निमित्तरूप जीव की शक्ति को भावयोग कहते हैं।

(च) अशुभ उपयोग क्या है ?

उत्तर – हिंसादि में अथवा कषाय, पाप और व्यसनादि निंदनीय कार्यों में प्रवृत्ति होना अशुभ उपयोग है।

(छ) शुभ उपयोग क्या है ?

उत्तर – देव आराधना, स्वाध्याय, संयम, दान, दया, अणुव्रत–महाव्रतादि के शुभभाव होना शुभोपयोग है।

(ज) सकल व्रत क्या है ?

उत्तर – ५ महाव्रत, ५ समिति, षट्आवश्यक, ५ इन्द्रिय जय, केशलोंच, अस्नान, भूमिशयन, अदन्तधावन, खड़े–खड़े आहार, दिन में एक बार आहार जल तथा नग्नता अथवा निर्ग्रन्थता का पालन करना व्यवहार सकलव्रत है और रत्नत्रय की एकतारूप आत्मस्वभाव में स्थिर होना निश्चय सकलव्रत है।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) पाँचवीं ढाल का सारांश लिखिये।

उत्तर – यह बारह भावनाएँ चारित्रगुण की आंशिक शुद्ध पर्यायें हैं इसलिये वे सम्यक्दृष्टि जीव को ही हो सकती हैं। सम्यक् प्रकार यह बारह प्रकार की भावनाएँ भाने से वीतरागता की वृद्धि होती है। उन बारह भावनाओं का चिंतन मुख्य रूप से तो वीतरागी दिगम्बर जैन मुनिराज को ही होता है तथा गौणरूप से सम्यक्दृष्टि को भी होता है। जिस प्रकार पवन के लगने से अग्नि भभक उठती है, उसी प्रकार अन्तरंग परिणामों की शुद्धता सहित इन भावनाओं का चिंतन करने से समताभाव प्रगट होता है। उससे मोक्षसुख प्राप्त होता है। स्वोन्मुखतापूर्वक इन भावनाओं से संसार, शरीर और भोगों के प्रति विशेष उपेक्षा अर्थात् उदासीनता होती है और आत्मा के परिणामों की निर्मलता बढ़ती है। इन बारह भावनाओं का स्वरूप विस्तार से जानना हो तो स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा, ज्ञानार्णव आदि ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये। सम्यग्दर्शन के बिना शरीरादि को बुरा जानकर, अहितकारी मानकर उनसे उदास होने का नाम अनुप्रेक्षा नहीं है, क्योंकि यह तो जिस प्रकार पहले किसी को मित्र मानता था तब उसके प्रति राग था और फिर उसके अवगुण देखकर उसके प्रति उदासीन हो गया। उसी प्रकार पहले शरीरादि से राग था, किन्तु बाद में उनके अनित्यादि अवगुण देखकर उदासीन हो गया परन्तु ऐसी उदासीनता तो द्वेषरूप है। अपने तथा शरीरादि के यथावत् स्वरूप को जानकर, भ्रम का निवारण करके, उन्हें भला जानकर राग न करना तथा बुरा जानकर द्वेष न करना – ऐसी यथार्थ उदासीनता के हेतु अनित्य, अशरण आदि भावनाओं का यथार्थ चिंतन करना ही सच्ची अनुप्रेक्षा है।

(ख) किसी एक छंद को शुद्धता पूर्वक लिखकर व्याख्या कीजिये।

(ग) ''बारह भावनायें'' विषय पर निबंध लिखिये। पाँचवीं ढाल में से किसी एक भावना का छंद लिखिये। अथवा (ग) १२ भावना के नाम लिखकर लोकभावना को छंदसहित स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – (ख और ग – उक्त प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोजें)

छटवीं ढाल

(हरिगीतिका छन्द)

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य महाव्रत के लक्षण

षट्काय जीव न हननतैं, सब विध दरवहिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी ।।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहैं ।
अठदशसहस विध शील धर, चिद्‌ब्रह्म में नित रमि रहैं ।। १ ।।

अन्वयार्थ :- **(षट्काय जीव)** छह काय के जीवों को **(न हननतैं)** घात न करने के भाव से **(सब विध)** सर्व प्रकार की **(दरवहिंसा)** द्रव्यहिंसा **(टरी)** दूर हो जाती है और **(रागादि भाव)** रागद्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों को **(निवारतैं)** दूर करने से **(भावित हिंसा)** भाव हिंसा भी **(न अवतरी)** नहीं होती **(जिनके)** उन मुनियों को **(लेश)** किंचित् **(मृषा)** झूठ **(न)** नहीं होता **(जल)** पानी और **(मृण)** मिट्टी **(हू)** भी **(बिना दीयो)** दिये बिना **(न गहैं)** ग्रहण नहीं करते [तथा] **(अठदशसहस)** अठारह हजार **(विध)** प्रकार के **(शील)** शील को– ब्रह्मचर्य को **(धर)** धारण करके **(नित)** सदा **(चिद्‌ब्रह्म में)**चैतन्यस्वरूप आत्मा में **(रमि रहैं)** लीन रहते हैं।

परिग्रह त्याग महाव्रत, ईर्या समिति और भाषा समिति

अंतर चतुर्दस भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं ।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं ।।
जग– सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं ।
भ्रमरोग हर जिनके वचन–मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ।। २ ।।

अन्वयार्थ :- [वे वीतरागी दिगम्बर जैन मुनि] **(चतुर्दस भेद)** चौदह प्रकार के **(अंतर)** अन्तरंग तथा **(दसधा तैं)** दस प्रकार के **(बाहिर)** बहिरंग **(संग)** परिग्रह से **(टलैं)** रहित होते हैं। **(परमाद)** प्रमाद–असावधानी **(तजि)** छोड़कर **(चौकर)** चार हाथ **(मही)** जमीन **(लखि)** देखकर **(ईर्या)** ईर्या **(समिति तैं)** समिति से **(चलैं)** चलते हैं और **(जिनके)** जिन मुनिराजों के **(मुखचन्द्र तैं)** मुख रूपी चन्द्र से **(जग सुहितकर)** जगत का सच्चा हित करने वाला तथा **(सब अहितहर)** सर्व अहित का नाश करनेवाला **(श्रुति सुखद)** सुनने में प्रिय लगे ऐसा **(संशय)** समस्त संशयों का **(हरैं)** नाशक और **(भ्रम रोगहर)** मिथ्यात्वरूपी रोग को हरनेवाला **(वचन अमृत)** वचन रूपी अमृत **(झरैं)** झरता है।

एषणा, आदान–निक्षेपण और प्रतिष्ठापन समिति

छ्यालीस दोष बिना सुकुल श्रावकतनैं घर अशन को ।
लैं तप बढ़ावन हेतु, नहिं तन, पोषते तजि रसन को ।।
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं ।
निर्जन्तु थान विलोकि तन, मल मूत्र श्लेष्म परिहरैं ।। ३ ।।

अन्वयार्थ :- [वीतरागी मुनि] **(सुकुल)** उत्तम कुलवाले **(श्रावकतनैं)** श्रावक के **(घर)** घर और **(रसन को)** छहों रस अथवा एक–दो रसों को **(तजि)** छोड़कर **(तन)** शरीर को **(नहिं पोषते)** पुष्ट न

करते हुए मात्र **(तप)** तप की **(बढ़ावन हेतु)** वृद्धि करने के हेतु से [आहार के] **(छ्यालीस)** छ्यालीस **(दोष बिना)** दोषों को दूर करके **(अशन को)** भोजन को **(लैं)** ग्रहण करते हैं। **(शुचि)** पवित्रता के **(उपकरण)** साधन कमण्डल को **(ज्ञान)** ज्ञान के **(उपकरण)** साधन शास्त्र को [तथा] **(संयम)** संयम के **(उपकरण)** साधन पिच्छी को **(लखिकैं)** देखकर **(गहैं)** ग्रहण करते हैं [और] **(लखिकैं)** देखकर **(धरैं)** रखते हैं [और] **(तन)** शरीर का **(मल)** विष्ठा **(मूत्र)** पेशाब **(श्लेष्म)** थूक को **(निर्जन्तु थान)** जीव रहित स्थान **(विलोकि)** देखकर **(परिहरैं)** त्यागते हैं।

मुनियों की तीन गुप्ति और पाँच इन्द्रियों पर विजय

सम्यक् प्रकार निरोध मन वच काय, आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गंध तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने।
तिनमें न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ :– [वीतरागी मुनि] **(मन वच काय)** मन, वचन, काया का **(सम्यक् प्रकार)** भलीभाँति **(निरोध)** निरोध करके, जब **(आतम)** अपने आत्मा का **(ध्यावते)** ध्यान करते हैं तब **(तिन)** उन मुनियों की **(सुथिर)** सुस्थिर शांत **(मुद्रा)** अवस्था **(देखि)** देखकर उन्हें **(उपल)** पत्थर समझकर **(मृगगण)** हिरन अथवा चौपाये प्राणियों के समूह **(खाज)** अपनी खाज खुजली को **(खुजावते)** खुजाते हैं। [जो] **(शुभ)** प्रिय और **(असुहावने)** अप्रिय [पाँच इन्द्रियों संबंधी] **(रस)** पाँच रस **(रूप)** पाँच वर्ण **(गंध)** दो गंध **(फरस)** आठ प्रकार के स्पर्श **(अरु)** और **(शब्द)** शब्द **(तिनमें)** उन सबमें **(राग विरोध)** राग या द्वेष **(न)** मुनि को नहीं होते [इसलिये वे मुनि] **(पंचेन्द्रिय जयन)** पाँच इन्द्रियों को जीतने वाला अर्थात् जितेन्द्रिय **(पद)** पद **(पावने)** प्राप्त करते हैं।

मुनियों के छह आवश्यक और शेष सात मूलगुण

समता सम्हारैं, थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुतिरति, करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को ॥
जिनके न न्हौन, न दंतधोवन, लेश अम्बर आवरन।
भूमाहिं पिछली रयनि में कछु शयन एकासन करन ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ :–[वीतरागी मुनि] **(नित)** सदा **(समता)** सामायिक **(सम्हारैं)** सम्हाल कर करते हैं **(थुति)** स्तुति **(उचारैं)** बोलते हैं **(जिनदेव को)** जिनेन्द्र भगवान की **(वन्दना)** वन्दना करते हैं **(श्रुतिरति)** स्वाध्याय में प्रेम **(करैं)** करते हैं **(प्रतिक्रम)** प्रतिक्रमण **(करैं)** करते हैं, **(तन)** शरीर की **(अहमेव को)** ममता को **(तजैं)** छोड़ते हैं **(जिनके)** जिन मुनियों को **(न्हौन)** स्नान और **(दंतधोवन)** दाँतों को स्वच्छ करना **(न)** नहीं होता **(अम्बर आवरन)** शरीर ढँकने के लिए वस्त्र **(लेश)** किंचित् भी उनके **(न)** नहीं होता [और] **(पिछली रयनि में)** रात्रि के पिछले भाग में **(भूमाहिं)** धरती पर **(एकासन)** एक करवट **(कछु)** कुछ समय तक **(शयन)** शयन **(करन)** करते हैं।

मुनियों के शेष गुण तथा राग द्वेष का अभाव

इक बार दिन में लें आहार, खड़े अलप निज-पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह सौं, लगे निज ध्यान में ॥

अरि मित्र महल मसान कञ्चन, काँच निन्दन थुति करन।
अर्घावतारन असि प्रहारन में सदा समता धरन ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ :- [वे वीतरागी मुनि] **(दिन में)** दिन में **(इकबार)** एक बार **(खड़े)** खड़े रहकर और **(निज पान में)** अपने हाथ में रखकर **(अलप)** थोड़ा सा **(आहार)** आहार **(लें)** लेते हैं **(कचलोंच)** केशलोंच **(करत)** करते हैं **(निज ध्यान में)** अपने आत्मा के ध्यान में **(लगे)** तत्पर होकर **(परिषह सौं)** बाईस प्रकार के परिषहों से **(न डरत)** नहीं डरते [और] **(अरि मित्र)** शत्रु या मित्र **(महल मसान)** महल या श्मशान **(कञ्चन काँच)** सोना या काँच **(निन्दन थुति करन)** निन्दा या स्तुति करने वाले **(अर्घावतारन)** पूजा करने वाले और **(असि प्रहारन)** तलवार से प्रहार करने वाले उन सबमें **(सदा)** सदा **(समता)** समताभाव **(धरन)** धारण करते हैं।

मुनियों के तप, धर्म, विहार तथा स्वरूपाचरण चारित्र

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ :- [वे वीतरागी मुनि सदा] **(द्वादश)** बारह प्रकार के **(तप तपैं)** तप करते हैं **(दश)** दस प्रकार के **(वृष)** धर्म को **(धरैं)** धारण करते हैं [और] **(रतनत्रय)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र का **(सदा)** सदा **(सेवैं)** सेवन करते हैं। **(मुनि साथ में)** मुनियों के संघ में **(वा)** अथवा **(एक)** अकेले **(विचरैं)** विचरते हैं और **(कदा)** किसी भी समय **(भवसुख)** सांसारिक सुखों की **(नहिं चहैं)** इच्छा नहीं करते। **(यों)** इस प्रकार **(सकल संयम चरित)** सकल संयम चारित्र **(है)** है **(जिस)** जिस चारित्र [स्वरूप में रमणतारूप चारित्र] के **(होत)** प्रगट होने से **(आपनी)** अपने आत्मा की **(निधि)** ज्ञानादिक सम्पत्ति **(प्रगटै)** प्रगट होती है [तथा] **(पर की)** पर वस्तुओं की ओर की **(सब)** सर्व प्रकार की **(प्रवृत्ति)** प्रवृत्ति **(मिटै)** मिट जाती है। [अब ऐसे] **(स्वरूपाचरन)** स्वरूपाचरण चारित्र [का वर्णन] **(सुनिये)** सुनो।

स्वरूपाचरण चारित्र (शुद्धोपयोग) का वर्णन

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं निज भाव को न्यारा किया ॥
निज मांहि निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ :- **(जिन)** जो वीतरागी मुनिराज **(परम)** अत्यन्त **(पैनी)** तीक्ष्ण **(सुबुधि)** सम्यग्ज्ञान अर्थात् भेदविज्ञान रूपी **(छैनी)** छैनी **(डारि)** डाल कर **(अन्तर)** अन्तरंग में **(भेदिया)** भेद करके **(निज भाव को)** आत्मा के वास्तविक स्वरूप को **(वरणादि)** वर्ण, रस, गन्ध तथा स्पर्श रूप द्रव्यकर्म से **(अरु)** और **(रागादितैं)** राग-द्वेषादिरूप भाव कर्म से **(न्यारा किया)** भिन्न करके **(निजमांहि)** अपने आत्मा में **(निज के हेतु)** अपने लिये **(निजकर)** अपने द्वारा **(आपको)** आत्मा को **(आपै)** स्वयं अपने से **(गह्यो)** ग्रहण करते हैं तब **(गुण)** गुण **(गुणी)** गुणी **(ज्ञाता)** ज्ञाता, आत्मा में **(ज्ञेय)** ज्ञान का विषय और **(ज्ञान मँझार)** ज्ञान में **(कुछ भेद न रह्यो)** किंचित्मात्र भेद [विकल्प] नहीं रहता।

स्वरूपाचरणचारित्र (शुद्धोपयोग) का वर्णन

जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प, वच भेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म, चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ।।
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृग ज्ञान व्रत ये, तीनधा एकै लसा ।। ९ ।।

अन्वयार्थ :– **(जहँ)** जिस स्वरूपाचरण चारित्र में **(ध्यान)** ध्यान **(ध्याता)** ध्याता और **(ध्येय को)** ध्येय–इन तीन के **(विकल्प)** भेद **(न)** नहीं होते तथा **(जहाँ)** जहाँ **(वच)** वचन का **(भेद न)** विकल्प नहीं होता **(तहाँ)** वहाँ तो **(चिद्भाव)** आत्मा का स्वभाव ही **(कर्म)** कर्म **(चिदेश)** आत्मा ही **(करता)** कर्ता **(चेतना किरिया)** चेतना क्रिया **(तीनों)** कर्ता, कर्म और क्रिया– यह तीनों **(अभिन्न)** भेदरहित एक **(अखिन्न)** अखण्ड [बाधारहित] हो जाते हैं और **(शुद्ध उपयोग की)** शुद्ध उपयोग की **(निश्चल)** निश्चल **(दशा)** पर्याय **(प्रगटी)** प्रगट होती है **(जहाँ)** जिसमें **(दृग ज्ञान व्रत)** सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र **(ये तीनधा)** यह तीनों **(एकै)** एकरूप– अभेदरूप से **(लसा)** शोभायमान होते हैं।

स्वरूपाचरण चारित्र का लक्षण और निर्विकल्प ध्यान

परमाण नय निक्षेप को न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग ज्ञान सुख बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो बिखै ।।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित् पिंड चंड अखंड सुगुणकरंड च्युत पुनि कलनितैं ।। १० ।।

अन्वयार्थ :– [उस स्वरूपाचरणचारित्र के समय मुनियों के] **(अनुभव में)** आत्मानुभव में **(परमाण)** प्रमाण **(नय)** नय और **(निक्षेप को)** निक्षेप का विकल्प **(उद्योत)** प्रगट **(न दिखै)** दिखाई नहीं देता [परन्तु ऐसा विचार होता है कि] **(मैं)** मैं **(सदा)** सदा **(दृग ज्ञान सुख बलमय)** अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यमय हूँ **(मो विखै)** मेरे स्वरूप में **(आन)** अन्य राग द्वेषादि **(भाव जु)** भाव **(नहिं)** नहीं हैं, **(मैं)** मैं **(साध्य)** साध्य **(साधक)** साधक तथा **(कर्म)** कर्म **(अरु)** और **(तसु)** उसके **(फलनितैं)** फलों के **(अबाधक)** विकल्प रहित **(चित् पिंड)** ज्ञान दर्शन चेतना स्वरूप **(चंड)** निर्मल तथा ऐश्वर्यवान **(अखंड)** अखंड **(सुगुण करंड)** सुगुणों का भंडार **(पुनि)** और **(कलनितैं)** अशुद्धता से **(च्युत)** रहित हूँ।

स्वरूपाचरणचारित्र और अरिहंत दशा

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्रकैं नाहीं कह्यो ।।
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि, चउघाति विधि कानन दह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञानकरि, भविलोक को शिवमग कह्यो ।। ११ ।।

अन्वयार्थ :– [स्वरूपाचरणचारित्र में] **(यों)** इस प्रकार **(चिन्त्य)** चिंतवन करके **(निज में)** आत्मस्वरूप में **(थिर भये)** लीन होने पर **(तिन)** उन मुनियों को **(जो)** जो **(अकथ)** कहा न जा सके [ऐसा वचन से पार] **(आनंद)** आनन्द **(लह्यो)** होता है **(सो)** वह आनन्द **(इन्द्र)** इन्द्र को **(नाग)** नागेन्द्र को **(नरेन्द्र)** चक्रवर्ती को **(वा अहमिन्द्र कैं)** या अहमिन्द्र को **(नाहीं कह्यो)** कहने में नहीं आया [नहीं

होता] **(तब ही)** वह स्वरूपाचरणचारित्र प्रगट होने के पश्चात् जब **(शुकल ध्यानाग्नि करि)** शुक्ल ध्यानरूपी अग्नि द्वारा **(चउघाति विधि कानन)** चार घातिया रूपी कर्मों का वन **(दह्यो)** जल जाता है और **(केवलज्ञानकरि)** केवलज्ञान से **(सब)** तीन काल और तीन लोक में होने वाले समस्त पदार्थों तथा पर्यायों को **(लख्यो)** प्रत्यक्ष जान लेते हैं [तब] **(भविलोक को)** भव्य जीवों को **(शिवमग)** मोक्षमार्ग **(कह्यो)** बतलाते हैं।

सिद्धदशा (सिद्ध स्वरूप) का वर्णन

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमांहि अष्टम भू वसैं ।
वसु कर्म विनसैं सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ :- (पुनि) केवलज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् **(शेष)** शेष चार **(अघाति विधि)** अघातिया कर्मों का **(घाति)** नाश करके **(छिनमांहि)** कुछ ही समय में **(अष्टम भू)** आठवीं पृथ्वी-ईषत् प्राग्भार-मोक्ष क्षेत्र अर्थात् लोक के अग्रभाग में **(वसैं)** निवास करते हैं [उनको] **(वसु कर्म)** आठ कर्मों का **(विनसैं)** नाश हो जाने से **(सम्यक्त्व आदिक)** सम्यक्त्वादि **(सब)** समस्त **(वसु सुगुण)** आठ मुख्य गुण **(लसैं)** शोभायमान होते हैं। [ऐसे सिद्ध होने वाले मुक्तात्मा] **(संसार खार अपार पारावार)** संसाररूपी खारे तथा अगाध समुद्र को **(तरि)** पार करके **(तीरहिं)** किनारे पर **(गये)** पहुँच जाते हैं और **(अविकार)** विकाररहित **(अकल)** शरीररहित **(अरूप)** रूपरहित **(शुचि)** शुद्ध-निर्दोष **(चिद्रूप)** दर्शन-ज्ञान-चेतनास्वरूप तथा **(अविनाशी)** नित्य- स्थायी **(भये)** होते हैं।

मोक्षदशा का वर्णन

निजमांहि लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहिहैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव, नरभव पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमण पंच प्रकार तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ :- (निजमांहि) उन सिद्ध भगवान के आत्मा में **(लोक-अलोक)** लोक तथा अलोक के **(गुण परजाय)** गुण और पर्यायें **(प्रतिबिम्बित थये)** झलकने लगते हैं [अर्थात् ज्ञात होने लगते हैं वे] **(यथा)** जिस प्रकार **(शिव)** मोक्षरूप से **(परिणये)** परिणमित हुए हैं **(तथा)** उसी प्रकार **(अनन्तानन्त काल)** अनन्त-अनन्त काल तक **(रहिहैं)** रहेंगे। **(जे)** जिन **(जीव)** जीवों ने **(नरभव पाय)** पुरुष पर्याय प्राप्त करके **(यह)** यह मुनिपद आदि की प्राप्ति रूप **(कारज)** कार्य **(किया)** किया है, वे जीव **(धनि धन्य हैं)** महान धन्यवाद के पात्र हैं और **(तिनही)** उन्हीं जीवों ने **(अनादि)** अनादिकाल से चले आ रहे **(पंच प्रकार)** पाँच प्रकार के परावर्तनरूप **(भ्रमण)** संसार परिभ्रमण को **(तजि)** छोड़कर **(वर)** उत्तम **(सुख)** सुख **(लिया)** प्राप्त किया है।

रत्नत्रय का फल और आत्महित में प्रवृत्ति का उपदेश

मुख्योपचार दु भेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुयश जल जग मल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस ठानि, यह सिख आदरौ ।

जबलौं न रोग जरा गहै, तबलौं झटिति निज हित करौ ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ :- **(बड़भागि)** जो महा पुरुषार्थी जीव **(यों)** इस प्रकार **(मुख्योपचार)** निश्चय और व्यवहार **(दुभेद)** ऐसे दो प्रकार के **(रत्नत्रय)** रत्नत्रय को **(धरैं अरु धरेंगे)** धारण करते हैं और करेंगे**(ते)** वे **(शिव)** मोक्ष **(लहैं)** प्राप्त करते हैं और **(तिन)** उन जीवों का **(सुयश-जल)** सुकीर्तिरूपी जल **(जग-मल)** संसाररूपी मैल का **(हरैं)** नाश करता है **(इमि)** ऐसा **(जानि)** जानकर **(आलस)** प्रमाद [स्वरूप में असावधानी] **(हानि)** छोड़कर **(साहस)** पुरुषार्थ **(ठानि)** करने का संकल्प कर **(यह)** यह **(सिख)** शिक्षा-उपदेश **(आदरौ)** ग्रहण करो कि **(जब लौं)** जब तक **(रोग जरा)** रोग या वृद्धावस्था **(न गहै)** न आये **(तबलौं)** तब तक **(झटिति)** शीघ्र **(निज हित)** आत्मा का हित **(करौ)** कर लेना चाहिये।

अन्तिम सीख

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निज पद बेइये ॥
कहा रच्यो पर पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै ।
अब 'दौल'! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ :- **(यह)** यह **(राग आग)** रागरूपी अग्नि **(सदा)** अनादिकाल से निरन्तर जीव को **(दहै)** जला रही है, **(तातैं)** इसलिये **(समामृत)** समतारूप अमृत का **(सेइये)** सेवन करना चाहिये **(विषय कषाय)** विषय-कषाय का **(चिर भजे)** अनादिकाल से सेवन किया है **(अब तो)** अब तो **(त्याग)** उसका त्याग करके **(निजपद)** आत्म स्वरूप को **(बेइये)** जानना चाहिये [प्राप्त करना चाहिये] **(पर पद में)** पर पदार्थों में-परभावों में **(कहा)** क्यों **(रच्यो)** आसक्त [सन्तुष्ट] हो रहा है ? **(यहै)** यह **(पद)** पद **(तेरो)** तेरा **(न)** नहीं है। तू **(दुख)** दुःख **(क्यों)** किसलिये **(सहै)** सहन करता है ? **(दौल !)** हे दौलतराम ! **(अब)** अब **(स्वपद)** अपने आत्मपद [सिद्ध पद में] **(रचि)** लगकर **(सुखी)** सुखी **(होउ)** होओ ! **(यहै)** यह **(दाव)** अवसर **(मत चूकौ)** न गँवाओ !

ग्रन्थ-रचना का काल और उसमें आधार

इक नव वसु एक वर्ष की तीज शुक्ल वैशाख ।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ॥
लघु धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव कूल ॥ १६ ॥

भावार्थ :- पंडित बुधजनकृत छहढाला के कथन का आधार लेकर मैंने (दौलतराम ने) विक्रम संवत् १८९१ वैशाख शुक्ला ३ (अक्षय तृतीया) के दिन इस छहढाला ग्रन्थ की रचना की है। मेरी अल्पबुद्धि तथा प्रमादवश उसमें कहीं शब्द की या अर्थ की भूल रह गई हो तो बुद्धिमान उसे सुधारकर पढ़ें, ताकि जीव संसार समुद्र को पार करने में शक्तिमान हो।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ - भाव लिंगी मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर - तीन कषाय चौकड़ी के अभाव रूप जिनको शुद्ध परिणति प्रगट हुई है, जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित एकाग्रता पूर्वक स्वरूप में रमण करते हैं, जो छटवें-सातवें गुणस्थानवर्ती हैं उन्हें भाव लिंगी मुनि कहते हैं।

प्रश्न २ – द्रव्य लिंगी मुनि किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिनको निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान की प्रगटता नहीं है किन्तु जो अट्ठाईस मूल गुणों का निरतिचार पालन करते हैं उन्हें द्रव्य लिंगी मुनि कहते हैं।

प्रश्न ३ – प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर – किए हुए दोषों के शोधन करने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न ४ – स्वाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्वाध्याय शब्द तीन पदों से मिलकर बना है। स्व–अधि–आय। स्व = अपना, अधि = ज्ञान, आय = लाभ अर्थात् जिस क्रिया से आत्मज्ञान का लाभ होता है उसे स्वाध्याय कहते हैं। अपने आत्म स्वरूप को जानकर, पहिचानकर, उसमें लीनतारूप शुद्धि से आत्मज्ञान का लाभ होता है अतः भूमिकानुसार यह प्रगट शुद्धि ही निश्चय स्वाध्याय है। आत्मज्ञान में कारणभूत वीतरागता पोषक जिनवाणी को विनयभक्ति पूर्वक पढ़कर, आत्महित हेतु अध्ययन, मनन, चिंतन करना आदि क्रिया व्यवहार स्वाध्याय है।

प्रश्न ५ – प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान और भविष्यकाल के दोषों को दूर करने के लिए जो उपवास तथा सावद्य (पाप क्रियाओं) का त्याग किया जाता है उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न ६ – कायोत्सर्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – निद्रा पर विजय प्राप्त करने के लिये, व्रतों में लगे अतिचारों की विशुद्धि के लिये, कर्मों की निर्जरा के लिये, तप की वृद्धि के लिये निश्चल खड़े होना और शरीर से ममत्व भाव त्याग कर आत्मस्थ होना कायोत्सर्ग है।

प्रश्न ७ – तप किसे कहते हैं, तप के कितने भेद हैं ?

उत्तर – इच्छाओं के निरोध को तप कहते हैं। तप के दो भेद हैं – १. बाह्य तप २. अभ्यन्तर तप। बाह्य तप के ६ भेद हैं – १. अनशन २. अवमौदर्य (ऊनोदर) ३. वृत्ति परिसंख्यान ४. रस परित्याग ५. विविक्त शय्यासन ६. कायक्लेश।

अभ्यन्तर तप के छह भेद हैं – १. प्रायश्चित्त २. विनय ३. वैयावृत्य ४. स्वाध्याय ५. व्युत्सर्ग ६. ध्यान।

प्रश्न ८ – धर्म के कितने लक्षण हैं ?

उत्तर – धर्म के १० लक्षण हैं – १. उत्तम क्षमा २. उत्तम मार्दव ३. उत्तम आर्जव ४. उत्तम सत्य ५. उत्तम शौच ६.उत्तम संयम ७. उत्तम तप ८. उत्तम त्याग ९. उत्तम आकिंचन्य १०. उत्तम ब्रह्मचर्य।

प्रश्न ९ – ध्यान, ध्याता, ध्येय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर – **ध्यान –** अपने चित्त की वृत्ति को सब ओर से रोककर एक ही विषय में लगाना ध्यान है।

ध्याता – ध्यान करने वाले को ध्याता कहते हैं।

ध्येय – जिसका ध्यान किया जाता है वह ध्येय है।

प्रश्न १०– आज्ञा विचय धर्मध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – धर्म अधर्म आदि अजीव द्रव्यों के स्वभाव का चिंतवन करना। जैन सिद्धांत में वर्णित वस्तु स्वरूप को सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा की प्रधानता से यथासंभव परीक्षा पूर्वक चिंतवन करना आज्ञा विचय धर्म ध्यान है।

प्रश्न ११– अपाय विचय धर्म ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिनमत को प्राप्त करके कर्मों का नाश किन उपायों से हो, ऐसा चिंतवन करना अपाय विचय धर्म ध्यान है।

प्रश्न १२– विपाक विचय धर्म ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त से अष्ट कर्मों के विपाक द्वारा आत्मा की क्या–क्या सुख दुःखादि रूप अवस्था होती है उसका चिंतवन करना विपाक विचय धर्म ध्यान है।

प्रश्न १३– संस्थान विचय धर्म ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तम – लोक के आकार तथा उसकी दशा का विचार करना संस्थान विचय धर्म ध्यान है। पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ, रूपातीत इसके चार भेद हैं।

प्रश्न १४– शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – कषाय रूपी मल का क्षय अथवा उपशम होने से शुक्ल ध्यान होता है इसलिये आत्मा के शुचि गुण के संबंध से इसे शुक्ल ध्यान कहते हैं; अर्थात् रागादि रहित स्वसंवेदन ज्ञान को आगम भाषा में शुक्ल ध्यान कहा है।

प्रश्न १५– पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – द्रव्य, गुण और पर्याय के भिन्नपने को 'पृथक्त्व' कहते हैं। स्व शुद्धात्मा की अनुभूति जिसका लक्षण है ऐसे भावश्रुत को और उसके (स्वशुद्धात्मा के) वाचक अंतर्जल्प रूप वचन को 'वितर्क' कहते हैं। इच्छा के बिना एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक वचन से दूसरे वचन में, एक योग से दूसरे योग में जो परिणमन होता है उसे वीचार कहते हैं। यद्यपि ध्यान करने वाला निज शुद्धात्मा का संवेदन छोड़कर बाह्य पदार्थों का चिंतन नहीं करता तो भी उसे जितने अंश में स्वरूप स्थिरता नहीं है उतने अंश में इच्छा के बिना विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस कारण इसे पृथक्त्व वितर्क वीचार कहते है।

प्रश्न १६– एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – निज शुद्धात्म द्रव्य में या विकार रहित आत्मसुख अनुभव रूप पर्याय में, या उपाधि रहित स्वसंवेदन गुण में– इन तीनों में से जिस एक द्रव्य, गुण या पर्याय में प्रवृत्त हो गया और उसी में वितर्क नामक निजात्मानुभव रूप भावश्रुत के बल से स्थिर होकर अवीचार अर्थात् द्रव्य, गुण पर्याय में परावर्तन नहीं करता वह एकत्व वितर्क शुक्ल ध्यान कहलाता है।

प्रश्न १७– सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्ल ध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – सूक्ष्मकाय की क्रिया के व्यापार रूप और अप्रतिपाति (जिससे गिरना नहीं हो) उसे सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति शुक्ल ध्यान कहते हैं।

प्रश्न १८– व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें श्वासोच्छ्वास का संचार तथा सब प्रकार के मनोयोग, वचनयोग, काययोग के द्वारा होने वाली आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन अर्थात् हलन–चलन आदि क्रिया रुक जाती है अर्थात् सर्व क्रिया की निवृत्ति हुई हो उसे व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्ल ध्यान कहते हैं।

प्रश्न १९– सकल संयमाचरण चारित्र क्या है ?

उत्तर – भावलिंगी मुनि शुद्धात्म स्वरूप में लीन रहकर सदा बारह प्रकार के तप और दस धर्म को धारण करते हैं, रत्नत्रय का सेवन करते हैं, मुनियों के संघ में या अकेले विचरण करते हैं, किसी भी समय सांसारिक सुखों की इच्छा नहीं करते इसे सकल संयमाचरण चारित्र कहते हैं।

प्रश्न २०– स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसके प्रगट होने से आत्मा की अनंत दर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य आदि शक्तियों का पूर्ण विकास होता है और पर पदार्थ के ओर की सर्वप्रकार की प्रवृत्ति दूर होती है वह स्वरूपाचरण चारित्र है।

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – रिक्त स्थान भरिये –

(क) छह काय के जीवों का घात न करने से सर्व प्रकार की ----- दूर हो जाती है। (द्रव्यहिंसा/भावहिंसा)

(ख) अंतर ----- भेद बाहिर, संग ----- तैं टलैं। (चतुर्दस/ दसधा/नवधा)

(ग) -----, ----- उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं। (अशुचि अज्ञान यम/शुचि ज्ञान संयम)

(घ) वीतरागी मुनिराज अत्यंत तीक्ष्ण ----- और भेदविज्ञान रूप ----- डालकर ----- में भेद करते हैं। (सम्यग्ज्ञान, छैनी, अन्तरंग/ज्ञान,पैनी, बहिरंग)

(ङ.) सत्य–असत्य कथन चुनिये और हाँ/नहीं में उत्तर दीजिये –

(१) स्वरूपाचरण चारित्र छटवें गुणस्थान में प्रगट हो जाता है। (हाँ/नहीं)

(२) शुभोपयोग द्वारा कर्म और आत्मा अलग–अलग हो जाते हैं। (हाँ/नहीं)

(३) मैं सदा अनन्त दर्शन–अनन्त ज्ञान–अनन्त सुख और अनन्तवीर्यमय हूँ। (हाँ/नहीं)

(४) सर्वप्रकार के विकल्पों से रहित निर्विकल्प आत्मस्थिरता को स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। (हाँ/नहीं)

(५) संसार खार अपार पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप विनाशी भये ॥ (हाँ/नहीं)

प्रश्न २ – लघुउत्तरीय प्रश्न –

(क) निम्नलिखित पंक्तियाँ पूर्ण कीजिये –

(१) पुनि घाति ------- सब लसैं। (छंद याद करके पूर्ण करें)

(२) जहँ ध्यान ध्याता ------- किरिया तहाँ। (छंद याद करके पूर्ण करें)

(३) समता सम्हारें ------- अहमेव को। (छंद याद करके पूर्ण करें)

(४) जिनके न लेश ------- रमि रहैं। (छंद याद करके पूर्ण करें)

(ख) मुनिराज के मुखचंद्र से कैसी वाणी निकलती है ?

उत्तर – मुनिराज के मुखचंद्र से अमृत के समान मीठी वाणी निकलती है।

(ग) अहिंसा और सत्य महाव्रत के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर – अहिंसा महाव्रत – छहकाय के जीवों का घात न करने का भाव द्रव्य अहिंसा महाव्रत है। राग–द्वेष, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के भावों से दूर रहना भाव अहिंसा महाव्रत है।

सत्य महाव्रत – स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार से झूठ न बोलना सत्य महाव्रत है।

(घ) समिति क्या है ?

उत्तर –जीवों की रक्षार्थ यत्नाचार प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। मुनिराज अति आसक्ति के अभाव रूप गमन आदि में प्रमाद रूप प्रवृत्ति नहीं करते यही सच्ची समिति है।

ईर्या भाषा एषणा, पुनि क्षेपण आदान।
प्रतिष्ठापना जुतक्रिया, पाँचों समिति विधान॥

(ङ) गुप्ति का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – स्वरूपलीनता रूप वीतराग भाव होने पर मन, वचन, काय की प्रवृत्ति स्वयमेव रुक जाना या योगों का भली–भाँति निग्रह हो जाना गुप्ति है। स्वभावलीनता रूप मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति होती है। मनवचन काय की बाह्य चेष्टाएँ रुक जाना, पाप का चिंतन न करना, गमनादि न करना, सुस्थिर शाँत हो जाना ही गुप्ति है।

(च) मुनिराज के षट्आवश्यक क्या हैं ?

उत्तर – वीतरागी मुनिराज सदा – १. सामायिक २. सच्चे देव शास्त्र की स्तुति ३. जिनेन्द्र वंदना ४. स्वाध्याय ५. प्रतिक्रमण ६. कायोत्सर्ग करते हैं यही षट्आवश्यक हैं।

(छ) आत्मा कब कर्ता–कर्म–क्रिया होता है ?

उत्तर – वीतरागी मुनिराज स्वरूपाचरण के समय जब आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं तब ध्यान, ध्याता और ध्येय के भेद नहीं होते। वहाँ वचन का विकल्प नहीं होता, वहाँ (आत्मध्यान में) तो आत्मा ही कर्ता, आत्मा ही कर्म और आत्मा ही क्रिया होती है। वहाँ ध्यान ध्याता ध्येय अर्थात् कर्ता कर्म क्रिया अखण्ड हो जाते हैं। शुद्धोपयोग रूप सम्यग्दर्शन ,सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र एकरूप–अभेदरूप प्रगट होते हैं।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) छटवीं ढाल का सारांश लिखिये।

उत्तर – जिस चारित्र के होने से समस्त परपदार्थों से वृत्ति हट जाती हैं। वर्णादि तथा रागादि से चैतन्यभाव को पृथक् कर लिया जाता है। अपने आत्मा में, आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा,

अपने आत्मा का ही अनुभव होने लगता है, वहाँ प्रमाण, नय, निक्षेप, गुण-गुणी, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय, कर्ता-कर्म और क्रिया आदि भेदों का किंचित् विकल्प नहीं रहता। शुद्ध उपयोगरूप अभेद रत्नत्रय द्वारा शुद्ध चैतन्य का ही अनुभव होने लगता है उसे स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं। यह स्वरूपाचरणचारित्र चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर मुनिदशा में अधिक उच्च होता है। तत्पश्चात् शुक्लध्यान द्वारा चार घातिया कर्मों का नाश होने पर जीव केवलज्ञान प्राप्त करके १८ दोष रहित श्री अरिहन्तपद प्राप्त करता है। तत्पश्चात् शेष चार अघातिया कर्मों का भी नाश करके क्षणमात्र में मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उस आत्मा में अनन्तकाल तक अनन्त चतुष्टय (अनन्तदर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य) का एक-सा अनुभव होता रहता है। पश्चात् उसे पंचपरावर्तनरूप संसार में नहीं भटकना पड़ता, वह कभी अवतार धारण नहीं करता अपितु सदैव अक्षय अनन्त सुख का अनुभव करता है। अखण्डित ज्ञान-आनन्दरूप अनन्तगुणों में निश्चल रहता है उसे मोक्षस्वरूप कहते हैं।

जो जीव मोक्ष की प्राप्ति के लिये इस रत्नत्रय को धारण करते हैं और करेंगे उन्हें अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। प्रत्येक संसारी जीव मिथ्यात्व, कषाय और विषयों का सेवन तो अनादिकाल से करता आया है किन्तु उससे उसे किंचित् शांति प्राप्त नहीं हुई। शांति का एकमात्र कारण तो मोक्षमार्ग है। उसमें जीव ने कभी तत्परतापूर्वक प्रवृत्ति नहीं की। इसलिये अब भी यदि शांति की (आत्महित की) इच्छा हो तो आलस्य को छोड़कर अपना कर्तव्य समझकर रोग और वृद्धावस्था आदि आने से पूर्व ही मोक्षमार्ग में प्रवृत्त हो जाना चाहिये। यह मनुष्य पर्याय, सत्समागम आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नहीं होते इसलिये उन्हें व्यर्थ न गवांकर अवश्य ही आत्महित साध लेना चाहिये।

(ख) प्रमाण, नय, निक्षेप क्या है ?

उत्तर – प्रमाण – प्रमाण नयैरधिगमः अर्थात् प्रमाण व नयों के द्वारा तत्त्वों और रत्नत्रय का ज्ञान होता है। जो वस्तु के सर्वदेश को जानता है वह प्रमाण है। इसके २ भेद हैं प्रत्यक्ष प्रमाण और परोक्ष प्रमाण।

नय – प्रमाण द्वारा जानी हुई वस्तु के एकदेश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के दो भेद हैं – द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय।

(ग) मुनिराज के २८ मूल गुणों के भेद-प्रभेद बताइए।

उत्तर – संलग्न चार्ट का अवलोकन करें।

(घ) सकल संयम चारित्र धारी भावलिंगी मुनिराज के स्वरूप का विस्तार से वर्णन कीजिये।

उत्तर – (छटवीं ढाल के १ से ११ वें छंद तक के आधार पर उक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं खोजें)

श्री भयषिपनिक ममल पाहुड़ जी

संक्षिप्त परिचय

- आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य महाराज द्वारा रचित चौदह ग्रंथों में यह सबसे विशाल ग्रंथ है।
- इस ग्रंथ का नाम श्री भयषिपनिक ममल पाहुड़ है।
- भय षिपनिक का अर्थ है-भयों को क्षय करने वाला। आचार्य श्रीमद् जिन तारण स्वामी को ' मिथ्याविली वर्ष ग्यारह ' श्री छद्मस्थवाणी ग्रंथ के इस सूत्रानुसार ग्यारह वर्ष की अवस्था में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई। सम्यग्दर्शन होने पर इह लोक परलोक आदि सात भयों का अभाव हुआ। पुनश्च यह ग्रंथ भयों को क्षय करने वाला है - इसका आशय है कि सम्यक्दृष्टि ज्ञानी के अंतर में चारित्रमोहनीय कर्मोदय के निमित्त से होने वाले चारित्र गुण के विकार रूप भयों का क्षय हो इस उद्देश्य से आचार्य तारण स्वामी ने इस ग्रंथ की रचना की है।
- ममल का अर्थ है त्रिकाली शुद्ध ध्रुव स्वभाव, जिसमें अतीत में कर्म मल नहीं थे, वर्तमान में नहीं हैं और भविष्य में कर्म मल नहीं होंगे, ऐसे परम शुद्ध स्वभाव को ममल कहते हैं। ग्रंथ में इसी अभिप्राय को व्यक्त करने के लिए ममलह ममल स्वभाव भी कहा गया है।
- इस ग्रंथ में ३२०० गाथायें हैं, जो १६४ फूलनाओं में निबद्ध हैं। जिसे पढ़कर या सुनकर जीव आल्हादरूप परिणामों सहित आनंद विभोर हो जाए उसे फूलना कहते हैं।
- जिस प्रकार वर्तमान समय में हम भजन पढ़ते हैं, उसी प्रकार ममल पाहुड़ ग्रंथ में लिखी गई फूलना विभिन्न राग-रागनियों में पढ़ी जाने वाली प्राचीन रचनायें हैं।
- जैसे भजनों में हर अंतरा के बाद टेक दोहराई जाती है, उसी प्रकार फूलनाओं में अचरी या आचरी होती है, जो हर गाथा के बाद दोहराई जाती है।
- इस ग्रंथ की १६४ फूलनाओं में ११५ फूलना-फूलना रूप हैं, १४ फूलना-छंद गाथा रूप हैं और ३५ फूलना-गाथा रूप हैं इस प्रकार १६४ फूलना तीन प्रकार की रचनाओं में विभाजित हैं।
- श्री भयषिपनिक ममलपाहुड़ ग्रंथ आत्म साधना की अनुभूतियों का अगाध सिंधु है। १६४ फूलनाओं में उपयोग को ममल स्वभाव में लीन करने की साधना के रहस्य निहित हैं। सम्यग्दर्शन ज्ञानपूर्वक, सम्यक्दृष्टि ज्ञानी सम्यक्चारित्र के मार्ग में अग्रसर होता है, स्वभाव में लीन होने का पुरुषार्थ करता है, ज्ञानी साधक की चारित्र परक अंतरंग साधना इस ग्रंथ का मुख्य विषय है।
- शुद्धात्म स्वरूप के आश्रय से आत्म साधना आराधना पूर्वक उपलब्ध होने वाली सूक्ष्म आध्यात्मिक अनुभूतियाँ इस ग्रंथ का हार्द है। साथ ही आगम में अध्यात्म को खोजना साधक की अनुपम कला है। इस ग्रंथ में आचार्य श्री तारण स्वामी ने आगम सम्मत अनेक विषयों के माध्यम से अध्यात्म की गहराई को छुआ है। जगत में ऐसे ज्ञानी पुरुष विरले ही होते हैं। निश्चय व्यवहार से देव गुरू धर्म की महिमा, केवलज्ञान स्वभाव और सिद्ध स्वरूप की आराधना, ममलह ममल स्वभाव के बहुमान पूर्वक वीतरागी होने का पुरुषार्थ, पंच परमेष्ठी के गुणों की आराधना पूर्वक स्वभाव की साधना, धर्म कर्म का यथार्थ निर्णय, पंच पदवी के माध्यम से आत्मा से परमात्मा होने की साधना का विधान तथा अन्य अनेकों प्रकार से ममल स्वभाव की साधना सहित संपूर्ण द्वादशांग वाणी का सार इस ग्रंथ में बताया गया है।

श्री ममलपाहुड़ जी फूलना

१ – श्री देव दिप्ति गाथा (फूलना क्र. १)

(**विषय :** देव को स्वरूप सहित नमस्कार, शुद्धात्म स्वरूप की महिमा)

तत्त्वं च नंद आनंद मउ, चेयननंद सहाउ ।
परम तत्त्व पद विंद पउ, नमियो सिद्ध सुभाउ ।। १ ।।

भावार्थ :– (तत्त्वं) शुद्धात्म तत्त्व **(नंद आनंद मउ)** नन्द आनन्द मयी **(चेयननंद सहाउ)** चिदानंद स्वभावी है **(च)** और [यही] **(परम तत्त्व)** परम तत्त्व **(पद विंद)** विंद पद अर्थात् निर्विकल्प स्वरूप है **(पउ)** इसकी अनुभूति करते हुए [मैं] **(सिद्ध सुभाउ)** सिद्ध स्वभाव को **(नमियो)** नमस्कार करता हूँ।

जिनवर उत्तउ सुद्ध जिनु, सिद्धह ममल सहाउ ।
न्यान विन्यानह समय पउ, परम निरंजन भाउ ।। २ ।।

भावार्थ :– (जिनवर उत्तउ) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि **(जिनु)** हे अंतरात्मन् ! **(सुद्ध)** आत्मा त्रिकाल शुद्ध **(सिद्धह)** सिद्ध स्वरूपी **(ममल सहाउ)** ममल स्वभावी है **(न्यान विन्यानह)** ज्ञान विज्ञान अर्थात् भेदविज्ञान से **(परम निरंजन)** सदैव कर्म मलों से रहित **(समय)** शुद्धात्मा की **(भाउ)** भावना भाओ [और] **(पउ)** इसी को प्राप्त करो।

परम पयं परमानु मुनि, परम न्यान सहकार ।
परम निरंजन सो मुनहु, ममलह ममल सहाउ ।। ३ ।।

भावार्थ :– (मुनि) वीतरागी साधु **(परम न्यान)** श्रेष्ठ ज्ञान अर्थात् सम्यग्ज्ञान की **(सहकार)** सहकारिता पूर्वक **(परम पयं)** परम पद को **(परमानु)** प्रमाण अर्थात् अनुभव से स्वीकार करते हैं [इसलिये तुम भी] **(सो)** अपने इसी **(परम निरंजन)** संपूर्ण कर्म मलों से रहित **(ममलह ममल सहाउ)** ममलह ममल स्वभाव का **(मुनहु)** चिंतन – मनन करो।

भय विनासु भवु जु मुनहु, परमानंद सहाउ ।
परम निरंजन सो मुनहु, ममलह सुद्ध सहाउ ।। ४ ।।

भावार्थ :– (भवु जु) जो भव्य जीव **(भय विनासु)** समस्त भयों को छोड़कर [अपने] **(परमानंद सहाउ)** परमानंद मयी स्वभाव का **(मुनहु)** चिंतन, मनन, आराधन करते हैं **(सो)** वह [ज्ञानी] **(ममलह सुद्ध सहाउ)** शुद्ध ममल स्वभाव का **(मुनहु)** मनन आराधन करते हुए **(निरंजन)** कर्म मलों से रहित **(परम)** श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर लेते हैं।

देव जु दिट्ठह जिनवरहं, उवनउ दाता देउ ।
न्यान विन्यानह ममल पउ, सु परम पउ जोउ ।। ५ ।।

भावार्थ :– (जिनवरहं) जिनेन्द्र भगवान ने **(देव जु)** जिस देवत्व पद को **(दिट्ठह)** देखा है [वह] **(न्यान विन्यानह)** ज्ञान – विज्ञानमयी **(ममल पउ)** ममल पद है **(सु परम पउ)** अपने इस परम पद को **(जोउ)** संजोने से **(देउ दाता)** देवत्व पद **(उवनउ)** प्रगट हो जाता है।

दिप्त दिप्ति तं दिस्ट समु, दिप्त दिस्ट सम भेउ ।
दिस्टि सब्द विवान सुइ, उत्पंनउ दाता देउ ॥ ६ ॥

भावार्थ :- **(दिप्त दिप्ति तं)** सम्यग्ज्ञान से दैदीप्यमान आत्मस्वरूप को **(दिस्ट समु)** प्रति समय देखो **(दिप्त दिस्ट सम)** सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक सम भाव [वीतराग भाव] का **(भेउ)** वरण करो **(सुइ)** स्व स्वभाव पर **(दिस्टि)** दृष्टि रखना **(सब्द विवान)** शब्द विवान है [जो] **(दाता देउ)** परमानन्द को देने वाले देवत्व पद को **(उत्पंनउ)** उत्पन्न करता है।

दिप्त दिस्ट सुइ नंत मुनि, कमल इस्टि परमिस्टि ।
सुयं लब्धि तं रयन पउ, दिपि नंत चतुस्टै संजुत्तु ॥ ७ ॥

भावार्थ :- **(मुनि)** भाव लिंगी साधु **(सुइ नन्त)** अपने अनंत चतुष्टमयी **(दिप्त)** दिव्य प्रकाश को **(दिस्ट)** देखते हैं [अपने] **(कमल इस्टि)** इस्ट ज्ञायक स्वभाव के द्वारा **(रयन)** रत्नत्रयमयी **(परमिस्टि)** परमेष्ठी **(पउ)** पद की साधना करते हुए **(सुयं)** स्वयं **(तं नंत चतुस्टै)** अनंत चतुष्टय को **(लब्धि)** प्राप्त करके **(दिपि)** दैदीप्यमान स्वरूप में **(संजुत्तु)** लीन हो जाते हैं।

अंगदि अंगह दिपि दिस्ट मउ, सब्द हिययार संजुत्तु ।
अर्थ तिअर्थ जु कमल रुइ, गिर दिप्त दिस्टि संजुत्तु ॥ ८ ॥

भावार्थ :- **(जु)** जो **(अंगदि अंगह)** अंग सर्वांग में **(दिपि)** दिव्य प्रकाश **(मउ)** मयी स्वभाव है, इसे **(दिस्ट)** देखो **(सब्द हिययार)** हितकारी जिनवचनों की आराधना में **(संजुत्तु)** संलग्न रहो **(अर्थ)** प्रयोजनीय **(तिअर्थ)** रत्नत्रयमयी **(कमल रुइ)** कमल स्वभाव की रुचि सहित **(दिप्त दिस्टि)** ज्ञान से प्रकाशमान स्वभाव पर दृष्टि रखते हुए **(संजुत्तु)** इसी में लीन रहो **(गिर)** यही जिन वचन हैं।

दिप्ति दिस्टि सुइ सब्द मउ, हिय हुवयार संजुत्तु।
अर्क विंद तं रमन पउ, उव उवनउ दाता देउ ॥ ९ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(सुइ सब्द मउ)** स्व स्वभाव को दर्शाने वाले जिन वचनों को स्वीकार करके **(दिप्ति)** ज्ञान से प्रकाशमान स्वभाव पर **(दिस्टि)** दृष्टि रखो **(हिय)** हृदय में **(हुवयार)** उत्साह पूर्वक **(संजुत्तु)** आराधना करो [तुमने] **(अर्क विंद तं)** ज्ञायक दशा को **(पउ)** प्राप्त कर लिया है **(रमन)** इसी में रमन करो **(उव)** शुद्धात्म तत्त्व के आश्रय से **(दाता देउ)** आनंद को देने वाला देव पद [अरिहंत सिद्ध पद] **(उवनउ)** प्रगट हो जाता है।

उव उवन उवन हिययार पउ, सहयार दिप्ति संजोई ।
न्यान विन्यान जु दिस्टि मउ, दिपि दिस्टि देइ सुइ देउ ॥ १० ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(उव)** शुद्धात्म तत्त्व का **(उवन)** उदय हो रहा है **(हिययार पउ)** यही हितकारी पद है **(उवन)** इसी का अनुभवन करो **(सहयार)** सम्यक्चारित्र के लिए **(दिप्ति संजोई)** दिव्य ज्योति स्वरूप को संजोओ **(जु)** यदि **(दिस्टि)** दृष्टि **(न्यान विन्यान)** ज्ञान विज्ञान **(मउ)** मयी हो जाये [उपयोग और स्वभाव में भेद न रहे तब] **(दिपि दिस्टि)** ज्ञान दर्शनमयी स्वभाव **(सुइ)** स्वयं ही **(देउ)** देव पद **(देइ)** देता है अर्थात् स्वभाव में लीन होने पर परमात्म पद प्रगट होता है।

जं जं उवन सहाव जिनु, दिपि दिस्टि उवन उव उत्तु ।
सब्द उवंनउ उवन मउ, उव उवन दिस्टि दर्सतु ॥ ११ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन्] **(जं जं)** जैसे – जैसे **(दिपि)** प्रकाशमान **(उव)** ओंकारमयी शुद्धात्मा

(दिस्टि उवनं) दृष्टि में उदित होता है [वैसे वैसे] **(सहाव जिनु)** वीतराग परमात्म स्वभाव **(उवन)** अनूभूति में वर्तता है **(उवन मउ)** स्वानुभूति में **(सब्द)** शब्द ब्रह्म [परमात्म स्वरूप] का **(उवंनउ)** उदय हो रहा है **(दिस्टि)** द्रव्य दृष्टि पूर्वक **(उव)** ओंकारमयी शुद्धात्म स्वरूप का **(उवन)** स्वानुभव में **(दर्संतु)** दर्शन करो **(उत्तु)** यही जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

जं दर्सिउ नंतानंत मउ, न्यान वीर्य विन्यानु ।
नंत सौष्य सुइ परम पउ, तं देइ देउ उववंनु ॥ १२ ॥

भावार्थ :- **(जं)** जो ज्ञानी **(विन्यानु)** भेदविज्ञान के बल से **(दर्सिउ नंतानंत)** अनंत दर्शन **(न्यान)** अनंत ज्ञान **(नंत सौष्य)** अनंत सुख **(वीर्य)** अनंत बल **(मउ)** मयी **(सुइ परम पउ)** स्वयं के परम पद में **(देइ)** उपयोग लगाता है **(तं)** उसको **(देउ)** देव पद **(उववंनु)** प्रगट हो जाता है।

परम न्यान तं परम पउ, परम भाव सोई भेउ ।
नंतानंत सु देउ पउ, परम देउ सोई देउ ॥ १३ ॥

भावार्थ :- **(परम न्यान तं)** परम ज्ञानमयी परम पद का धारी **(परम भाव)** उत्कृष्ट स्वभाव जो **(नंतानंत)** अनंत चतुष्टयमयी **(सु देउ पउ)** स्वयं का देव पद है **(सोई भेउ)** इसी का वरण करो **(सोई)** यही **(देउ)** देव [और] **(परम देउ)** परम देव है।

नो उत्पन्न तं सो जिनई, जिनियो नंतानंतु ।
नंत उवन सुइ रमन मउ, जिन जिनवर सुइ उत्तु ॥ १४ ॥

भावार्थ :- **(जिनवर उत्तु)** जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं कि **(नो तं)** जिसके अंतर में नो अर्थात् ईषत् [आंशिक रूप से] **(जिनई)** जिनेन्द्र पद **(उत्पन्न)** उत्पन्न हुआ है **(सो)** वह **(जिन)** अंतरात्मा है **(सुइ)** वह ज्ञानी **(नंत उवन सुइ)** स्वभाव की अनंत स्वानुभूति में **(रमन मउ)** रमण करता हुआ **(जिनियो नंतानंतु)** अनंत कर्मों को जीत लेता है।

परम उवन जो रमन मउ, परम न्यान सुइ जुत्तु ।
परम उवन जु जिनय जिनु, उववंन विली जिन उत्तु ॥ १५ ॥

भावार्थ :- **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं कि **(जो)** जो ज्ञानी **(परम उवन)** श्रेष्ठ स्वानुभूति में **(रमन मउ)** रमण करता है **(सुइ)** वह **(परम न्यान)** सम्यग्ज्ञान से **(जुत्तु)** युक्त होता है **(जु)** जो **(परम उवन)** श्रेष्ठ स्वानुभूति में **(जिनय जिनु)** जिन स्वभाव को जीत लेता है [उसके] **(उववंन विली)** कर्मों का उत्पन्न होना विला जाता है अर्थात् क्षय हो जाता है।

परम सुभावह परम रउ, परम परम जिन उत्तु ।
परम लष्य गम अगम पउ, परम परम जिन उत्तु ॥ १६ ॥

भावार्थ :- **(परम)** परम पारिणामिक भावमयी **(परम सुभावह)** श्रेष्ठ स्वभाव में **(रउ)** रत रहो **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि **(परम परम)** यही उत्कृष्ट और श्रेष्ठ **(परम लष्य)** परम लक्ष्य है **(अगम)** जिसे नहीं जाना था **(गम)** उसे जान लिया **(पउ)** प्राप्त कर लिया [यही] **(परम परम)** सर्वोत्कृष्ट पद है **(जिन उत्तु)** यही जिनेन्द्र परमात्मा के वचन हैं।

ममलं ममल उवंनं, भय षिपिय ससंक विलयंति ।
कम्मं उवनं विलियं, भय षिपनिक ममल पाहुडं बोच्छं ॥ १७ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(ममलं ममल उवंनं)** ममलह ममल स्वभाव के प्रगट होते ही **(भय**

षिपिय) भय क्षय हो जायेंगे **(ससंक विलयंति)** सशंकपना विला जायेगा **(कम्मं उवनं विलियं)** कर्मों का उदय होना विलीन हो जायेगा। [चारित्र मोहनीय कर्मोदय जनित] **(भयषिपनिक)** भयों को क्षय करने [और अभयपना प्रगट] करने के लिए **(ममल पाहुडं बोच्छं)** ममल पाहुड़ ग्रन्थ कहता हूँ।

देव दिप्ति गाथा (सारांश)

देव दिप्ति गाथा आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रंथ की पहली फूलना है। इस फूलना में सच्चे देव की महिमा बतलाई गई है। देव दिप्ति गाथा का अर्थ है – सच्चे देव के स्वरूप को प्रकाशित करने वाली फूलना। श्री गुरु तारण स्वामी जी ने श्री श्रावकाचार जी, श्री ज्ञानसमुच्चयसार जी आदि ग्रंथों में अरिहंत सिद्ध परमात्मा को सच्चा देव कहा है। अरिहंत भगवान ने चार घातिया कर्मों को और सिद्ध भगवान ने आठ कर्मों को क्षय करके देवत्व पद प्राप्त किया है। यह देवत्व पद स्वरूप के आश्रय पूर्वक शुद्धात्मा में लीन होने से प्रगट होता है। इसलिये निश्चय से निज शुद्धात्मा सच्चा देव है। यह शुद्धात्म स्वरूप प्रत्येक जीव का अपना-अपना स्वभाव है। यह स्वभाव कैसा है ? आचार्य कहते हैं – शुद्धात्म तत्व नंद आनंदमयी चिदानंद स्वभावी है। यही परम तत्व निज स्वभाव है। इसकी अनुभूति करते हुए मैं सिद्ध स्वभाव को नमस्कार करता हूँ। श्री जिनेन्द्र भगवान ने ऐसे महिमामय शुद्धात्म स्वरूप को सिद्ध शुद्ध परम निरंजन ममल स्वभावी कहा है।

आचार्य देव इस फूलना में सार स्वरूप यह कहते हैं कि आत्मा में परमात्म शक्ति विद्यमान है। जो जीव अपने आत्म स्वरूप की शक्ति का बोध अंतर में जाग्रत कर लेते हैं उनके भय क्षय हो जाते हैं, वे निर्भयता पूर्वक मोक्षमार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं।

शुद्धात्मा जिसे निश्चय से देव कहा है इसके आश्रय से अंतर में सत्पुरुषार्थ वर्तता है और साधक अरिहंत सिद्ध परमात्मा को आदर्श मानकर स्वयं देवत्व पद प्राप्त करने की साधना करता है। अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत बल से संपन्न परम पद का अपने में ही अनुभव करता है। साधक जानता है कि सम्पूर्ण प्रदेशों में जो सर्वांग ज्ञानमयी है, सूक्ष्म अनुभव गम्य है ऐसा शुद्धात्म देव ही शरणभूत इष्ट और प्रयोजनीय है। अरिहंत सिद्ध परमात्मा भी निज शुद्धात्मा के आश्रय से परम पद को प्राप्त हुए हैं। इसलिये शुद्धात्मा परम देव स्वरूप हितकारी ज्ञान की अनंत दीप्ति से दैदीप्यमान परम श्रेष्ठ है। इसकी साधना और इसमें लीन होने से कर्मों का आस्रव बंध नहीं होता। आचार्य देव कहते हैं कि ममल स्वभाव की साधना से आत्मा में निहित परमात्म शक्ति की अभिव्यक्ति होती है, भय क्षय होते हैं, शंकायें विलय हो जाती हैं। ममल स्वभाव की साधना से परम पद की प्रगटता होती है इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति हेतु भय षिपनिक ममल पाहुड़ ग्रंथ कहता हूँ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – देव दिप्ति गाथा में किसे नमस्कार किया गया है ?

उत्तर – देव दिप्ति गाथा में सच्चे देव को नमस्कार किया गया है। व्यवहार से सच्चे देव अरिहंत सिद्ध परमात्मा हैं और निश्चय से सच्चा देव निज शुद्धात्मा है।

प्रश्न २ – देव दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – अरिहंत सिद्ध परमात्मा को नमन कर अपना परमात्म परम पद जो स्वयं जिनेन्द्र स्वरूप है उसका अनुभव में आना ही देवदर्शन है।

प्रश्न ३ – जिनेन्द्र परमात्मा ने क्या कहा है ?

उत्तर – जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि आत्मा त्रिकाल शुद्ध सिद्ध स्वरूपी ममल स्वभावी है।

प्रश्न ४ – शुद्धात्मा की अनुभूति कैसे होती है ?

उत्तर – निज शुद्धात्मा परम निरंजन परमात्म सत्ता स्वरूप है ऐसे श्रद्धान सहित भेदविज्ञान पूर्वक निज शुद्धात्मा की अनुभूति होती है।

प्रश्न ५ – परमात्म पद कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर – अपने आत्म स्वरूप की अनुभूति पूर्वक रत्नत्रयमयी अखंड अभेद स्वभाव में लीन होने से परमात्म पद प्राप्त होता है।

प्रश्न ६ – देवत्व पद को कौन प्राप्त करते हैं ?

उत्तर – जो भव्य जीव भयों का नाश कर अभय होकर परमानंदमयी शुद्ध स्वभाव का आश्रय लेकर परम निरंजन ममल स्वभाव का चिंतन मनन और आत्मध्यान धारण करते हैं, वही भव्य जीव देवत्व पद को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न ७ – अरिहंत पद कब प्रगट होता है ?

उत्तर – मुक्तिमार्ग का पथिक, रत्नत्रय पद का धारी, क्षायिक सम्यक्त्वी जीव मुनि होकर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक धर्म ध्यान का अभ्यास पूर्ण करता है। पश्चात् क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर दसवें सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के अंत में चारित्र मोहनीय का सर्व प्रकार क्षय करके बारहवें गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय कर्म का अभाव कर चारों घातिया कर्मों को क्षय करके अनंत चतुष्टय प्राप्त करता है। तब वही तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोग केवली अरिहंत परमात्मा होता है।

प्रश्न ८ – मुक्ति को देने वाला कौन है ?

उत्तर – जिनवाणी के शब्द पढ़ने मात्र से मुक्ति नहीं मिलती। शब्द जिस ज्ञायक स्वभाव की ओर संकेत करते हैं वहाँ दृष्टि देने से मुक्ति मिलती है अर्थात् ज्ञायक दशा प्रगट होती है। ज्ञायक स्वभाव में रमणता से आनंद का अनुभव होता है और यह ज्ञायक स्वभाव ही मुक्ति को देने वाला है।

प्रश्न ९ – परम पारिणामिक भाव के आश्रय से क्या लाभ है ?

उत्तर – जो निर्मल है, परिपूर्ण है, परम निरपेक्ष है, ध्रुव है और त्रैकालिक सामर्थ्यवान है ऐसे परम पारिणामिक भाव स्वरूप अखंड परमात्म द्रव्य का आश्रय करने से अनंत निर्मल पर्यायें अंतर में स्वयं खिल उठती हैं। सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, सच्चा मुनिपना आता है, अनंत चतुष्टय प्रगट होता है, सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न १०– आचार्य श्री जिन तारण स्वामी का ममल पाहुड़ ग्रंथ कहने का क्या उद्देश्य था ?

उत्तर – आचार्य श्री जिन तारण स्वामी को अपने ममल स्वभाव के आश्रय से पर्याय में जो शुद्धता प्रगट हुई, आनंद प्रगट हुआ। उसके बहुमान पूर्वक स्वरूप लीनता में निमित्त रूप से बाधक चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के निमित्त से होने वाले भयों का अभाव करना, अभय होना, ममल स्वभाव में लीन रहना, इस ग्रंथ की रचना का मुख्य उद्देश्य था।

२ – ध्यावहु फूलना (फूलना क्र. ४)

(**विषय :** अंतरात्मा गुरु और परमात्मा परम गुरु का ध्यान करने की प्रेरणा, धर्म – कर्म का मर्म)

ध्यावहु रे गुरु, गुरह परम गुरु, भव संसार निवारै ।
न्यान विन्यानह केवल सहियो, आप तिरे पर तारै ॥ १ ॥
॥ आचरी ॥

भावार्थ : – (ध्यावहु रे गुरु) गुरु का ध्यान करो **(गुरह परम गुरु)** गुरु और परम गुरु [जीवों को] **(भव संसार निवारै)** संसार सागर से पार लगाने वाले हैं [गुरु] **(न्यान विन्यानह)** ज्ञानविज्ञान के धारी [और परम गुरु] **(केवल)** केवलज्ञान **(सहियो)** सहित होते हैं जो **(आप तिरे)** स्वयं तिरते हैं **(पर तारै)** अन्य जीवों को भी तारते हैं।

परम गुरह उवएसिउ लोयह, न्यान विन्यानह भेउ ।
भय विनासु भव्वु तं मुनि है, उव उवनउ दाता देउ ॥ २ ॥

भावार्थ :– (परम गुरह) परम गुरु परमात्मा **(लोयह)** जगत के जीवों को **(उवएसिउ)** उपदेश देते हैं कि **(भव्वु)** हे भव्य जीवो ! **(न्यान विन्यानह)** ज्ञानविज्ञानमयी स्वभाव का **(भेउ)** वरण करो **(तं मुनि है)** साधु पद को धारण करो, इससे **(भय विनासु)** भय विनस जायेंगे [और] **(उव)** ओंकारमयी **(दाता देउ)** परमानंद का दाता देव पद **(उवनउ)** प्रगट हो जायेगा।

देउ उवंनउ दिट्ठ उ दीन्हउ, लोयालोय उवएसु ।
परम देउ परम सुइ उवने, परम ममल सुपएसु ॥ ३ ॥

भावार्थ :– (देउ) देव स्वरूप [जो] **(उवंनउ)** उत्पन्न हुआ है **(दिट्ठउ दीन्हउ)** दिखाई दिया है [अनुभव में आया है, इसे] **(लोयालोय)** लोकालोक को जानने वाला **(उवएसु)** कहा गया है **(परम सुइ)** स्वयं का श्रेष्ठ **(परम देउ)** परम देव स्वभाव **(उवने)** उदित हुआ है, जो **(परम)** परम **(सुपएसु)** शुद्ध प्रदेशी **(ममल)** ममल स्वभावी है।

परम देउ परमप्पा सहियो, नंतानंत सु दिट्ठी ।
नंत गुपित विन्यान उवंनउ, ममल दिस्टि परमिस्टी ॥ ४ ॥

भावार्थ :– (परम देउ परमप्पा) परम देव परमात्मा **(नंतानंत)** अनंत चतुष्टय **(सहियो)** सहित **(सु दिट्ठी)** अपने में लीन हैं, जिन्होंने **(नंत गुपित विन्यान उवंनउ)** अनंत गुप्त विज्ञान को उत्पन्न कर लिया है **(ममल दिस्टि)** जिनकी ममल स्वभाव पर दृष्टि है, वे [परम पद में स्थित] **(परमिस्टी)** परमेष्ठी हैं।

जिन उवएसिउ भव्यह लोयह, अर्थति अर्थह जोउ ।
षट् कमलह तं विमल सुनिर्मल, जिम सूषम कम्म गलेउ ॥ ५ ॥

भावार्थ :– (जिन) जिनेन्द्र परमात्मा ने **(लोयह)** जगत के **(भव्यह)** भव्य जीवों को **(उवएसिउ)** उपदेश दिया है कि [अपने] **(अर्थति अर्थह)** प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी स्वभाव को **(जोउ)** संजोओ **(तं विमल सुनिर्मल)** विमल निर्मल स्वभाव का **(षट्कमलह)** षट्कमल के माध्यम से ध्यान करो **(जिम)** जिससे **(सूषम कम्म)** सूक्ष्म कर्म **(गलेउ)** गल जायेंगे।

चिदानन्द जिनु कहिउ परम जिनु, सुकिय सुभाव सुदिट्ठी ।
अर्थति अर्थह कमलह सहियो, सहजनंद जिन दिट्ठी ॥ ६ ॥

भावार्थ :- (जिनु) हे अंतरात्मन् ! **(परम जिनु)** केवलज्ञानी जिनेन्द्र परमात्मा ने **(कहिउ)** कहा है कि तुम्हारा **(चिदानंद)** चिदानंदमयी **(सुकिय)** स्वकृत [अपने से ही किया हुआ] **(सुभाव)** स्वभाव है **(सुदिट्ठी)** इसको ही देखो **(अर्थति अर्थह)** प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी **(कमलह सहियो)** ज्ञायक स्वभाव में रहो [और] **(सहजनंद जिन दिट्ठी)** सहजानंदमयी वीतराग स्वभाव पर दृष्टि रखो ।

जिनवर उत्तउ सुद्ध परम जिनु, मर्म कम्मु सु जिनेई ।
जह जह समयह कम्मु उपज्जइ, न्यान अन्मोय षिपेई ॥ ७ ॥

भावार्थ :-(जिनवर उत्तउ) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि [आत्मा] **(सुद्ध परम जिनु)** शुद्ध परम जिनस्वरूप है **(मर्म कम्मु सु जिनेई)** कर्मों का मर्म ऐसा जानो कि **(जह जह समयह)** जिस - जिस समय **(कम्मु उपज्जइ)** कर्म उपजते हैं [आश्रव बंध होता है,उस समय] **(न्यान अन्मोय षिपेई)** ज्ञान स्वभाव का भान नहीं रहता है ।

जह जह थानह कम्मु ऊपजइ, कम्मह कम्म सहाई ।
न्यान अन्मोयह तं तं विलियउ, मर्म कर्म सु जिनेई ॥ ८ ॥

भावार्थ :- (जह जह थानह) जिस - जिस स्थान [समय] में **(कम्मु ऊपजइ)** कर्म उत्पन्न होते हैं [आस्रव बंध होता है वहाँ] **(कम्मह कम्म सहाई)** कर्म के बंध में कर्म ही सहकारी हैं [अर्थात् द्रव्य कर्म से भाव कर्म होते हैं और भाव कर्म से द्रव्य कर्म बंधते हैं, कर्म से ही कर्म बंधते हैं] **(न्यान अन्मोयह)** [जैसे - जैसे] ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना होती है **(तं तं विलियउ)** वैसे - वैसे क्षय होते जाते हैं **(मर्म कर्म सु जिनेई)** कर्म का मर्म इतना ही जानो ।

परम जिनं परमष्यरु गहिओ, परमानंद सहाई ।
परम सुभावह न्यान विन्यानह, केवल सहियो सोई ॥ ९ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(परमानंद सहाई)** परमानंद स्वभावी **(परम जिनं)** परमात्म स्वरूप **(परमष्यरु)** परम अक्षर [अविनाशी] स्वभाव को **(गहिओ)** ग्रहण करो **(न्यान विन्यानह)** ज्ञान विज्ञान पूर्वक **(परम सुभावह)** श्रेष्ठ स्वभाव में रहो **(सोई)** यही **(केवल सहियो)** केवलज्ञान को प्रगट करने का उपाय है ।

धम्मु जु धरियउ जिनवर उत्तउ, न्यान विन्यान सुभाउ ।
जह जह कम्मु उपति स दिट्ठी, तह तह षिपन सहाउ ॥ १० ॥

भावार्थ :- (जिनवर उत्तउ) जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए **(धम्मु)** धर्म को **(धरियउ)** धारण करो **(जु)** जो **(न्यान विन्यान सुभाउ)** ज्ञान विज्ञान स्वभाव में लीनता रूप है **(जह जह कम्मु)** जिस - जिस समय **(उपति स दिट्ठी)** उदय रूप अनुभव में आता है **(तह तह षिपन)** उस - उस समय क्षय भी होता जाता है, कर्मों का ऐसा गलन **(सहाउ)** स्वभाव है ।

परम धम्मु परमप्पय सहियो, परम भाउ उवलद्धी ।
परम निरंजनु अंजन रहिओ, ममल भाव सिव सिद्धी ॥ ११ ॥

भावार्थ :- (परमप्पय सहियो) परमात्म पद का बोध जाग्रत होना **(परम भाउ)** परम पारिणामिक भाव की **(उवलद्धी)** उपलब्धि करना **(परम धम्मु)** उत्तम धर्म है **(अंजन रहिओ)** कर्म मलों से रहित

(परम निरंजन) त्रिकाल शुद्ध **(ममल भाव)** ममल स्वभाव में रहने से **(सिव सिद्धी)** मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दर्सन सहियो दिस्टि अन्मोयह, परिनै न्यान सहाउ ।
परमानह सो चरनु उपज्जै, अन्मोयह ममल सहाउ ॥ १२ ॥

भावार्थ :- **(सहाउ)** स्वभाव **(दिस्टि)** दृष्टि **(सहियो)** सहित होना **(अन्मोयह)** आत्म तत्त्व को स्वीकार करना **(दर्सन)** सम्यग्दर्शन है [स्वभाव रूप] **(परिनै)** परिणत रहना **(न्यान)** सम्यग्ज्ञान है **(परमानह)** प्रमाण [सम्यग्ज्ञान] पूर्वक **(अन्मोयह ममल सहाउ)** ममल स्वभाव में लीन होने से [जो] **(उपज्जै)** उत्पन्न होता है **(सो)** वह **(चरनु)** सम्यक्चारित्र है।

चष्य अचष्यह अवहि जु सहियो, न्यान विन्यान संजुत्तु ।
कम्मु उपत्तिहि कम्मु जु विलियो, न्यान अन्मोय स उत्तु ॥ १३ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(चष्य अचष्यह अवहि जु सहियो)** चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन सहित **(न्यान विन्यान संजुत्तु)** ज्ञान विज्ञान स्वभाव में लीन रहो **(जु)** जो **(कम्मु उपत्तिहि)** कर्म उदय में आते हैं **(कम्मु)** वे कर्म **(विलियो)** विलय होते जाते हैं **(न्यान अन्मोय)** ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना करो **(स उत्तु)** यही जिनेन्द्र भगवान के वचन हैं।

जैवंतह तह जानु सहावह, मनपर्जय न्यान सुदिट्ठी ।
पर परजय विलयंतु सहज सुइ, न्यान विन्यान सु इट्ठी ॥ १४ ॥

भावार्थ :- **(जानु सहावह)** ज्ञान स्वभाव **(जैवंतह)** जयवंत हो **(सु दिट्ठी)** स्वभाव दृष्टि से **(मनपर्जय न्यान)** मनःपर्यय ज्ञान **(तह)** तथा **(सु इट्ठी)** अपने इष्ट **(न्यान विन्यान)** ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव के बल से **(पर परजय)** पर पर्याय **(सहज सुइ)** सहज ही **(विलयंतु)** विलय हो जाती हैं।

पद विंदह सर्वन्य सु सहियो, अर्थह कमल सहाउ ।
कल लंक्रित कम्मु जु गलियो, सहजे निर्मल ममल सहाउ ॥ १५ ॥

भावार्थ :- **(सर्वन्य)** सर्वज्ञ स्वरूप **(सु)** निज **(पद)** पद की **(विंदह)** अनुभूति करो **(अर्थह)** प्रयोजनीय **(कमल सहाउ)** ज्ञायक स्वभाव के **(सहियो)** आश्रय रहो **(सहजे निर्मल ममल सहाउ)** सहज निर्मल ममल स्वभाव में रहने से **(जु)** जो **(कम्मु)** कर्म **(कल लंक्रित)** शरीर की प्राप्ति में कारण भूत हैं, वे **(गलियो)** गल जाते हैं।

दव्व कम्मु आवर्न ऊपजै, घाइ कम्मु जिन उत्तु ।
भाव कम्मु नो कम्मह सहियो, न्यान अन्मोय विलयंतु ॥ १६ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् ! विभाव भावों में तन्मय होने से] **(दव्व कम्मु)** द्रव्य कर्मों के **(आवर्न उपजै)** आवरण उत्पन्न होते हैं [इनमें ज्ञानावरण आदि चार] **(घाइ कम्मु)** घातिया कर्म हैं, जीव **(भाव कम्मु)** भाव कर्म [और] **(नो कम्मह सहियो)** नो कर्म सहित हो रहा है **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(न्यान अन्मोय)** ज्ञान स्वभाव में लीन होने से [तीनों प्रकार के] कर्म **(विलयंतु)** क्षय हो जाते हैं।

न्यानी न्यान अन्मोय संजुत्तु, सरनि न कम्मु स उत्तु ।
विमल सुनिर्मल भावह सहियो, सिवपुरि गमनु तुरंतु ॥ १७ ॥

भावार्थ :- **(न्यानी)** हे ज्ञानी ! **(न्यान अन्मोय)** ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना में **(संजुत्तु)** रत रहो

[स्वभाव साधना करो] **(सरनि न कम्मु स उत्तु)** कर्म आश्रय करने के योग्य नहीं कहे गए हैं **(विमल सुनिर्मल भावह)** विमल निर्मल स्वभाव में **(सहियो)** लीन रहने से **(तुरंतु)** तत्क्षण **(सिवपुरि गमनु)** मोक्षपुरी को गमन होता है।

ध्यावहु फूलना का सारांश

ध्यावहु फूलना, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममलपाहुड जी ग्रन्थ की चौथी फूलना है। इस फूलना में गुरु और परम गुरु का ध्यान करने की प्रेरणा दी गई है तथा धर्म और कर्म का रहस्य स्पष्ट किया गया है। ध्यावहु का अर्थ है ध्यान करो। श्री गुरु तारण तरण स्वामी जी ने श्री श्रावकाचार जी, श्री ज्ञान समुच्चयसार जी, श्री उपदेश शुद्ध सार जी आदि ग्रन्थों में व्यवहार से वीतरागी निर्ग्रन्थ भावलिंगी साधु को गुरु और अरिहंत परमात्मा को परम गुरु कहा है। साधु में आचार्य उपाध्याय साधु तीनों परमेष्ठी गर्भित हो जाते हैं। एकाग्रचित्त से गुणों का चिंतन करते हुए इनका ध्यान करने से आत्म बल बढ़ता है, संसार के दुःखों से मुक्त होने की भावना प्रगाढ़ होती है।

निश्चय से अंतरात्मा गुरु है। अंतरात्मा स्वभाव से अथवा निश्चय से परमात्मा है। आचार्य कहते हैं निज अंतरात्मा का तथा अंतरात्मा में ही परमात्मा का निवास है उसका ध्यान करो। गुरु और परम गुरु सम्यक्ज्ञानी हैं। जीव को संसार सागर से पार उतारने में समर्थ हैं। वीतरागी साधु सच्चे गुरु लकड़ी की नौका की तरह स्वयं पार हो जाते हैं और अन्य भव्य जीवों को संसार सागर से पार होने में निमित्त होते हैं। परम गुरु तीर्थंकर परमात्मा ने जगत के समस्त जीवों को उपदेश दिया है कि निर्भय होकर शुद्धात्म स्वरूप का आश्रय लेकर ममल स्वभाव की साधना करो। षट्कमल की योग साधना से ममल स्वरूप का ध्यान करने वाला योगी साधक सहजानंद में रहता है। परम अक्षर अर्थात् कभी क्षरण नहीं होने वाले परम आनंदमयी स्वभाव में रहना धर्म है। विभाव में रहना कर्म है। जब जीव विभावों से युक्त होता है तब कर्म बंध होता है। आत्मा स्वभाव से ज्ञानमयी है जबकि कर्म जड़ हैं। द्रव्य कर्म से भाव कर्म होते हैं तथा भाव कर्म से द्रव्य कर्म बंधते हैं अतः कर्म से ही कर्म बंधते हैं। जैसे – गाय के गले की रस्सी, रस्सी में बंधती है उसी प्रकार कर्म का विज्ञान है।

विभावों के निमित्त से उत्पन्न होने वाले कर्म स्वभाव में लीन होने से निर्जरित होते हैं। दर्शनोपयोग की महिमा बतलाते हुए आचार्य कहते हैं चक्षु दर्शन अचक्षु दर्शन अवधिदर्शन पूर्वक ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव में रहने से पर्यायें विलय हो जाती हैं, कर्म क्षय हो जाते हैं। अतः हे आत्मन् ! अपने सर्वज्ञ स्वरूप निज पद का अनुभव करो। स्वभाव ही शरणभूत है, कर्म आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। अपने विमल निर्मल स्वभाव में रहने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – भव संसार पार उतारने में कौन समर्थ है ?

उत्तर – इस लोक में निश्चय से सर्वोत्कृष्ट परम गुरू मेरा ज्ञानमयी अंतरात्मा है और व्यवहार से सच्चे गुरु निर्ग्रन्थ भावलिंगी साधु हैं जो स्वयं तिरने के साथ-साथ भव्य जीवों को भव संसार से पार उतारने में समर्थ हैं।

प्रश्न २ – आप तिरें पर तारें का क्या अर्थ है ?

उत्तर – भव सागर से जो स्वयं तिरते हैं और दूसरों को तारते हैं अर्थात् मोक्ष का मार्ग बताते हैं यही

आप तिरें पर तारें का अर्थ है, इसी विशेषता के कारण वीतरागी गुरू को तारण तरण कहा जाता है।

प्रश्न ३ – स्व संवेदन ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस ज्ञान के वेदन में स्व की सत्ता समाई है, इस ज्ञान को स्वसंवेदन ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न ४ – लोकालोक को कौन जानता है ?

उत्तर – सम्यक्‌दृष्टि ज्ञानी परोक्ष रूप से एवं केवलज्ञानी प्रत्यक्ष रूप से लोकालोक को जानते हैं।

प्रश्न ५ – सूक्ष्म कर्म किसके गलते हैं ?

उत्तर – जो भव्य जीव अपने रत्नत्रयमयी आत्मस्वरूप के आश्रय से षट्‌कमल के माध्यम से ध्यान करते हैं, उन्हीं जीवों के सूक्ष्म कर्म गल जाते हैं अर्थात् क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न ६ – कर्म किसे कहते हैं, कर्मों का क्या कार्य है और ये क्षय कैसे होते हैं ?

उत्तर – राग-द्वेषादि विभावों के निमित्त से जो कार्माण वर्गणायें एक क्षेत्रावगाह रूप आत्मा से संबद्ध हो जाती हैं उन्हें कर्म कहते हैं। जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि से है, कर्मों के कारण ही आत्मा की अनेक दशायें होती हैं, कर्मों के कारण ही आत्मा को शरीर में रहना पड़ता है। यह कर्म कलंक आत्म ध्यान रूपी अग्नि में जलकर भस्म अर्थात् क्षय हो जाते हैं।

प्रश्न ७ – आश्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – आश्रव – जीव की शुभाशुभ भावमय विकारी अवस्था को भावास्रव कहते हैं। उस समय कर्म योग्य नवीन रजकणों का स्वयं- स्वतः आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप में आगमन होना द्रव्यास्रव है।

प्रश्न ८ – बंध तत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – बंध – आत्मा का अज्ञान राग द्वेष, पुण्य-पाप रूप विभावों में रुक जाना भाव बन्ध है, उस समय कर्म के योग्य पुद्‌गलों का स्वयं – स्वतः जीव के साथ एक क्षेत्रावगाह रूप बंधना द्रव्य बंध है।

प्रश्न ९ – संवर तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा के शुद्ध भाव द्वारा पुण्य-पापरूप अशुद्ध भाव (आस्रव) का रुकना भाव संवर है। तदनुसार नये कर्मों का आगमन स्वयं-स्वतः रुक जाना द्रव्य संवर है।

प्रश्न १०– निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – निर्जरा – अखण्डानन्द निज शुद्धात्मा के लक्ष्य के बल से आंशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध अवस्था (शुभाशुभ इच्छारूप) की आंशिक हानि होना भाव निर्जरा है, उस समय खिरने योग्य कर्मो का स्वयं-स्वतः अंशतः खिर जाना द्रव्य निर्जरा है।

प्रश्न ११– कम्मह कम्म सहाई का क्या अर्थ है ?

उत्तर – कर्म से ही कर्म बंधते हैं अर्थात् कर्म के बन्ध में कर्म ही सहकारी हैं। द्रव्य कर्म से भाव कर्म होते हैं और भाव कर्म से द्रव्य कर्म बंधते हैं। कर्मो का संपूर्ण परिणमन कर्मों में ही चलता है, जीव का कर्म से कोई संबंध नहीं है।

प्रश्न १२– कर्म से कर्म बंधते हैं, इसको उदाहरण द्वारा समझाइये ?

उत्तर – जैसे गाय को रस्सी से बांधते हैं, तो रस्सी को रस्सी से बांधते हैं, गाय को रस्सी से नहीं बांधते हैं। इसी तरह कर्म से कर्म बंधते हैं, जीव से कर्म नहीं बंधते।

प्रश्न १३– कर्म कौन सा द्रव्य है ?

उत्तर – कर्म पुद्गल द्रव्य है।

प्रश्न १४– कर्म की उत्पत्ति में कारण कौन है ?

उत्तर – राग भाव कर्म की उत्पत्ति में कारण है।

प्रश्न १५– कर्म के क्षय में कारण क्या है ?

उत्तर – वीतराग भाव कर्म के क्षय में कारण है।

प्रश्न१६ – परम अक्षय का क्या अर्थ है ?

उत्तर – जो सुख आनंद ज्ञान आदि गुणों से भरपूर परम उत्कृष्ट द्रव्य है, जिसके आनंद का अनंत काल तक भी भोग किया जावे तब भी सुख आनंद ज्ञान का खजाना कभी अंशमात्र भी कम न हो यही परम अक्षय का अर्थ है।

प्रश्न १७– निर्वाण का क्या अर्थ है ?

उत्तर – निर्वाण का अर्थ है जहां आत्मा सर्व राग द्वेष मोह आदि दोषों से मुक्त होकर, सर्व कर्म कलंक से छूटकर शुद्ध स्वर्ण के समान पूर्ण शुद्ध हो जावे व निरंतर आनंद अमृत का स्वाद लेवे इस प्रकार आत्मा का स्वाभाविक पद में आना ही निर्वाण है।

३ – धर्म दिप्ति गाथा (फूलना क्र. ५)

(**विषय :** धर्म का स्वरूप और धर्म को नमस्कार, तिअर्थ की महिमा)

धम्मु जु उत्तउ जिनवरहं, अर्थति अर्थह जोउ ।
भय विनासु भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ ॥ १ ॥

भावार्थ :– (जिनवरहं उत्तउ) जिनेन्द्र परमात्मा ने कहा है कि **(अर्थति अर्थह)** प्रयोजनभूत तिअर्थ [ओंकार, ह्रींकार, श्रींकार मय स्वरूप] को **(जु)** जो **(जोउ)** संजोना अर्थात् अनुभव करना, वह **(धम्मु)** धर्म है **(भवु जु)** जो भव्य जीव [आत्म धर्म का] **(मुनहु)** मनन करते हैं, उनके **(भय विनासु)** भय विनश जाते हैं [और] **(परलोउ)** परलोक अर्थात् भविष्य में **(ममल न्यान)** केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।

अर्थति अर्थह भेउ मुनि, लषन रूव संजुत्तु ।
ममल न्यान सहकार मउ, भय विनास तं उत्तु ॥ २ ॥

भावार्थ :– (मुनि) वीतरागी साधु **(अर्थह)** प्रयोजनीय **(अर्थति)** रत्नत्रय स्वरूप का **(भेउ)** वरण करते हैं **(लषन)** चैतन्य लक्षणमयी **(रूव)** स्वरूप की साधना में **(संजुत्तु)** संयुक्त रहते हैं **(ममल न्यान सहकार)** ममल ज्ञान स्वभाव का आश्रय कर **(मउ)** उसी में तन्मय रहते हैं **(तं)** उनके **(भय विनास)** भय विनश जाते हैं **(उत्तु)** ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है।

उवंकार उवंन मई, ह्रियंकार हिययारू ।
श्रींकारह संजुत्तु सिरी, ममल भाव सहकारू ॥ ३ ॥

भावार्थ :- **(उवंकार)** पंचपरमेष्ठी मयी शुद्धात्म स्वरूप की **(मई)** अनुभूति **(उवंन)** उत्पन्न अर्थ है **(ह्रियंकार)** परमात्म स्वरूप का बोध **(हिययारू)** हितकार अर्थ है **(ममल भाव)** ममल स्वभाव रूप **(सिरी)** मोक्ष लक्ष्मी में **(संजुत्तु)** लीनता **(श्रींकारह)** श्रींकारमयी **(सहकारू)** सहकार अर्थ है ।

उवन हिययार सहयार मउ, अर्थति अर्थ संजुत्तु ।
धम्मु जु धरियो ममल पउ, अमिय रमन जिन उत्तु ॥ ४ ॥

भावार्थ :- **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(जु)** जो **(उवन)** उत्पन्न अर्थ **(हिययार)** हितकार अर्थ **(सहयार)** सहकार अर्थ **(अर्थ)** प्रयोजनीय **(अर्थति)** रत्नत्रय **(मउ)** मयी स्वभाव **(धम्मु)** धर्म है **(धरियो)** इसे धारण करो **(संजुत्तु)** इससे संयुक्त रहो [और] **(अमिय)** अमृत स्वरूप **(ममल पउ)** ममल पद में **(रमन)** रमण करो ।

रमने रमियो ममल पउ, भय सल्य संक विलयंतु ।
अन्मोय न्यान भय षिपिय सुई, धम्मु धरिय जिन उत्तु॥ ५॥

भावार्थ :- **(रमने)** रमण करने योग्य **(ममल पउ)** ममल पद में **(रमियो)** रमण करो इससे **(भय सल्य संक विलयंतु)** भय शल्य शंकायें विला जायेंगी **(अन्मोय न्यान)** ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना रूप **(धम्मु धरिय)** धर्म को धारण करो **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(भय षिपिय सुई)** भय स्वयमेव क्षय हो जायेंगे ।

धम्मु जु धरियो ममल पउ, धरिय उवन जिन उत्तु ।
अर्क सु अर्क सु अर्क मउ, विंद विन्यान स उत्तु ॥ ६ ॥

भावार्थ :- **(जिन उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि **(ममल पउ)** ममल पद स्वरूप **(धम्मु)** धर्म को **(धरियो)** धारण करो **(जु)** जो जीव [इसे] **(धरिय)** धारण करता है उसे **(उवन)** स्वानुभूति होती है [अंतरंग में] **(अर्क सु अर्क सु अर्क मउ)** चैतन्य स्वरूप प्रकाश ही प्रकाशमयी अनुभव में आता है **(स)** वह **(विंद)** अनुभव **(विन्यान)** आत्मज्ञान **(उत्तु)** कहा गया है ।

अर्क सुयं जिन अर्क पउ, हिय अर्क रमन हिययार ।
गुपित अर्क सहकार जिनु, विंद रमन विन्यानु॥ ७॥

भावार्थ :- **(जिनु)** हे अंतरात्मन् ! **(अर्क)** ज्ञान से प्रकाशमान **(सुयं)** स्वयं का **(अर्क पउ)** दैदीप्यमान पद है **(हिय)** हृदय में **(अर्क)** प्रकाशित स्वरूप में **(रमन)** रमण करना **(हिययार)** हितकारी [सम्यग्ज्ञान] है **(विन्यानु)** भेदज्ञान पूर्वक **(गुपित)** स्व संवेदनगम्य **(अर्क)** दैदीप्यमान **(जिनु)** वीतराग स्वरूप की **(विंद)** निर्विकल्प अनुभूति में **(रमन)** लीन रहना **(सहकार)** सहकार अर्थ सम्यक्चारित्र है।

पय अर्कह पद विंद समु, पदह परम पद उत्तु ।
परमप्पय परमप्पु जिन, भय षिपिय अमिय रस उत्तु ॥ ८ ॥

भावार्थ :- **(पय)** अमृत स्वरूप **(अर्कह पद)** प्रकाशमान निज पद का **(विंद समु)** अनुभव करना समभाव है **(पदह परम पद)** यह पद ही परम पद **(उत्तु)** कहा गया है **(परमप्पु जिन)** जिनेन्द्र परमात्मा ने [अपने] **(परमप्पय)** परमात्म पद को **(भय षिपिय)** भयों को क्षय करने वाला **(अमिय रस)** अमृत रसमयी **(उत्तु)** कहा है ।

अर्थति अर्थह अर्क समु, लघु दीरघ नहु दिट्ठु ।
अर्क विन्द विन्यान समु, उत्पन्न भाउ सुइ इस्टु ॥ ९ ॥

भावार्थ :- **(अर्थह)** प्रयोजनीय **(अर्थति)** रत्नत्रयमयी स्वभाव के **(अर्क)** प्रकाश रूप **(समु)** समभाव में [कोई] **(लघु दीरघ)** छोटा बड़ा **(नहु दिट्ठु)** दिखाई नहीं देता **(विन्यान)** भेदज्ञान के द्वारा **(अर्क)** प्रकाशमयी स्वभाव **(विंद)** अनुभूति पूर्वक **(समु भाउ)** समभाव [वीतराग भाव] उत्पन्न हुआ है [इसी में रहो] **(सुइ इस्टु)** यही इष्ट है।

धरयति धम्मु जु जिन कहिउ, धरयति लोउ अलोउ ।
अर्थति अर्थह समय समु, भय षिपिय अमिय सुइ उत्तु ॥१० ॥

भावार्थ :- **(अर्थह)** प्रयोजनीय **(समय)** स्व समय अर्थात् निज आत्मा **(अर्थति)** रत्नत्रयमयी **(समु)** समभाव रूप है, यह **(भय षिपिय)** भयों को क्षय करने वाला **(अमिय)** अमृत स्वरूप **(सुइ उत्तु)** कहा गया है **(जु)** जो जीव **(जिन कहिउ)** जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए **(धम्मु)** धर्म को **(धरयति)** धारण करता है, वह **(लोउ अलोउ)** लोक और अलोक को **(धरयति)** धारण करता है [अर्थात् लोकालोक को जानने वाला केवलज्ञानी परमात्मा हो जाता है]।

धरयति धरियो ममल पउ, समल भाव विलयंतु ।
जामन मरन जु समल पउ, अन्मोय न्यान विलयंतु ॥११ ॥

भावार्थ :- **(धरयति)** ज्ञानीजन जिसे धारण करते हैं, ऐसे **(ममल पउ)** ममल पद को **(धरियो)** धारण करो, इससे **(समल भाव)** रागादि विकारी भाव **(विलयंतु)** विलय हो जाते हैं [और] **(जामन मरन)** जन्म - मरण आदि **(जु)** जो **(समल पउ)** कर्म जनित अशुद्ध दशायें हैं **(अन्मोय न्यान)** ज्ञान स्वभाव की अनुमोदना से [वे] **(विलयंतु)** क्षय हो जाती हैं।

धरनु विलय जिनु धरन धरिउ, धम्मु तिलोय पसिद्धु ।
नंत न्यान विन्यान पउ, पर पर्जय विलयंतु ॥१२ ॥

भावार्थ :- **(जिनु)** हे अंतरात्मन् ! **(धम्मु)** धर्म **(तिलोय)** तीन लोक में **(पसिद्धु)** प्रसिद्ध है **(धरिउ)** इसे धारण करो **(धरन)** इसको धारण करने से **(धरनु विलय)** जो मिथ्या मान्यतायें अनादिकाल से धारण की हैं, वे विला जायेंगी **(नंत न्यान विन्यान पउ)** अनंत ज्ञान विज्ञान मयी पद में रहने से **(पर पर्जय)** पर पर्यायें **(विलयंतु)** विला जायेंगी।

गहनु विलय अगहनु गहउ, भय सल्य संक विलयंतु ।
अमिय पयोहर रमन पउ, अभय अमिय विलसंतु ॥१३ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(अगहनु)** जिस स्वभाव को ग्रहण नहीं किया **(गहउ)** उसे ग्रहण करो, इससे **(गहनु विलय)** अनादिकाल से जो अज्ञान अधर्म आदि ग्रहण किया है, वह विला जायेगा **(भय सलय संक विलयंतु)** भय शल्य शंकायें दूर हो जायेंगी **(अमिय पयोहर)** अमृत मयी सिंधु **(पउ)** निज पद में **(रमन)** रमण करो **(अभय)** भय रहित होकर **(अमिय)** अमृतमयी स्वरूप में **(विलसंतु)** विलास करो।

सहनु विलय जिन सहनु सहिउ, सहिय न्यान उवएसु ।
धरनु धरिउ जिन धरनु जिन, पर्जय भय नंत विलंतु ॥१४ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतरागता **(सहिउ)** सहित रहो **(सहनु)** इसी को सहन अर्थात्

स्वीकार करो, इससे **(सहनु विलय)** जो अभी तक पुण्य – पाप कर्मों को सहन किया है, वह विला जायेगा **(सहिय न्यान)** ज्ञान भाव सहित रहने का **(उवएसु)** भगवान ने उपदेश दिया है **(जिन)** जो वीतरागता **(जिन धरनु)** जिनेन्द्र परमात्मा ने धारण की है वैसी **(धरनु)** धारण करने योग्य वीतरागता को [तुम] **(धरिउ)** धारण करो, इससे **(पर्जय भय नंत)** अनंत पर्यायी भय **(विलंतु)** क्षय हो जायेंगे।

रहनु विलय जिन रहनु रहिउ, रहि पर्जय विलयंतु ।
दिप्ति दिस्टि सुइ न्यान पउ, विन्यान मुक्ति दर्संतु ॥१५ ॥

भावार्थ :– [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतराग भाव में **(रहिउ)** रहो **(रहनु)** इसमें रहने से **(रहनु विलय)** विभावों में रहना छूट जायेगा **(रहि)** इस रहनि अर्थात् इस प्रकार वीतराग भाव में रहने से **(पर्जय विलयंतु)** पर्यायें विला जायेंगी **(विन्यान)** भेदज्ञान पूर्वक **(दिस्टि)** द्रव्य दृष्टि के द्वारा **(दिप्ति)** दिव्य प्रकाशमयी **(सु न्यान)** स्वयं के ज्ञान स्वभाव को **(पउ)** प्राप्त करो [और] **(मुक्ति दर्संतु)** मुक्ति श्री का दर्शन करो अर्थात् मुक्ति श्री के अतीन्द्रिय अमृत रस में निमग्न रहो।

रमनु विलय जिन रमनु रमिउ, रमियो उवनु हिययार ।
सहयार रमनु साहिउ ममलु, अमिय रस रमन हिययार ॥ १६ ॥

भावार्थ :– [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतराग स्वभाव में **(रमिउ)** रमण करो **(रमनु)** इस रमणता से **(रमनु विलय)** पर भावों में रमण होना छूट जायेगा **(रमियो उवनु)** स्वानुभूति में रमण करना **(हिययार)** हितकारी है **(साहिउ ममलु)** ममल स्वभाव की साधना पूर्वक **(रमनु)** लीनता **(सहयार)** सम्यक्‌चारित्र है **(अमिय रस)** अमृत रस में **(रमन)** लीन रहना ही **(हिययार)** हितकारी, कल्याणकारी है।

दंसु गलिय जिन दर्स धरिउ, दिस्टि गलिय जिन दिस्टि ।
तारन तरन सहाउ लई, धम्मु इस्टि परमिस्टि ॥ १७ ॥

भावार्थ :– [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतराग स्वभाव के **(दर्स)** दर्शन को **(धरिउ)** धारण करने से **(दंसु गलिय)** पर्याय दृष्टि से उत्पन्न होने वाला कष्ट गल जाता है **(जिन दिस्टि)** वीतराग भाव की दृष्टि होने पर **(दिस्टि गलिय)** पर्याय दृष्टि गल जाती है **(तारन तरन सहाउ लई)** तारण तरण स्वभाव जो अंतर में प्रगट हुआ है **(इस्टि परमिस्टि)** यही इष्ट परमेष्ठी स्वभाव है **(धम्मु)** इसमें रहना ही धर्म है।

लषु गलिय जिन लषु लषिउ, जिनयति कम्म सहाउ ।
भय विनासु भवु जु मुनहु, अमिय ममल सुभाउ ॥१८॥

भावार्थ :– [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतराग स्वभाव को **(लषिउ)** लखो **(लषु)** इसको लखने से **(लषु गलिय)** पर पर्याय को लखना गल जाता है **(भवु जु)** जो भव्य [ज्ञानी] **(अमिय)** अमृत मयी **(ममल सुभाउ)** ममल स्वभाव का **(मुनहु)** मनन करते हैं, उनके **(भय विनासु)** भय विनस जाते हैं, वे **(सहाउ)** स्वभाव के आश्रय से **(कम्म)** कर्मों को **(जिनयति)** जीत लेते हैं।

अलषु गलिय जिन अलषु लषिउ, लषंतउ ममल सहाउ ।
भय षिपनिकु पर्जय विलयं, विषु विलय अमिय रस भाउ ॥ १९ ॥

भावार्थ :– (जिन) हे अंतरात्मन् ! **(अलषु)** इन्द्रिय और मन से पकड़ में नहीं आने वाले स्वभाव को **(लषिउ)** लखो **(ममल सहाउ)** ममल स्वभाव को **(लषंतउ)** लखने से **(अलषु गलिय)** रागादि भाव जो लखने योग्य नहीं हैं वे गल जायेंगे **(अमिय रस)** अमृत रसमयी स्वभाव की **(भाउ)** भावना भाओ, जिससे **(भय षिपनिकु)** भय क्षय हो जायेंगे **(पर्जय विलयं)** पर्याय विला जायेगी **(विषु विलय)** रागादि

का जहर उतर जायेगा।

गंमु गलिय जिन गमु गमिऊ, गम दिप्ति दिस्टि उव उत्तु ।
सब्द इस्टि सुइ अमिय मउ, भय षिपिय ममल दर्संतु ॥२०॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(जिन)** वीतराग स्वरूप को **(गमिऊ)** स्व संवेदन पूर्वक जानो **(गमु)** इसे जानने से **(गंमु गलिय)** सांसारिक अनुभव गल जायेंगे **(उव)** शुद्धात्म तत्त्व को **(दिस्टि)** द्रव्य दृष्टि से देखने पर **(दिप्ति)** दैदीप्यमान स्वभाव का **(गम)** अनुभव होता है **(उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान ने ऐसा कहा है **(सब्द)** जिनवचनों के द्वारा **(इस्टि सुइ)** अपने इष्ट **(अमिय मउ)** अमृतमयी **(ममल)** ममल स्वभाव को **(दर्संतु)** देखो, इससे **(भय षिपिय)** भय क्षय हो जायेंगे।

अगमु गलिय जिनु अगमु गमिउ, गमियो नंतानंतु ।
विंद विन्यान सु समय मउ, धम्मु रमनु सिव पंथु ॥ २१ ॥

भावार्थ :- (जिनु) हे अंतरात्मन् **! (अगमु)** अतीन्द्रिय स्वभाव को **(गमिउ)** जान लिया, इससे **(अगमु गलिय)** स्वभाव को नहीं जानने रूप परिणति गल गई [अपने] **(नंतानंतु)** अनंत सत्ता स्वरूप के **(गमियो)** अनुभव में रत रहो **(विन्यान)** भेदज्ञान पूर्वक **(सुसमय)** शुद्धात्मा की **(विंद)** निर्विकल्प अनुभूति **(मउ)** मयी **(धम्मु)** धर्म में **(रमनु)** रमण करना **(सिव पंथु)** मोक्षमार्ग है।

लब्धि गलिय जिन लब्धि पउ, जिनियो कम्मु सहाउ ।
पर्जय भय विलयंतु सुइ, अमिय रस ममल सुभाउ ॥ २२ ॥

भावार्थ :- (जिन) हे अंतरात्मन् **! (पउ)** निज पद की **(लब्धि)** प्राप्ति हुई है **(लब्धि गलिय)** वैभाविक उपलब्धियाँ गल गई हैं **(सहाउ)** स्वभाव के आश्रय से **(कम्मु)** कर्मों को **(जिनियो)** जीतो **(अमिय रस)** अमृत रसमयी **(ममल सुभाउ)** ममल स्वभाव में रहो **(पर्जय भय)** पर्यायी भय **(विलयंतु सुइ)** स्वयमेव विला जायेंगे।

परम परम परिनामु धरि, परम न्यान सहकार ।
पर पर्जय भय सल्य विली, परम धर्म सहकार ॥ २३ ॥

भावार्थ :- [हे आत्मन् !] **(परम न्यान)** उत्कृष्ट ज्ञान [सम्यग्ज्ञान] का **(सहकार)** सहकार कर **(परम परम)** उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होते हुए **(परिनामु धरि)** परिणामों को धारण करो **(परम धर्म सहकार)** सत्यधर्म को स्वीकार करो, इससे **(पर पर्जय)** पर पर्याय **(भय सल्य विली)** भय शल्य आदि विभाव विला जायेंगे।

धर्म दीप्ति गाथा का सारांश

धर्म दिप्ति गाथा, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मण्डलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की पाँचवीं फूलना है। इस फूलना में सच्चे धर्म का स्वरूप बतलाया गया है। धर्म दिप्ति गाथा का अर्थ है धर्म का स्वरूप प्रकाशित करने वाली फूलना।

आचार्य देव इस फूलना में कहते हैं कि श्री जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार प्रयोजनीय रत्नत्रय की आराधना करना धर्म है। इस धर्म के आश्रय से जीव निर्भय हो जाता है और परम्परा से मुक्ति को प्राप्त करता है।

वस्तुतः वीतराग धर्म का वीतराग भाव में वीतरागी साधु ही प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। निचली भूमिका के साधक श्रद्धान, ज्ञान तथा यथायोग्य चारित्र प्रमाण अनुभव करते हैं। धर्म तिअर्थमयी है, तिअर्थ का

आशय यहाँ रत्नत्रय से है। यह तिअर्थमयी आत्मधर्म अमृत स्वरूप है। इसमें रमण करने से भय, शल्य, शंकायें समाप्त हो जाती हैं। भेदज्ञान पूर्वक प्रगट होने वाला आत्मधर्म अनुभव में प्रकाश रूप वर्तता है। धर्मात्मा जीव पूर्ण ज्ञान स्वरूप का श्रद्धानी होता है, निर्विकल्प स्वभाव को इष्ट मानता है। किसी को पर्याय दृष्टि से छोटा बड़ा नहीं देखता। उसके विकारी भाव विलय हो जाते हैं और जन्म - मरण का अभाव हो जाता है। जिनेन्द्र भगवान की देशना है कि ऐसे धर्म का धारक जीव परमात्म पद प्राप्त करता है।

धर्म ऐसा परम अमृत है जिसको जीव ने अभी तक धारण, ग्रहण, सहन, रहनि (निवास), रमण, दर्शन, अनुभव और प्राप्त नहीं किया। जीव उपरोक्त शब्दों के क्रमानुसार धर्म को धारण, ग्रहण, सहन (स्वीकार), रहनि (निवास) आदि पूर्वक प्राप्त करे तो पर्यायी अनंत भय और उक्त शब्दों के अनुसार संसार और कर्मों का धारण, ग्रहण आदि समाप्त हो जावेगा।

धर्म चर्चा का नहीं, चर्या का विषय है। धर्म परिभाषा नहीं, जीवन का प्रयोग है। धर्म शब्दों में नहीं, स्वानुभव में है। धर्म की अपूर्व महिमा है। धर्म की साधना आराधना और स्वभाव लीनता से मुक्ति की प्राप्ति होती है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ - परम इष्ट प्रयोजनीय क्या है ?

उत्तर - संसार के सभी जीवों को स्वभाव से परमात्म स्वरूप देखना, किसी से राग-द्वेष नहीं होना, अपने प्रकाशमान परमपद के आश्रय से समभाव में रहना ही परम इष्ट प्रयोजनीय है।

प्रश्न २ - धर्म जीवन में किस प्रकार प्रगट होता है ?

उत्तर - धर्म पर पदार्थों के आश्रय से और परोन्मुखी दृष्टि से नहीं होता, आनंदमयी त्रिकाली ममल स्वभाव के आश्रय से स्वानुभूति पूर्वक धर्म जीवन में प्रगट होता है।

प्रश्न ३ - रमण करने योग्य क्या है ?

उत्तर - परम शुद्ध त्रिकाली ध्रुव ममलह ममल स्वभाव रमण करने योग्य है।

प्रश्न ४ - जन्म-मरण का अभाव किसको होता है ?

उत्तर - कर्म से निबद्ध जीव देह में रहता हुआ भी कभी कर्म रूप या देह रूप नहीं होता, ऐसे अनादि अनंत ममल स्वभाव को जो स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जानते हैं और अपने शुद्धात्म स्वरूप में लीन होते हैं ऐसे ज्ञानी जनों के जन्म-मरण का अभाव होता है।

प्रश्न ५ - निर्मल ज्ञान के प्रकाश में कौन से मंत्र सहकारी हैं ?

उत्तर - ओंकार, ह्रींकार, श्रींकार मंत्र निर्मल ज्ञान के प्रकाश में सहकारी हैं।

प्रश्न ६ - ओम् , ह्रीं, श्रीं मंत्र का ध्यान करने से क्या लाभ है ?

उत्तर - **ओम्-**ओम् मंत्र पंच परमेष्ठी वाचक है। ओम् मंत्र का ध्यान करने से ओंकार स्वरूप परमात्म सत्ता अनुभव में आती है।

ह्रीं - ह्रीं मंत्र चौबीस तीर्थंकर अर्हंत सर्वज्ञ स्वरूप का वाचक है। ह्रीं मंत्र का ध्यान करने से तीर्थंकर स्वरूप सर्वज्ञपना अंतरंग में प्रगट होता है।

श्रीं - श्रीं मंत्र केवलज्ञानमयी मोक्ष लक्ष्मी स्वरूप है। श्रीं मंत्र का ध्यान करने से अपने श्रेष्ठ पद शुद्धात्म स्वरूप में लीनता होती है।

प्रश्न ७ – जिनेन्द्र परमात्मा ने अमृत रस किसे कहा है ?

उत्तर – परम प्रयोजनीय रत्नत्रयमयी ममल स्वभावी आत्मा आनन्द रसमय है, उसमें रमण करने से अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति होती है वही अमृत रस है।

प्रश्न ८ – भय शल्य शंका कब उत्पन्न नहीं होती ?

उत्तर – ममल स्वभाव में रमण करने से वीतरागता आती है, वीतरागता ही धर्म है। वीतराग स्वरूप त्रिकाली ध्रुव ममलह ममल स्वभाव का प्रकाश होने पर भय शल्य शंका उत्पन्न नहीं होती।

प्रश्न ९ – प्राप्त ज्ञान का सदुपयोग करने से क्या लाभ है ?

उत्तर – ज्ञान गुण प्रत्येक जीव में परिपूर्ण है। मनुष्य पर्याय में जो क्षयोपशम ज्ञान मिला है उसका उपयोग स्वद्रव्य में करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के योग बनते हैं, आत्म शांति मिलती है, ज्ञानादि गुणों में वृद्धि होती है, केवलज्ञान की प्राप्ति होती है तथा सिद्ध पद प्रगट होता है।

प्रश्न १०– प्राप्त ज्ञान का दुरुपयोग करने से क्या हानि है ?

उत्तर – प्राप्त क्षयोपशम ज्ञान को इन्द्रियों के व्यापार में लगाना, विषयों में रमण करना, परद्रव्य और परभावों में लगाना, प्राप्त ज्ञान का दुरुपयोग है। रागादि विकारी भाव संसार के बीज हैं, निगोद में ले जाने वाले हैं। प्राप्त क्षयोपशम ज्ञान का सदुपयोग करने से सिद्ध अवस्था मिलती है और दुरुपयोग करने से निगोद अवस्था मिलती है, जहाँ ज्ञान का अक्षर के अनन्तवें भाग प्रमाण उघाड़ रहता है।

प्रश्न ११– परम धर्म में सहकारी क्या है ?

उत्तर – परम श्रेष्ठ, परम पारिणामिक भाव ही परम धर्म में सहकारी है।

प्रश्न १२– धर्म का आश्रय लेने से जीव को क्या उपलब्धियाँ होती हैं ?

उत्तर – धर्म के आश्रय से जीव को जो विशेष उपलब्धियाँ होती हैं वे इस प्रकार हैं –

०१. ज्ञायक भाव प्रगट होता है।
०२. अमृत रस की अनुभूति होती है।
०३. रागादि भाव विला जाते हैं /क्षय हो जाते हैं।
०४. समभाव प्रगट होता है।
०५. पर्यायी भयों का अभाव हो जाता है।
०६. रत्नत्रयमयी अभेद स्वभाव की अनुभूति होती है।
०७. मुक्ति मार्ग प्रगट हो जाता है।
०८. कर्मों पर विजय प्राप्त होती है।
०९. जन्म–मरण का अभाव हो जाता है।
१०. आनन्द परमानंदमयी शिव पद की प्राप्ति होती है।

४ – चेतक हियरा फूलना (फूलना ११)

(**विषय :** लक्षण परिणाम, अर्थ पय)

उवंकार उवंन उवंन पउ, सुइ नंद अनंदे ।
विन्यान विंद रस रमनु है, जिन जिनय जिनंदे ॥
जिन जिनियौ कम्मु अनंतु है, जिन रमन सनंदे ।
सुइ चेयननंद सनंदु, कमल जिन सहज सनंदे ॥ १ ॥
सो न्यानी तू चाहिलै, हो चेतक हियरा ।
विन्यान विंद रस रमनु, षिपक जिन वेदक हियरा ॥
षट् रमन कमल रस रमनु है, हो चेतक हियरा ।
तं अमिय रमनु विष गलनु, सुयं जिन वेदक हियरा ॥
भय षिपनिक भवु स उत्तु है, हो चेतक हियरा ।
लषिमेव रमन परमत्थु, जिनय जिन वेदक हियरा ॥
वैदिप्ति हियार रस रमन पउ, हो चेतक हियरा ।
सिहु समय सिद्धि संपत्तु, ममल रस वेदक हियरा ॥ २ ॥
॥ आचरी ॥

भावार्थ :- (जिन) हे अंतरात्मन् ! **(उवंकार)** ओंकार परमात्म सत्ता स्वरूप **(पउ)** निज पद **(उवंन)** अनुभूति में **(उवंन)** प्रगट हुआ है **(सुइ)** यह **(नंद अनंदे)** नंद-आनंद मयी **(है)** है **(विन्यान)** भेद विज्ञान पूर्वक **(विंद रस)** स्वानुभूति के रस में **(रमनु)** रमण करो **(जिनय जिनंदे)** जिनेन्द्र पद को जीतो अर्थात् प्रगट करो **(जिन)** हे अंतरात्मन् ! **(सनंदु)** आनंद **(चेयननंद)** चिदानंद **(सहज सनंदे)** सहजानंदमयी **(सुइ)** अपना **(कमल जिन)** ज्ञायक जिन स्वभाव है **(सनंदे)** आनंदमयी **(जिन रमन)** वीतराग भाव में रमण करने से **(कम्मु अनंतु)** अनंत कर्मों पर **(जिनियो)** विजय प्राप्त होती **(है)** है।

(सो न्यानी) हे ज्ञानी ! **(तू)** तुम **(चेतक हियरा)** चैतन्य हीरा को **(चाहिलै हो)** प्राप्त करने की भावना भाओ **(विन्यान)** भेदज्ञान पूर्वक **(विंद रस)** निर्विकल्प रस में **(रमनु)** रमण करो **(जिन)** वीतराग स्वरूप **(वेदक हियरा)** ज्ञायक हीरा **(षिपक)** कर्मों को क्षय करने वाला है **(षट् कमल)** षट् कमल की साधना से **(रस रमनु है)** निज रस में रमण होता है **(हो चेतक हियरा)** तुम चैतन्य हीरा हो **(रमन)** अपने में लीन रहो **(सुयं जिन)** स्वयं जिन स्वरूप **(वेदक हियरा)** ज्ञायक हीरा हो **(तं अमिय रमनु)** इसी अमृत स्वभाव में रमण करो, इससे **(विष गलनु)** पर्यायी विष गल जायेगा।

(भवु) हे भव्य ! **(हो चेतक हियरा)** तुम चैतन्य हीरा हो **(स)** स्व स्वभाव **(भय षिपनिक)** भयों को क्षय करने वाला **(उत्तु है)** कहा गया है **(वेदक हियरा)** ज्ञायक भाव को **(जिनय)** जीतना **(जिन)** वीतराग स्वभाव को **(लषिमेव)** लखना **(रमन)** रमण करना, यही **(परमत्थु)** परमार्थ [मोक्षमार्ग] है [तुम] **(वैदिप्ति)** परम दैदीप्यमान **(रस)** निजरस से परिपूर्ण **(पउ)** पद के धारी **(हो चेतक हियरा)** चैतन्य हीरा हो, इसमें **(रमन)** रमण करना **(हिययार)** हितकारी है **(वेदक हियरा)** ज्ञायक हीरा के **(ममल रस)** ममल रस अर्थात् स्वभाव लीनता से **(सिहु समय)** अल्पकाल में ही **(सिद्धि संपत्तु)** सिद्धि की संपत्ति प्राप्त होगी।

उत्पन्न कमल जिन उत्तु है, उव उवन स उत्तं ।
परिनामु नंतानंत सुयं सुइ, षिपक स उत्तं ॥
तं कमल कंद जिन उत्तु है, जिन जिनय जिनंदं ।
तं विंद रमनु विन्यान चरनु, सुइ सहज जिनंदं ॥ ३ ॥

भावार्थ :- (जिन उत्तु) जिन वचनों को स्वीकार करने से **(कमल)** ज्ञायक भाव **(उत्पन्न)** उत्पन्न हुआ **(है)** है **(स)** वही **(उव)** ओंकारमयी शुद्धात्म स्वरूप का **(उवन)** अनुभव **(उत्तं)** कहा है **(सुयं)** स्वयं का **(स)** यह अनुभव **(सुइ)** सहज ही **(नंतानंत परिनामु)** अनंत विभाव परिणामों को **(षिपक)** क्षय करने वाला **(उत्तं)** कहा है **(जिन उत्तु है)** जिनेन्द्र भगवान ने कहा है कि **(जिन)** वीतराग **(कमल कंद)** ज्ञायक स्वभाव **(जिनंदं)** जिनेन्द्र पद **(तं)** को **(जिनय)** जीतो **(विन्यान)** भेदज्ञान पूर्वक **(जिनंदं)** जिनेन्द्र पद की **(तं विंद)** अनुभूति में **(रमनु)** रमण करना ही **(सुइ सहज)** सम्यक्ज्ञानी का सहज **(चरनु)** आचरण है।

विन्यान न्यान रस रमनु जिनु, सुइ परम सनंदे ।
तं विंद रमनु विन्यान गमनु, सुइ सहज सविंदे ॥
सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क पउ, सुइ लषिय सलष्ये ।
सर्वार्थसिद्धि सुइ समय मउ, सुइ परम परिष्ये ॥ ४ ॥

भावार्थ :- (जिनु) हे अंतरात्मन्! **(सुइ परम सनंदे)** अपने परम आनंद स्वरूप **(विन्यान न्यान रस)** ज्ञान विज्ञानमयी स्वभाव के रस में **(रमनु)** रमण करो **(विन्यान)** भेदज्ञान पूर्वक **(तं विंद रमनु)** निर्विकल्प स्वानुभूति में रमण करना ही **(सुइ सहज सविंदे)** अपनी सहज स्वभाव की अनुभूति में **(गमनु)** गमन करना है **(सुइ अर्क सु अर्क सु अर्क पउ)** ज्ञान से प्रकाशमान परिपूर्ण दैदीप्यमान स्वयं का निज पद है **(सलष्ये)** इसको लखो **(सुइ लषिय)** अपने में ही लखो **(सर्वार्थसिद्धि सुइ समय मउ)** सर्वार्थ सिद्धि स्व समयमयी है, अतः **(सुइ परम परिष्ये)** अपने श्रेष्ठ स्वभाव को परखो अर्थात् अनुभवन करो।

सो अर्थति अर्थ समर्थ पउ, सम अर्थ सु भवने ।
सम समय संमत्तु जिनुत्तु, जिनय जिन न्यान श्रवने ॥
सहयार अर्थ जिन उत्तु सुइ, अवयास अनंते ।
तं नंतानंतु अनंतु, अलष जिन जिनय जिनुत्ते ॥ ५ ॥

भावार्थ :- (सो) यह **(अर्थति)** रत्नत्रयमयी **(अर्थ)** प्रयोजनीय **(पउ)** पद ही **(समर्थ)** समर्थ पद है **(भवने)** संसार में **(सु)** अपना **(सम)** सम्यक् स्वभाव **(अर्थ)** प्रयोजनीय है **(सम)** समभाव पूर्वक **(समय)** आत्म श्रद्धान करना **(संमत्तु)** सम्यक्त्व है, ऐसा **(जिनुत्तु)** जिनेन्द्र भगवान ने कहा है **(श्रवने)** जिन वचन श्रवण करके **(न्यान)** ज्ञान स्वभावी **(जिन)** वीतराग पद को **(जिनय)** जीतो **(जिन उत्तु)** श्री जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि **(सुइ अवयास अनंते)** आकाश के समान अपने अनंत निर्मल स्वभाव में रहना **(सहयार अर्थ)** सहकार अर्थ अर्थात् सम्यक्चारित्र है **(नंतानंतु अनंतु)** अनंत - अनंत **(अलष जिन)** अतीन्द्रिय वीतराग स्वभाव **(तं)** को **(जिनय)** जीतो **(जिनुत्ते)** यही जिनोपदेश है।

अन्मोय अर्थ सुइ ममल पउ, सुइ रमन संजोए ।
तं षिपियौ नंतानंतु, जिनय जिन न्यान अन्मोए ॥

सुइ रमन सुयं सुइ रमन पउ, सुइ सहज जिनंदे ।
तं विंद कमल रस रमन, परम जिन परम सनंदे ॥ ६ ॥

भावार्थ :– [हे अन्तरात्मन्!] **(अर्थ सुइ)** अपने प्रयोजनीय **(ममल पउ)** ममल पद की **(अन्मोय)** अनुमोदना करो **(संजोए)** इसी को संजोओ **(सुइ रमन)** इसी में रमण करो **(न्यान)** ज्ञानमयी **(जिन)** वीतराग स्वभाव को **(जिनय)** जीतो, जो **(नंतानंतु)** अनंतानंत **(षिपियौ)** क्षायिक स्वरूप है **(तं)** इसी की **(अनमोए)** अनुमोदना करो **(सुयं)** स्वयं **(सुइ पउ)** निज पद में **(रमन)** रमण करो **(सुइ रमन)** स्वयं को रमन करने के लिए **(सुइ सहज जिनंदे)** अपना सहज जिनेन्द्र स्वरूप है **(परम सनंदे)** परम आनंदमयी **(परम जिन)** श्रेष्ठ वीतराग **(कमल)** ज्ञायक स्वभाव के **(तं विंद)** निर्विकल्प **(रस)** रस में **(रमन)** लीन रहो।

कमल सुभाव जिनुत्तु सुइ, जिन जिनय स उत्ते ।
सुइ नंतानंतु जिनुत्तु है, कलि कमल पयत्ते ॥
जिन उत्तु जिनुत्तु सु समय मउ, सुइ परिनै उत्ते ।
सुइ साहिय नंतानंत विसेष, परम जिनु परम पयत्ते ॥ ७ ॥

भावार्थ :– (जिनुत्तु सुइ) श्री जिनेन्द्र भगवान कहते हैं कि अपने **(कमल सुभाव)** ज्ञायक स्वभाव में रहो **(जिन जिनय)** वीतराग पद को जीतो अर्थात् प्रगट करो **(स उसे)** यही जिन वचन हैं **(जिनुत्तु है)** जिनेन्द्र भगवान की देशना है कि **(सुइ नंतानंतु)** अपना अनंतानंत स्वभाव **(कमल पयत्ते)** कमल पत्र की तरह संयोगों से भिन्न रहता है **(कलि)** इसी में आनंदित रहो **(जिन उत्तु जिनुत्तु)** जिनेन्द्र परमात्मा ने बार – बार यही कहा है कि **(सु समय मउ)** शुद्धात्म स्वरूपमय होकर **(सु परिनै)** इसी में परिणत रहो **(उत्ते)** जिनोपदेश है कि **(नंतानंत)** अनंत चतुष्टमयी **(परम जिनु)** परम वीतराग **(परम पयत्ते)** परम पद की प्राप्ति हेतु **(सु साहिय)** स्वभाव साधना करना **(विसेष)** विशेष पुरुषार्थ है।

सुइ समय सहाउ जिनुत्तु जिनु, सहयार जिनुत्ते ।
अवयासह नंतानंतु है, तं कमल पयत्ते ॥
अन्मोय अर्थ सुइ अर्थ जिनु, सुइ कमल सनंदे ।
तं षिपियो नंतानंत पयडि, जिन परम जिनंदे ॥ ८ ॥

भावार्थ :– (जिनु) हे अंतरात्मन्! **(जिनुत्तु जिनुत्ते)** जिनेन्द्र भगवान ने दिव्य ध्वनि में कहा है कि **(सु समय सहाउ)** शुद्धात्म स्वरूप का **(सहयार)** सहकार करो **(कमल)** ज्ञायक स्वरूप **(नंतानंतु)** अनंत चतुष्टमयी **(तं पयत्ते)** पद को प्राप्त करने के लिये **(अवयासह)** पुरुषार्थ करो **(सुइ कमल सनंदे)** अपने ज्ञायक आनंदमयी **(अर्थ जिनु)** प्रयोजनीय वीतराग स्वभाव में **(अन्मोय)** लीन रहो **(अर्थ सुइ)** यही कार्यकारी है, इससे **(नंतानंत पयडि)** कर्मों की अनंत प्रकृतियाँ **(तं षिपियो)** क्षय हो जावेंगी, और **(जिन परम जिनंदे)** परम वीतरागी जिनेन्द्र पद प्रगट हो जावेगा।

सुइ षिपक भाउ सुइ उत्तु जिनु, सुइ जिनय जिनंदे ।
तं मुक्ति रमनि सिद्धि रत्तु, परम जिन परम सनंदे ॥
तं तरन विवान सहाउ मउ, सम समय सनंदे ।
सिहु समय सिद्धि संपत्तु, जिनय जिन सहज जिनंदे ॥ ९ ॥

भावार्थ :– (उत्तु जिनु) श्री जिनेन्द्र परमात्मा कहते हैं कि **(सुइ जिनय जिनंदे)** अपने जिनेन्द्र

पद को जीतना अर्थात् स्वभाव की अटल श्रद्धा होना **(सुइ षिपक भाउ)** यही क्षायिक भाव है **(सुइ)** अपने **(परम सनंदे)** परम आनंदमयी **(परम जिन)** परम वीतराग स्वभाव में **(रत्तु)** लीन रहना ही **(तं सिद्धि मुक्ति रमनि)** सिद्धि मुक्ति में रमण करना है **(सम)** समभाव सहित **(सनंदे)** आनंद स्वरूप **(समय)** शुद्धात्म **(सहाउ मउ)** स्वभावमय अर्थात् अनंत चतुष्टय की प्राप्ति होना **(तं तरन विवान)** यही तरण विमान है **(जिन सहज जिनंदे)** वीतराग सहजानंदमयी जिनेन्द्र पद की **(जिनय)** प्राप्ति होने पर **(सिहु समय)** शीघ्र समय में अर्थात् अल्प समय में ही **(सिद्धि संपत्तु)** सिद्धि की संपत्ति प्राप्त होती है।

चेतक हियरा फूलना का सारांश

चेतक हियरा फूलना, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भयषिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की ग्यारहवीं फूलना है। इस फूलना में आत्मार्थी ज्ञानी की अंतरंग भावना, चैतन्य स्वरूप की महिमा आदि का अद्‌भुत कथन किया गया है। चेतक हियरा फूलना का अर्थ है चैतन्य हीरा का स्वरूप बतलाने वाली फूलना।

चैतन्य हीरा क्या है ? आचार्य कहते हैं कि ओंकार सत्ता स्वरूप, नंद आनंदमयी, स्व संवेदनगम्य, ज्ञायक स्वभाव ही चैतन्य हीरा है। ज्ञानी ध्यानी इसी चैतन्य हीरा की भावना भाते हैं और इसी को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं।

रागादि विभावों का अत्यधिक विस्तार है, इनसे अपने आपको बचाने वाला, स्वभाव का जिसको दृढ़ लक्ष्य है ऐसा आत्मज्ञ पुरुषार्थ चैतन्य हीरा को प्राप्त करता है। चैतन्य हीरा अर्थात् ज्ञायक स्वभाव के आश्रय पूर्वक ज्ञानामृत में रमण करने से रागादि का विष दूर हो जाता है।

चैतन्य स्वभाव को हीरा की उपमा दी गई है। यह चैतन्य अपने चित्प्रकाश से परम दैदीप्यमान, कमल स्वभाव, परमात्म स्वरूप, कर्म विजेता, मुक्ति को प्राप्त कराने वाला है। इस चैतन्य स्वभाव का एक समय का श्रद्धान सम्यग्दर्शन, स्वभाव रूप परिणति होना सम्यग्ज्ञान और स्वभाव में लीन हो जाना सम्यक्‌चारित्र है। इनको ही क्रमशः उत्पन्न अर्थ, हितकार अर्थ और सहकार अर्थ कहा गया है। तिअर्थ की साधना सहजानंद परमानंद को प्राप्त कराती है।

अनंत चतुष्टयमयी स्व समय अर्थात् शुद्धात्म स्वरूपमय होना तरण विमान है। इसी के सहारे कर्म क्षय होते हैं और जिनेन्द्र पद प्रगट हो जाता है। अनंत चतुष्टय प्रगट होने के बाद अघातिया कर्मों के अभाव होने पर सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – चेतक हियरा क्या है ?

उत्तर – आत्मा स्वसंवेदन गम्य ज्ञानमयी तत्त्व है, जिसमें परसंयोग एवं रागादि भावों का अभाव है। आत्मा स्वभाव से ज्ञानमात्र है, समस्त ज्ञेयों का ज्ञायक है। यह ज्ञायक स्वभाव ही चेतक हियरा अर्थात् चैतन्य हीरा है।

प्रश्न २ – चैतन्य हीरे का प्रकाश किसके अंतर में प्रकाशित होता है ?

उत्तर – जो ज्ञानी षट्कमल की ध्यान योग साधना से चैतन्य स्वभाव के अतीन्द्रिय आनंद अमृतरस का वेदन करता है और उसी में रमण करता है, विषयों का विष जिसके गल गया है, उसके अंतर में चैतन्य हीरे का प्रकाश प्रकाशित होता है अर्थात् ज्ञायक भाव जाग्रत रहता है।

प्रश्न ३ – षट्कमल का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – गुप्त कमल, नाभि कमल, हृदय कमल, कण्ठ कमल, मुख कमल और विंद कमल यह षट्कमल हैं। षट्कमल की साधना अंतरंग में ज्ञानज्योति को प्रकाशित करने का सूक्ष्म विज्ञान है। अध्यात्म साधना में क्रमिक वृद्धि एवं आत्म साधना की सिद्धि को उपलब्ध होना षट्कमल का अभिप्राय है। योग दर्शन में इनको षट्चक्र कहा गया है – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धाख्येय और आज्ञा चक्र।

प्रश्न ४ – ज्ञानी चैतन्य हीरा की चाह क्यों करता है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी जीव आत्म स्वरूप का अनुभवी होता है। रागादि भावों को दुःख रूप जानता है। पुण्य–पाप कर्मों से मुक्ति का मार्ग नहीं बनता यह संसार के कारण हैं जबकि ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञानी पराश्रय और कर्मों से मुक्त होकर आनंद परमानंद में रहना चाहता है इसलिये ज्ञानी चैतन्य हीरा की चाह करता है अर्थात् भावना भाता है।

प्रश्न ५ – सिद्धांत का सार क्या है ?

उत्तर – मैं आत्मा शुद्ध बुद्ध ज्ञायक स्वरूप परमात्मा हूँ, देह कर्मादि संयोग मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानना अनुभव करना सिद्धांत का सार है।

जीव जुदा पुद्गल जुदा, यही तत्त्व का सार।
और कछु व्याख्यान सो, इसका ही विस्तार॥

प्रश्न ६ – भयों का नाश करने में कौन समर्थ है ?

उत्तर – सम्यक्दृष्टि ज्ञानी अपने परमात्म सत्ता स्वरूप का अनुभव करता है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र की साधना में संलग्न रहता है। ऐसा सम्यक्दृष्टि ज्ञानी भयों का नाश करने में समर्थ है।

प्रश्न ७ – तरण विमान किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा स्वभाव से केवलज्ञानमयी परमात्म स्वरूप है। अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य स्वरूप अनंत चतुष्टयमयी आत्मा के स्वभाव को तरण विमान कहते हैं।

प्रश्न ८ – सर्व अर्थ की सिद्धि किसे होती है ?

उत्तर – जो ज्ञानी ज्ञान विज्ञान पूर्वक परमात्म सत्ता स्वरूप मुक्तिश्री के आनंद अमृतरस में रमण करते हैं, जिनके अंतर में ज्ञायक ज्ञान प्रकाश सदैव प्रकाशित रहता है उनको ही सर्व अर्थ की सिद्धि अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होती है।

५ – जिनेन्द विंद छन्द गाथा (फूलना क्र. ३२)

(**विषय :** नन्द पाँच, आत्म स्वरूप की महिमा)

परम पय परम परम जिननाह हो, परम भाव उवलद्धऊ ।
परमिस्टि इस्टि संदर्सियऊ, अप्पा परमप्प ममल न्यान सहकारं ॥ १ ॥

भावार्थ :– [हे आत्मन्! तुम] **(परम पय)** परम पद के धारी **(परम परम)** उत्कृष्ट श्रेष्ठ **(जिननाह हो)** जिननाथ हो **(परम भाव)** परम पारिणामिक भाव को **(उवलद्धऊ)** उपलब्ध करो **(अप्पा)** मैं आत्मा **(ममल न्यान)** ममल ज्ञानमयी **(परमप्प)** परमात्मा हूँ **(सहकारं)** ऐसा स्वीकार कर **(इस्टि)** प्रयोजनीय **(परमिस्टि)** परमेष्ठी स्वभाव का **(संदर्सियऊ)** दर्शन करो।

जं केवलि नंत नंत संदर्सिऊ, तं उवएसु नंत ममल अन्मोयह ।
भय विनस्य भव्य नंत नंत तं सहिऊ, कम्म षय मुक्ति गमन सहकारह ॥ २ ॥

भावार्थ :– (केवलि) श्री केवलज्ञानी परमात्मा **(जं)** जैसे [अपने] **(नंत नंत)** अनन्त चतुष्टयमयी स्वभाव को **(संदर्सिऊ)** देखते अर्थात् अनुभव करते हैं **(तं)** वैसे ही **(नंत)** अनन्त ज्ञानमयी **(ममल)** ममल स्वभाव की **(अन्मोयह)** अनुमोदना करने का **(उवएसु)** उपदेश देते हैं **(भव्य)** जो भव्य जीव **(नंत नंत)** अनन्त चतुष्टयमयी **(तं सहिऊ)** स्वभाव सहित होते हैं अर्थात् स्वभाव का श्रद्धान, ज्ञान, आचरण करते हैं [उनके] **(भय विनस्य)** भय विनस जाते हैं [यह साधना] **(कम्मषय)** कर्म क्षय और **(मुक्ति गमन)** मुक्ति को प्राप्त करने में **(सहकार)** सहकारी होती है।

जिनेंद विंद लोयलोय ऊर्ध सुद्ध उत्तयं ।
तं न्यान दिस्टि परम इस्टि परम भाव जलपियं ॥
तं कम्म षेउ मोष्य हेऊ भव्य लोय पोसियं ।
आनंद नंद चेयनंद परमनंद नंदितं ॥ ३ ॥

भावार्थ :– (जिनेंद) जिनेन्द्र परमात्मा **(विंद)** स्वानुभूति में लीन रहते हुए **(लोय लोय)** लोकालोक को जानते हैं [उनकी] **(ऊर्ध सुद्ध उत्तयं)** श्रेष्ठ शुद्ध दिव्य ध्वनि खिरती है [भगवान ने] **(परम इस्टि)** परम इष्ट **(परम)** श्रेष्ठ **(न्यान)** ज्ञान **(भाव)** स्वभाव **(तं)** को **(दिस्टि)** दृष्टि में लेने के लिये **(जल पियं)** कहा है [उपदेश दिया है, जिनेन्द्र भगवान के वचन] **(तं कम्म षेउ)** कर्मों को क्षय करने और **(मोष्य हेऊ)** मोक्ष की प्राप्ति में हेतु हैं **(लोय)** जगत के **(भव्य)** भव्य जीवों को **(नंद)** नन्द **(आनंद)** आनन्द **(चेयनंद परमनंद)** चिदानंद परमानंद से **(नंदितं) आनंदित करते हुए (पोसियं)** पोषित करने वाले हैं।

कमट्ठ गट्ठ तं अनिट्ठ ममल भाव छिन्नियं ।
तं सुद्ध न्यान सुद्ध ज्ञान नंतानंत दर्सियं ॥
तं राय दोस मिथ्य भाव सल्य भय निकंदनो ।
तं परम भाव परम उत्तु परम लष्य लष्यनो ॥ ४ ॥

भावार्थ :– [हे आत्मन्!] **(कमट्ठ)** आठ कर्मों के **(गट्ठ)** समूह **(तं अनिट्ठ)** अनिष्टकारी हैं [किन्तु] **(ममल भाव)** ममल स्वभाव में रहने से **(छिन्नियं)** क्षय हो जाते हैं, [ज्ञानी साधक] **(सुद्ध ज्ञान)** शुद्ध

ध्यान में **(नंतानंत)** अनन्त चतुष्टयमयी **(तं सुद्ध न्यान)** शुद्ध ज्ञान स्वभाव का **(दर्सियं)** दर्शन करते हैं [जिससे उनके] **(तं राय दोस)** राग द्वेष आदि **(मिथ्य भाव सल्य भय निकंदनो)** मिथ्याभाव शल्य और भय दूर हो जाते हैं [इसलिये] **(परम लष्य)** उत्कृष्ट लक्ष्य को **(लष्यनो)** प्राप्त करने हेतु **(तं परम भाव)** परम पारिणामिक भाव को **(परम उत्तु)** श्रेष्ठ कहा गया है।

अनंत रूव पर अभाव रूवतीत विक्तयं ।
सरूव रूव विक्त रूव तिक्त भय निरूपियं ।।
अन्यान भाव मन सुभाव मिच्छ भय निकंदनो ।
तं न्यान रूव ममल दिस्टि समल भाव विहंडनो ।। ५ ।।

भावार्थ :- **(अनंत रूव)** अनन्त चतुष्टयमयी स्वरूप में **(पर अभाव)** पर पदार्थों का अभाव है [और] **(रूवतीत)** समस्त रूपों से अतीत **(रूव)** स्वरूप **(विक्तयं)** अपने आपमें प्रगट है **(सरूव रूव)** स्वरूप ही अपना स्वरूप है, वह **(विक्त)** वर्तमान पर्याय में प्रगटता होता है, तब **(तिक्त भय)** समस्त भय छूट जाते हैं **(निरूपियं)** ऐसा जिनेन्द्र परमात्मा ने निरूपित किया है [स्वभाव के आश्रय से] **(अन्यान भाव)** रागादि अज्ञान भाव रूप **(मन सुभाव)** मन का स्वभाव **(मिच्छ भय निकंदनो)** मिथ्यात्व और भय दूर हो जाते हैं **(ममल)** त्रिकाल शुद्ध **(तं न्यान रूव)** ज्ञान स्वरूप पर दृष्टि रखने से **(समल भाव)** समस्त रागादि भाव **(विहंडनो)** खण्ड-खण्ड हो जाते हैं।

अन्यान भाव अनिस्ट रूप भय विनस्ट दिस्टियं ।
तं पर पर्जाव नंत थान नंत न्यान दर्सियं ।।
तं विषय इस्ट अनिस्ट दिस्टि ममल न्यान षंडनो ।
तं पर पर्जाव समल चित्त न्यान सहाव निकंदनो ।। ६ ।।

भावार्थ :- **(नंत न्यान)** अनंत ज्ञानमयी स्वभाव को **(दिस्टियं)** द्रव्य दृष्टि से **(दर्सियं)** देखो, इससे **(अनिस्ट रूव)** अनिष्टकारी **(अन्यान भाव)** अज्ञान भाव **(नंत थान)** अनंत भेद रूप **(तं पर पर्जाव)** पर पर्याय, और **(भय विनस्ट)** भय नष्ट हो जायेंगे **(तं विषय इस्ट)** पाँच इन्द्रियों के विषयों को इष्ट मानने वाली **(अनिस्ट दिस्टि)** अनिष्ट दृष्टि **(ममल न्यान षंडनो)** ममल ज्ञान स्वभाव के आश्रय से छूट जाती है **(तं पर पर्जाव)** और पर पर्यायों से **(समल चित्त)** होने वाली चित्त की मलिनता **(न्यान सहाव)** ज्ञान स्वभाव में रहने से **(निकंदनो)** दूर हो जाती है।

अनंत नंत न्यान दिस्टि मोह मय विहण्डनो ।
निसंक रूव ममल भाव कम्म तिविहि गालनो ।।
सरीर भाव मन सुभाव इन्द्रि भय निकंदनो ।
अतीन्द्रि भाव न्यान दिस्टि कम्म मल विहंडनो ।। ७ ।।

भावार्थ :- **(अनंत नंत)** अनंत अनंत **(न्यान दिस्टि)** ज्ञान स्वभाव की दृष्टि से **(मोह मय)** मोह मद **(विहंडनो)** चूर-चूर हो जाता है **(ममल भाव)** ममल स्वभाव के प्रति **(निसंक रूव)** निःशंक होने से **(कम्म तिविहि गालनो)** तीनों प्रकार के कर्म गल जाते हैं **(सरीर भाव)** शरीर से संबंधित भाव **(मन सुभाव)** मन का स्वभाव है, इससे तथा **(इन्द्रि)** इन्द्रिय विषयों से होने वाला **(भय)** भय **(निकंदनो)** दूर हो जाता है **(अतीन्द्रि)** इन्द्रियातीत **(न्यान भाव)** ज्ञान स्वभाव की **(दिस्टि)** दृष्टि से **(कम्म मल)** कर्म मल **(विहंडनो)** खण्ड-खण्ड हो जाते हैं।

तं रयन रूव रूव रूव अप्प रूव चिंतनं ।
आनंद नंद सुद्ध नंद परमानंद नंदिनं ॥
अनेय भेय अनिस्ट रूव पर पर्जाव मुक्तयं ।
तं ममल न्यान ममल झान सिद्धि सुह संपत्तयं ॥ ८ ॥

भावार्थ :– (रूव रूव रूव तं रयन) अपने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर्थात् रत्नत्रयमयी **(अप्प रूव चिंतनं)** आत्म स्वरूप का चिंतन करो, शुद्धात्म स्वरूप **(नंद आनंद)** नंद आनंद **(परमानंद)** परमानंद मयी **(सुद्ध)** शुद्ध है **(नंद)** इसी के आनंद में **(नंदिनं)** आनंदित रहने से **(अनेय भेय)** अनेक भेद वाली **(अनिस्ट रूव पर पर्जाव मुक्तयं)** अनिष्ट रूप पर पर्यायें छूट जायेंगी, और **(तं ममल न्यान)** ममल ज्ञान स्वभाव के **(ममल झान)** परम शुद्ध ध्यान में लीन होने पर **(सिद्धि सुह)** मोक्ष सुख की **(संपत्तयं)** सम्पत्ति प्राप्त होगी।

त्वं देव देव परम देव अप्प हियं चिंतनं ।
पर सुभाव अनिस्ट रूव अप्प सहाव निकन्दनं ॥
जो एय भेय अप्प सहाव तिअर्थ अर्थ जोयनं ।
सो पंच दिप्ति न्यान इस्टि मुक्ति पंथ सोहिनं ॥ ९ ॥

भावार्थ :–[हे आत्मन् !] **(त्वं)** तुम **(देव)** देवों के **(परम देव)** परम देव **(अप्प देव)** निज आत्म देव का **(हियं चितनं)** हृदय में चिंतन करो अर्थात् भावना भाओ **(अप्प सहाव)** आत्म स्वभाव के आश्रय से **(अनिस्ट रूव)** अनिष्टकारी **(पर सुभाव)** विभाव भाव **(निकंदनं)** दूर हो जाते हैं **(जो)** जो ज्ञानी **(एय भेय)** एक मात्र **(अर्थ)** प्रयोजनीय **(तिअर्थ)** रत्नत्रयमयी **(अप्प सहाव)** आत्म स्वभाव को **(जोयनं)** संजोते हैं **(सो)** वह **(इस्टि)** परम आराध्य **(दिप्ति)** दैदीप्यमान **(पंच)** पंचम **(न्यान)** केवलज्ञान स्वभाव के आश्रय से **(मुक्ति पंथ)** मुक्ति मार्ग का **(सोहिनं)** शोधन करते हैं।

अन्मोय न्यान गुन अनंत सुद्ध पंथ दर्सियं ।
तं सुद्ध भाव जिन सहाव विषय राग तिक्तयं ॥
सो भव्य लोय न्यान उत्तु ममल भाव जुत्तयं ।
सो कम्मु मुक्कु मुक्ति पंथ सिद्धि सुह सम्पत्तयं ॥ १० ॥

भावार्थ :– (न्यान) ज्ञान आदि **(अनंत गुन)** अनंत गुणोंमयी स्वभाव की **(अन्मोय)** अनुमोदना से **(सुद्ध पंथ दर्सियं)** निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है **(तं सुद्ध भाव)** शुद्ध भाव को ग्रहण कर **(जिन सहाव)** वीतराग स्वभाव में रहने से **(विषय राग तिक्तयं)** विषय और राग छूट जाता है [इसलिये] **(सो भव्य लोय)** जगत के भव्य जीवो ! [जो अपना] **(न्यान)** ज्ञानमयी **(ममल भाव)** ममल स्वभाव **(उत्तु)** जिनेन्द्र भगवान ने बतलाया है, इसकी **(जुत्तयं)** आराधना से संयुक्त रहो **(सो)** यही **(मुक्ति पंथ)** मोक्षमार्ग है, इस पर चलने से **(कम्मु मुक्कु)** कर्मों से मुक्त होकर **(सिद्धि सुह)** सिद्धि सुख की **(सम्पत्तयं)** संपत्ति प्राप्त होती है।

– घत्ता –

इय सहाव संजुत्तऊ, न्यान मई अनुरत्तऊ ।
न्यानेन न्यान आलम्बनऊ, परमप्पु सिद्धि संपत्तऊ ॥ ११ ॥

भावार्थ :– (इय) इस प्रकार **(सहाव संजुत्तऊ)** स्वभाव साधना से संयुक्त रहते हुए **(न्यानेन**

न्यान आलम्बनऊ) ज्ञान से ज्ञान का आलंबन लेकर **(न्यान मई)** ज्ञानमयी सत्ता स्वरूप में **(अनुरत्तऊ)** लीन होने से **(परमप्पु सिद्धि संपत्तऊ)** परमात्म पद की प्रगटता और सिद्धि की सम्पत्ति प्राप्त होती है।

जिनेन्द विंद छंद गाथा का सारांश

जिनेन्द विंद छंद गाथा, आचार्य प्रवर श्रीमद् जिन तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा रचित श्री भय षिपनिक ममल पाहुड़ जी ग्रन्थ की बत्तीसवीं फूलना है। इस फूलना में नंद, आनंद, चिदानंद, सहजानंद, परमानंद इन पाँच नंद की तथा आत्म स्वरूप की अद्वितीय महिमा का वर्णन किया गया है। जिनेन्द विंद का अर्थ है अपने जिनेन्द्र स्वरूप का अनुभव करना और छंद गाथा का अर्थ है यह फूलना छंद बद्ध रचना है।

आचार्य देव कहते हैं कि यह आत्मा स्वभाव से परमात्मा है, उत्कृष्ट और श्रेष्ठ पद का धारी है। स्वभाव के आश्रय पूर्वक स्वानुभव में परम पारिणामिक भाव प्रगट होता है। केवलज्ञानी परमात्मा अपने पूर्ण स्वानुभव में लीन रहते हुए भव्य जीवों को ममल स्वभाव की साधना का उपदेश देते हैं। उनके वचन, भय को क्षय करने वाले और मुक्ति गमन में सहकारी होते हैं।

भगवान की वाणी को स्वीकार कर आत्मार्थी भव्य जीव परम इष्ट ज्ञान स्वभाव पर दृष्टि रखता है और नंद आनंद में आनंदित रहता है। ज्ञान स्वभाव में रहने की ऐसी अपूर्व महिमा है कि – १. अनिष्टकारी आठ कर्मों के समूह छिन्न –भिन्न हो जाते हैं। २. शुद्ध ध्यान में ज्ञानमयी परमात्म स्वरूप झलकता है। ३. राग – द्वेष आदि मिथ्या भाव, शल्य और भय दूर हो जाते हैं। ४. विषयों की अनिष्ट दृष्टि नहीं रहती। ५. चित्त की समलता समाप्त हो जाती है। ६. मोह मद चूर – चूर हो जाता है। ७. शरीर से संबंधित भाव गल जाते हैं। ८. इन्द्रिय विषयों के निमित्त से उत्पन्न होने वाला भय मिट जाता है। ९. तीनों प्रकार के कर्म मल गल जाते हैं। १०. अनंत चतुष्टमयी स्वरूप प्रत्यक्ष अनुभूति में वर्तता है।

ऐसे महिमामयी स्वभाव को भूलकर जीव विभाव में रमता है। मन में होने वाले विकारों का रस लेता है, यह सब अज्ञान है। अज्ञान भाव जीव को अनंत दुःख के कारण हैं। जबकि ज्ञान स्वभाव अनंत सुख का कारण है।

रत्नत्रयमयी ज्ञान स्वभावी परमात्मा स्वयं आत्मा ही है। ऐसे अपने परमात्म स्वरूप का चिंतन और अनुभव आनंद की वृद्धि का कारण है। इससे समस्त दुःखदाई पर्यायें विला जाती हैं। एकमात्र अभेद स्वभाव की साधना ही मोक्ष का मार्ग है। भव्य जीव ज्ञान आदि अनंत गुणों की आराधना करता हुआ विषयों के राग और जगत के व्यामोह से ऊपर उठकर ममल स्वभाव में रमण करता है। इस पुरुषार्थ से वह कर्मों को क्षय कर सिद्धि के शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेता है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न १ – परम भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – शरीरादि पर संयोगों से विरक्ति और रागादि भावों से विमुखता पूर्वक ममल स्वभाव के आश्रय से परिणामों में जो निर्मलता और विशुद्धता प्रगट होती है उसे परम भाव कहते हैं।

प्रश्न २ – परम भाव की उपलब्धि कैसे होती है ?

उत्तर – पंच परमेष्ठीमयी शुद्धात्म स्वरूप परम तत्त्व है, परम जिन है, ऐसे वीतराग स्वभाव की दृष्टि और सत्पुरुषार्थ से परम भाव की उपलब्धि होती है।

प्रश्न ३ – पारिणामिक भाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो भाव कर्मों के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम की अपेक्षा नहीं रखता है, जो जीव का स्वभाव मात्र है उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।

प्रश्न ४ – सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – रागादि विभाव रूप पर्याय से उपयोग हटाकर ममल स्वभाव के श्रद्धान, ज्ञान, ध्यान में लीन होना सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करने का उपाय है।

प्रश्न ५ – आत्मानुभव का फल क्या है ?

उत्तर – वर्तमान जीवन में सुख शांति की उपलब्धि, कर्मों की निर्जरा और मुक्ति की प्राप्ति होना आत्मानुभव का फल है।

प्रश्न ६ – मोह को दूर करने का क्या उपाय है ?

उत्तर – प्रथम, तत्त्व को जिज्ञासा पूर्वक जानना, तत्त्व के रसिक बनना, शरीर को पड़ौसी मानना और आत्मा का अनुभवन करना मोह को दूर करने का उपाय है।

प्रश्न ७ – मोह रागादि भाव क्या हैं ?

उत्तर – मोह रागादि भाव मन में उत्पन्न होने वाले अज्ञान भाव हैं।

प्रश्न ८ – अज्ञान भाव अनिष्ट रूप क्यों हैं ?

उत्तर – अज्ञान भाव से जीव तीव्र कर्मों को बांधकर नरक निगोद आदि पर्यायों में जन्म–मरण करता हुआ भयानक कष्टों को भोगता है इसलिये अज्ञान भाव अनिष्ट रूप हैं।

प्रश्न ९ – अज्ञान भाव का नाश कैसे होता है ?

उत्तर – अनंत चतुष्टयमयी ममल स्वभाव के आश्रय पूर्वक ज्ञायक भाव में रहने से अज्ञान भाव का नाश होता है।

प्रश्न १०– परमात्मा के उपदेश की क्या महिमा है ?

उत्तर – जिनेन्द्र परमात्मा ने दिव्य ध्वनि में आत्मा परमात्मा की अनुमोदना करने का उपदेश दिया है। जिनेन्द्र भगवान का उपदेश भव्यजनों को आनंद परमानंद से पोषित करने वाला है। जिन वचनों के श्रद्धान पूर्वक ममल स्वभाव का आश्रय और अनुभव करने से राग द्वेषादि विभाव, शल्य, भय रूप परिणाम, अज्ञान भाव, इन्द्रिय विषय परिणाम तथा कर्मों के समूह क्षय हो जाते हैं। और अनंत ज्ञानमयी स्वरूप में लीन रहने से परमात्म पद सिद्धि मुक्ति की प्राप्ति होती है।

मैं शरीर हूं ऐसे देह में एकत्वपने के कारण यह जीव अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। मैं आत्मा हूं ऐसा सत्श्रद्धान करना, स्व - पर का यथार्थ निर्णय करना और सम्यक्चारित्र पूर्वक स्वरूपस्थ होने की साधना करना इसी में मनुष्यभव की सार्थकता है।

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

प्रथम वर्ष (परिचय)
देव दीप्ति गाथा से ध्यावहु फूलना तक

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) तत्वं च नन्द......................मउ।
(ख) श्री ममल पाहुड़ ग्रंथ की १४ फूलना............................रूप में लिखी गई है।
(ग) स्व स्वभाव पर दृष्टि रखना........................है।
(घ) जो अंग सर्वांग में..........................मयी स्वभाव है, इसे देखो।
(ङ) स्वभाव में लीन होने पर......................प्रगट होता है।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) ध्यावहू रे गुरु गुरह परम गुरु तिरे पार तारे। (ख) जिसके अंतर में नो अर्थात् ईषत् जिनेंद्र पर उत्पन्न हुआ।
(ग) देव दीप्ति गाथा में देव की महिमा बताई है, वह अंतरात्मा है।
(घ) शुद्धात्म तत्व नंद आनंदमयी चिदानंद स्वभावी है। (ङ) षट्कमल ध्यान करने से सूक्ष्म कर्म गल जायेंगे।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ X ५ = १०)

(क) ज्ञानी लोकालोक को कैसे जानते हैं ?(१) प्रत्यक्ष (२) अप्रत्यक्ष (३) परोक्ष (४) उक्त में कोई नहीं।
(ख) द्रव्य कितने होते हैं – (१) छह (२) नौ (३) सात (४) उक्त में कोई नहीं।
(ग) धर्म और कर्म का रहस्य है –(१) द्रव्यास्रव (२) पुण्यास्रव (३) भावास्रव (४) उक्त में कोई नहीं।
(घ) परमात्म पद का बोध जाग्रत होना.......की उपलब्धि है –
(१) सम्यक् (२) सम्यग्ज्ञान (३) क्षायिक भाव(४) पारिणामिक भाव
(ङ) विभाव भावों में तन्मय होने से उत्पन्न होते हैं –
(१) घातिया कर्म (२) शुभ कर्म (३) अशुभ कर्म (४) अकर्म

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ X ५ = १०)

स्तंभ – क		स्तंभ – ख
सिद्ध	–	सहाई
कम्मह कम्म	–	रूपातीत ध्यान
ध्यावहू रे	–	ममल पाहुड़
भयपिषनिक	–	गुरु
कर्म	–	पुद्‌गल

प्रश्न ५ – अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ४ X ५ = २०)

(क) शब्द विवान क्या है ? (ख) देव दीप्ति गाथा में किसे नमस्कार किया है ?
(ग) कर्म की उत्पत्ति में कारण कौन हैं ? (घ) परमात्म पद कैसे प्राप्त होता है ?
(ङ) भव संसार पार उतारने में कौन समर्थ है ? (अथवा) सूक्ष्म कर्म किसके गलते हैं ?

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ X ५ = ३०)

(१) कर्म किसे कहते हैं, कर्मों का क्या कार्य है? ये क्षय कैसे होते हैं ?
(२) कम्मह कम्म सहाई का क्या अर्थ हैं ?
(३) देव दीप्ति गाथा में किन्हीं दो गाथाओं का अर्थ लिखो। (४) परम पारिणामिक भाव के भाव सूत्र से क्या लाभ हैं ?
(५) श्री ममल पाहुड़ ग्रंथ लिखने का उद्‌देश्य क्या है ? (६) अरिहंत पद कब प्रगट होता है ?

प्रश्न ७ – दीघ्र उत्तरीय प्रश्न – (कोई एक) (अंक १ X १० = १०)

(क) देवदीप्ति फूलना अथवा ध्यावहू फूलना का सारांश लिखिये।

मॉडल एवं अभ्यास के प्रश्न

प्रथम वर्ष (परिचय)
धर्म दीप्ति गाथा से जिनेंद्र विंद छंद गाथा

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) धम्मु जु उत्तउ............।
(ख) .... प्रयोजनीय रत्नत्रय स्वरूप का वरण करते हैं।
(ग) ममल पद में रमण करने से............विला जाती हैं।
(घ) अर्क सुयं जिन.................. पउ।
(ङ) पंच परमेष्ठीमयी शुद्धात्मतत्व की अनुभूति............है।

प्रश्न २ –सत्य/असत्य कथन लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) रत्नत्रयमयी प्रयोजनीय पद ही समर्थ पद है।
(ख) अनंत ज्ञानमयी स्वभाव को कर्म दृष्टि से देखो।
(ग) अनंत चतुष्टमयी स्वरूप में पर पदार्थों का अभाव है।
(घ) ज्ञान स्वभाव की दृष्टि से कर्म मल क्षय हो जाते हैं।
(ङ) अनंतवीर्य स्वरूप अनंत चतुष्टमयी आत्मा के स्वभाव को कारण विमान कहते हैं।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) परम अमृत है– (१) कर्म (२) धर्म (३) शर्म (४) मर्म
(ख) पंच परमेष्ठी के वाचक मंत्र है – (१) ॐ (२) ह्रीं (३) श्रीं (४) अर्हं
(ङ) चैतन्य स्वभाव को उपमा दी गई है–(१) सोना (२) चांदी (३) लोहा (४) हीरा
(ग) मंत्र का ध्यान करने से अपने श्रेष्ठ पद शुद्धात्म स्वरूप में लीनता होती है–
(१) ओम् (२) श्रीं (३) अर्हं (४) ह्रीं।
(घ) ममल स्वभाव का प्रकाश होने पर उत्पन्न नहीं होती–
(१) कर्म प्रकृति (२) शल्य शंका (३) कषाय (४) मिथ्यात्व

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क		स्तंभ – ख
पाँचनंद	–	अर्थह जोउ
ममल रस	–	चेतक हियरा फूलना
तिअर्थ की महिमा	–	वेदक हियरा
अर्थ पय	–	जिनेंद विंद छंद गाथा
अर्थति	–	धर्म दीप्ति गाथा

प्रश्न ५ – अतिलघु उत्तरीय प्रश्न (३० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ४ x ५ = २०)

(क) परम भाव किसे कहते हैं ?
(ख) सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करने का क्या उपाय है ?
(घ) जन्म मरण का अभाव किसे कहते हैं ?
(ङ) जिनेंद्र परमात्मा ने अमृत रस किसे कहते हैं ? (अथवा) चेतक हियरा क्या है ?
(ग) धम्मु जु उत्तउ जिनवरहं' अर्थति जोउ। भय विनासु भवु जु मुनहु, ममल न्यान परलोउ का क्या भावार्थ है ?

प्रश्न ६ – लघु उत्तरीय प्रश्न (५० शब्दों में कोई पाँच) (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) सर्व अर्थ की सिद्धि किसे कहते हैं ?
(२) ओम, ह्रीं, श्रीं मंत्र का ध्यान करने से क्या लाभ है ?
(३) षट्कमल का अभिप्राय क्या है ?
(४) परमात्मा के उपदेशी की क्या महिमा है ?
(५) ज्ञान स्वभाव में रहने की अपूर्व महिमा जिनेंद विंद छंद गाथा के आधार पर बताइये।
(६) धर्म का आश्रय लेने से जीव को क्या उपलब्धियाँ होती है?

प्रश्न ७ – दीघ्र उत्तरीय प्रश्न – (कोई एक) (अंक १ x १० = १०)

(क) फूलना की कुछ पंक्तियाँ लिखते हुए धर्म दीप्ति गाथा, चेतक हियरा फूलना, जिनेंद विंद छंद गाथा में से किसी एक फूलना का सारांश लिखिए।

देव गुरु शास्त्र पूजा

१. देव वन्दना

सब घातिया का घात कर, निज लीन हुई जो आत्मा।
परिपूर्ण ज्ञानी वीतरागी, वह सकल परमात्मा ॥
जिनराज हैं वह जिन्हें आती, कभी पर की गंध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वंदना ॥ १ ॥

जिनवर वही प्रभु हैं वही, जो राग द्वेष विहीन हैं।
कहते जिनेश्वर उन्हीं को, निज रूप में जो लीन हैं॥
निर्दोष निष्कषाय जिनको, है करम का बन्ध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ २ ॥

सब घाति और अघाति आठों, कर्म जिनने क्षय किये।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान मय जिन, सर्वगुण प्रगटा लिये॥
वे सिद्ध परमातम प्रभु, स्व तत्त्व मय जहां द्वन्द ना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ३ ॥

हैं सिद्ध सर्व विशुद्ध निर्मल, तत्त्व मय जिनकी दशा।
जो हैं सदा विज्ञान घन, अमृत रसायन मय दशा ॥
ऐसे निकल परमात्म जिन, परिणति हुई निरंजना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ४ ॥

अरिहन्त हैं सर्वज्ञ चिन्मय, वीतराग जिनेश हैं।
लोकाग्रवासी सिद्ध जो, नित निरंजन परमेश हैं॥
यह देव हैं जिनका रहा, पर से कोई सम्बन्ध ना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ५ ॥

अरिहंत सिद्धादि कहे, व्यवहार से सत देव हैं।
परमार्थ सच्चा देव, निज शुद्धात्मा स्वयमेव है ॥
चैतन्य मय शुद्धात्मा में, राग का है रंग ना।
चेतनमयी सतदेव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ६ ॥

इस देह देवालय बसे, शुद्धात्मा को जान लो।
चेतन त्रिलोकी भूप, सच्चा देव यह पहिचान लो ॥

अरिहंत सम निज आत्मा, जहां योग की निस्पंदना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ७ ॥

जग मांहि सच्चे देव को तो, कोई विरले जानते।
जो भेद ज्ञानी हैं वही, निज रूप को पहिचानते ॥
सिद्धों सदृश निज आत्मा, जहां कर्म का है संग ना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ८ ॥

सत देव के शुभ नाम पर, जो अदेवों को पूजते।
वे मूढ़ रवि का उजाला तज, अंधेरे से जूझते ॥
वह धर्म विह्वल बंधी बेड़ी, कह रही थी चन्दना।
चेतनमयी सत देव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥ ९ ॥

जग जीव लौकिक स्वार्थ वश, तो कुदेवों को मानते।
अज्ञान भ्रम को बढ़ाते, चलनी से पानी छानते ॥
जग जीव खुद के साथ ही, इस विधि करें प्रवंचना।
चेतनमयी सतदेव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥१० ॥

सद्गुरू तारण-तरण कहते, जाग जाओ तुम स्वयं।
शुद्धात्मा को जानकर, सब मेट दो अज्ञान भ्रम ॥
सत देव ब्रह्मानंद मय, कर दे जगत की भंजना।
चेतनमयी सतदेव की, शत-शत करूं मैं वन्दना ॥११॥

जयमाल

निज चैतन्य स्वरूप में, पर का नहीं प्रवेश।
चिन्मय सत्ता का धनी, है सच्चा परमेश ॥ १ ॥

अरस अरूपी है सदा, शुद्धातम ध्रुव धाम।
निश्चय आतम देव को, शत-शत करूं प्रणाम ॥ २ ॥

अरिहन्त सिद्ध व्यवहार से, जानो सच्चे देव।
निश्चय सच्चा देव है, शुद्धातम स्वयमेव ॥ ३ ॥

वीतराग देवत्व पर, चेतन का अधिकार।
सिद्ध स्वरूपी आत्मा, स्वयं समय का सार ॥ ४ ॥

दर्शन ज्ञान अनन्त मय, वीरज सौख्य निधान।
पहिचानो निज रूप को, पाओ पद निर्वाण ॥ ५ ॥

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सही विकल्प चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

(क) सकल परमात्मा वे हैं जो................कर्मों का घात करके निज में लीन हो जाते हैं।

(अघातिया/घातिया)

(ख) सिद्ध परमात्मा के............कर्म क्षय हो जाते हैं।

(घातिया चार/घातिया अघातिया आठ)

(ग) निकल परमात्मा सदा....................हैं।

(ज्ञान घन/विज्ञान घन)

(घ) अरिहंत सर्वज्ञ चिन्मय हैं और सिद्ध...................हैं।

(मध्य लोक वासी/लोकाग्र वासी)

(ङ) लौकिक स्वार्थवश जग जीव..............को मानते हैं।

(देवों को/कुदेवों को)

प्रश्न २ – अति लघु उत्तरीय एवं लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) निज शुद्धात्मा किसके समान है ?

उत्तर – मेरा निज शुद्धात्मा स्वभाव से सिद्ध के समान है।

(ख) अरस, अरूपी, अस्पर्शी किसके विशेषण हैं ?

उत्तर – अरस, अरूपी, अस्पर्शी जीव द्रव्य के विशेषण हैं।

(ग) घातिया अघातिया कर्मों के क्षय से कौन से गुण प्रगट होते हैं ?

उत्तर – समकित दर्शन ज्ञान अगुरुलघु अवगाहना।
सूक्ष्म वीरजवान निराबाध गुण सिद्ध के ॥

अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अगुरुलघुत्व, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व, अनंत वीर्य, अव्याबाधत्व यह आठ गुण हैं, जो घातिया अघातिया कर्मों के क्षय से सिद्ध परमात्मा के प्रगट होते हैं।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) निकल परमात्मा कौन हैं ? उनकी क्या विशेषतायें हैं ? हम निकल परमात्मा कैसे बन सकते हैं ?

उत्तर – हैं सिद्ध सर्व विशुद्ध निर्मल, तत्त्व मय जिनकी दशा।
जो हैं सदा विज्ञान घन, अमृत रसायन मय दशा ॥

अर्थात् जिन्हें अपने आत्म स्वरूप की पूर्ण उपलब्धि हो चुकी है वे निकल परमात्मा अथवा सिद्ध हैं। सम्पूर्ण द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म का पूर्णतया अभाव हो जाने से पूर्ण निर्विकारी, आनन्द मय आत्मीक गुणों की प्राप्ति ही सिद्ध दशा है।

घातिया अघातिया कर्मों के अभाव रूप सम्यक्त्व आदि आठ गुणों का प्रगट होना उनकी विशेषता है। गृहस्थपना त्याग कर शुद्धोपयोग रूप मुनिधर्म धारण कर एक अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त

अखण्ड आत्म स्थिरता द्वारा समस्त घातिया और अघातिया कर्मों का अभाव हो जाने पर यह जीव सिद्ध हो जाता है।

(ख) सकल परमात्मा कौन हैं ? उनके कितने कर्मों का अभाव हुआ है और उन कर्मों के क्षय से कितने गुण प्रगट हुए हैं ?

उत्तर – सब घातिया का घात कर, निज लीन हुई जो आत्मा।
परिपूर्ण ज्ञानी वीतरागी, वह सकल परमात्मा ॥

अपने स्वभाव में पूर्ण लीनता के कारण जिनको ज्ञानावरण आदि चार घातिया कर्मों का अभाव हुआ है वे सकल परमात्मा अरिहंत परमेष्ठी हैं। घातिया कर्मों के अभाव से जो गुण प्रगट हुए हैं वे इस प्रकार हैं –

ज्ञानावरण के अभाव से – अनन्त ज्ञान/केवलज्ञान

दर्शनावरण के अभाव से – अनन्त दर्शन/केवलदर्शन

मोहनीय के अभाव से – अनन्त सुख/क्षायिक सम्यक्त्व

अंतराय के अभाव से – अनन्त वीर्य/अनन्त बल

ऐसे अनन्त चतुष्टय रूप चार गुण अर्थात् शुद्ध पर्याय प्रगट होती हैं। अरिहंत भगवान के छ्यालीस गुणों में से यह चार गुण आत्मा से संबंधित होने से उनके वास्तविक गुण हैं। शेष ४२ गुण अतिशय तथा विभूति होने से उनके लक्षण हैं।

इन कर्मों के अभाव होने से उनके सम्पूर्ण मोह राग द्वेष अज्ञान आदि विकारों का अभाव हुआ है तथा पूर्ण स्वरूप लीनता प्रगट हुई है। इस प्रकार अरिहंत (सकल परमात्मा) के सम्पूर्ण भाव कर्मों और चार द्रव्य कर्मों का अभाव होता है। शेष चार अघातिया कर्म और नो कर्म अभी विद्यमान रहते हैं इसलिये वे सकल परमात्मा हैं।

अट्ठसट्ठ तीरथ परिभमइ, मूढ़ा मरइ भमंतु।
अप्पा देउ ण वंदहि, घट महिं देव अणंदु – आणंदा रे ॥

अज्ञानी अड़सठ तीर्थों की यात्रा करता है, इधर-उधर भटकता हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता है किन्तु निजात्मा शुद्धात्मा भगवान की वंदना नहीं करता है। अपने ही घट में महान आनंदशाली देव है। हे आनंद को प्राप्त करने वाले ! अपने ही घट में महान आनंद शाली देव है।

(श्री महानंदि देव कृत आणंदा गाथा – ३)

२. गुरू स्तुति

अनुभूति में अपनी जिन्होंने, आत्म दर्शन कर लिया ।
समकित रवि को व्यक्त कर, मिथ्यात्व का तम क्षय किया ॥
रागादि रिपुओं पर विजय पा, कर दिये सबको शमन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ १ ॥

जिनके अचल सद्ज्ञान में, दिखता सतत् निज आत्मा ।
वे जानते हैं जगत में, हर आत्मा परमात्मा ॥
जो ज्ञान चारित लीन रहते, हैं सदा विज्ञान घन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ २ ॥

जिनको नहीं संसार की, अरु देह की कुछ वासना ।
जो विरत हैं नित भोग से, पर की जिन्हें है आस ना ॥
निर्ग्रन्थ तन इसलिये दिखता, है सदा निर्ग्रन्थ मन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ३ ॥

परित्याग जिनने कर दिया, दुर्ध्यान आरत रौद्र का ।
शुभ धर्म शुक्ल निहारते, धर ध्यान चिन्मय भद्र का ॥
जग जीव को सन्मार्ग दाता, इस तरह ज्यों रवि गगन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ४ ॥

उपवन का माली जिस तरह, पौधों में जल को सिंचता ।
मिट्टी को गीली आर्द्र कर, वह स्वच्छ जल को किंचता ॥
त्यों श्री गुरू उपदेश दे, सबको करें आतम मगन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ५ ॥

जो ज्ञान ध्यान तपस्विता मय, ग्रन्थ चेल विमुक्त हैं ।
निर्ग्रन्थ हैं निश्चेल हैं, सब बन्धनों से मुक्त हैं ॥
संस्कार जाति देह में, जिनका कभी जाता न मन ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ६ ॥

जो नाम अथवा काम वश, या अहं पूर्ति के लिये ।
धरते हैं केवल द्रव्यलिंग, वह पेट भरने के लिये ॥
ऐसे कुगुरू को दूर से तज, चलो ज्ञानी गुरु शरण ।
उन वीतरागी सद्गुरु को, नित नमन है नित नमन ॥ ७ ॥

सर्प अग्नि जल निमित से, एक ही भव जाय है ।
लेकिन कुगुरू की शरण से, भव भव महा दुःख पाय है ॥
काष्ठ नौका सम सुगुरु हैं, ज्ञान रवि तारण तरण ।
उन वीतरागी सद्गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ८ ॥

जग मांहि जितने भी कुगुरु, सब उपल नाव समान हैं।
भव सिंधु में डूबें डुबायें, जिन्हें भ्रम कुज्ञान है ॥
पर भावलिंगी सन्त करते, ज्ञान मय नित जागरण।
उन वीतरागी सद्‌गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥ ९ ॥

निस्पृह अकिंचन नित रहें, वे हैं सुगुरु व्यवहार से।
है अन्तरात्मा सद्‌गुरू, परमार्थ के निरधार से ॥
निज अन्तरात्मा है सदा, चैतन्य ज्योति निरावरण।
उन वीतरागी सद्‌गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥१०॥

निज अन्तरात्मा को जगालो, भेदज्ञान विधान से।
भय भ्रम सभी मिट जायेंगे, सद्‌गुरू सम्यग्ज्ञान से ॥
वह करे ब्रह्मानन्द मय, मिट जायेगा आवागमन।
उन वीतरागी सद्‌गुरू को, नित नमन है नित नमन ॥११॥

जयमाल

चेतन अरू पर द्रव्य का, है अनादि संयोग।
सद्‌गुरू के परिचय बिना, मिटे न भव का रोग ॥ १ ॥

आतम अनुभव के बिना, यह बहिरातम जीव।
सद्‌गुरू से होकर विमुख, जग में फिरे सदीव ॥ २ ॥

भेद ज्ञान कर जान लो, निज शुद्धातम रूप।
पर पुद्‌गल से भिन्न मैं, अविनाशी चिद्रूप ॥ ३ ॥

गुरू ज्ञान दीपक दिया, हुआ स्वयं का ज्ञान।
चिदानन्द मय आत्मा, मैं हूँ सिद्ध समान ॥ ४ ॥

ज्ञाता रहना ज्ञान मय, यही समय का सार।
सद्‌गुरू की यह देशना, करती भव से पार ॥ ५ ॥

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ - सत्य/असत्य कथन चुनिये -

(क) रागादि रिपुओं पर विजय पा कर दिये सबको शमन। (सत्य)

(ख) निर्ग्रन्थ तन इसलिये दिखता, है सदा सग्रन्थ मन। (असत्य)

(ग) कुगुरु की संगति से जीव भव-भव में महा दु:ख पाता है। (सत्य)

(घ) निज अंतरात्मा को भेदविज्ञान विधान से जाना जाता है। (सत्य)

(ङ) निस्पृह अकिंचन नित रहें वे हैं सुगुरु व्यवहार से।
है अंतरात्मा सद्‌गुरु स्वार्थ के निरधार से ॥ (असत्य)

प्रश्न २ – अति लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) संसार व देह की वासना किसे नहीं रहती ?

उत्तर – जो भोगों से विरत रहते हैं और पर की आस नहीं रखते ऐसे वीतरागी सद्गुरु को संसार व देह की वासना नहीं रहती।

(ख) चेल एवं निश्चेल से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – चेल अर्थात् वस्त्र तथा निश्चेल अर्थात् वस्त्र रहित। यही चेल एवं निश्चेल से तात्पर्य है।

(ग) चेतन और पर द्रव्य का संयोग कैसा है ?

उत्तर – चेतन और पर द्रव्य का संयोग संसारी अवस्था में अनादि काल से है।

(घ) आत्म अनुभव के बिना यह जीव क्या कहलाता है ?

उत्तर – आत्म अनुभव के बिना यह जीव बहिरात्मा कहलाता है।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) सद्गुरु और कुगुरु में क्या अंतर है ?

उत्तर – १. जिन्होंने अपनी अनुभूति में आत्म दर्शन कर सम्यक्त्व रवि को प्रकाशित किया व मिथ्यात्व रागादि रिपुओं (शत्रुओं) पर विजय पाई है वे वीतरागी सद्गुरु हैं। जो सदैव ज्ञान चारित्र में लीन रहकर ज्ञान घन हो गये हैं। जिन्हें संसार, देह, भोग और पर की आशा से विरक्ति है जो निर्ग्रन्थ हैं। दुर्ध्यान (आर्त रौद्र ध्यान) का जिन्होंने परित्याग कर धर्म, शुक्ल ध्यान को अंगीकार किया ऐसे वीतरागी, सन्मार्गी एवं वीतरागता के पोषक सद्गुरु हैं।

२. जो नाम अथवा कामवश या अहं पूर्ति के लिये या पेट भरने के लिये खोटा उपदेश देते हैं, वे पत्थर की नौका के समान संसार समुद्र में डुबाने वाले कुगुरु हैं। ऐसे कुगुरु की शरण से भव-भव तक महा दु:ख की प्राप्ति होती है।

(ख) ध्यान किसे कहते हैं ? उनके भेद-प्रभेद बताइये ?

उत्तर – स्वरूप की प्रवृत्ति के सद्भाव रूप एकाग्रता पूर्वक चिंता का निरोध ध्यान है। सामान्यत: चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहते हैं। 'एकाग्र चिंता निरोधो ध्यानम्'

ध्यान के भेद-प्रभेद

ध्यान के चार भेद हैं और उनके भी चार-चार प्रभेद हैं –

१. आर्त ध्यान – १. इष्ट वियोग २. अनिष्ट संयोग ३. पीड़ा चिंतवन ४. निदान बंध।

२. रौद्र ध्यान – १. हिंसानंदी २. मृषानंदी ३. चौर्यानंदी ४. परिग्रहानंदी।

३. धर्म ध्यान – १. आज्ञा विचय २. अपाय विचय ३. विपाक विचय ४. संस्थान विचय। संस्थान विचय के चार भेद – पदस्थ ध्यान, पिंडस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातीत ध्यान।

४. शुक्ल ध्यान – १. पृथक्त्व वितर्क वीचार २. एकत्व वितर्क अवीचार ३. सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति ४. व्युपरत क्रिया निवृत्ति।

३. जिनवाणी का सार

श्री जिनवर सर्वज्ञ प्रभु, परिपूर्ण ज्ञान मय लीन रहें ।
दिव्य ध्वनि खिरती फिर, ज्ञानी गणधर ग्रंथ विभाग करें ॥
जिससे निर्मित होता, श्रुत का, द्वादशांग भंडार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ १ ॥

पूर्वापर का विरोध होता, किंचित् न जिनवाणी में ।
वस्तु स्वरूप यथार्थ प्रकाशित, करती जग के प्राणी में ॥
निज पर को पहिचानो चेतन, यही मुक्ति का द्वार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ २ ॥

जिनवाणी मां सदा जगाती, ज्ञायक स्वयं महान हो ।
अपने को क्यों भूल रहे, तुम स्वयं सिद्ध भगवान हो ॥
देखो अपना ध्रुव स्वभाव, पर पर्यायों के पार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ ३ ॥

द्वादशांग का सार यही, मैं आतम ही परमातम हूँ ।
शरीरादि सब पर यह न्यारा, पूर्ण स्वयं शुद्धातम हूँ ॥
ध्रुव चैतन्य स्वभाव सदा ही, अविनाशी अविकार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ ४ ॥

बाह्य द्रव्य श्रुत जिनवाणी, कहलाती है व्यवहार से ।
स्वयं सुबुद्धि है जिनवाणी, निश्चय के निरधार से ॥
मुक्त सदा त्रय कुज्ञानों से, जहां न कर्म विकार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ ५ ॥

कण्ठ कमल आसन पर शोभित, बुद्धि प्रकाशित रहती है ।
पावन ज्ञानमयी श्रुत गंगा, सदा हृदय में बहती है ॥
शुद्ध भाव श्रुत मय जिनवाणी, मुक्ति का आधार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ ६ ॥

हे मां तव सुत कुन्द कुन्द, गुरू तारण तरण महान हैं ।
ज्ञानी जन निज आत्म ध्यान धर, पाते पद निर्वाण हैं ॥
आश्रय लो श्रुत ज्ञान भाव का, हो जाओ भव पार है ।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है ॥ ७ ॥

जड़ चेतन दोनों हैं न्यारे, यह जिनवर संदेश है।
तन में रहता भी निज आतम, ज्ञान मयी परमेश है॥
तत्त्व सार तो इतना ही है, अन्य कथन विस्तार है।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है॥ ८॥

मिथ्या बुद्धि का तम हरने, ज्ञान रवि हो सरस्वती।
सम्यक्ज्ञान करा दो मुझको, सुन लो अब मेरी विनती॥
अनेकान्त का सार समझ कर, हो जाऊँ भव पार है।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है॥ ९॥

स्याद्वाद की गंगा से, कुज्ञान मैल धुल जाता है।
ज्ञानी सम्यक् मति श्रुत बल से, केवल रवि प्रगटाता है॥
आत्म ज्ञान ही उपादेय है, बाकी जगत असार है।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है॥१०॥

भव दु:ख से भयभीत भविक जन, शरण तिहारी आते हैं।
स्वयं ज्ञान मय होकर वे, भव सिन्धु से तर जाते हैं॥
आत्म ज्ञान मय जिन वचनों की, महिमा अपरम्पार है।
स्वानुभूति ही सच्ची पूजा, जिनवाणी का सार है॥११॥

जयमाल

वीतराग जिन प्रभु का, यह सन्देश महान।
चिदानन्द चैतन्य तुम, शाश्वत सिद्ध समान॥ १॥

द्वादशांग मय जिन वचन, श्रुत महान विस्तार।
जीव जुदा पुद्गल जुदा, जिनवाणी का सार॥ २॥

करो सुबुद्धि जागरण, सम्यक् मति श्रुत ज्ञान।
निश्चय जिनवाणी कही, तारण तरण महान॥ ३॥

जिनवाणी की वन्दना, करूं त्रियोग सम्हार।
ब्रह्मानंद में लीन हो, हो जाऊं भव पार॥ ४॥

करो साधना ध्रौव्य की, बढ़े ज्ञान से ज्ञान।
ज्ञान मयी पूजा यहीं, पाओ पद निर्वाण॥ ५॥

अभ्यास के प्रश्न

प्रश्न १ – सही विकल्प चुनिये –

(क) जिनवाणी में किसका विरोध नहीं होता ?

(अ) पूर्वापर (ब) परस्पर (स) ऊपर

(ख) व्यवहार से जिनवाणी किसे कहते हैं ?

(अ) किताब (ब) द्रव्य श्रुत (स) भाव श्रुत

(ग) स्याद्वाद की गंगा में क्या धुल जाता है ?

(अ) ज्ञान (ब) कुज्ञान (स) सद्ज्ञान

(घ) हमें उपादेय क्या है ?

(अ) अज्ञान (ब) क्षयोपशम ज्ञान (स) आत्म ज्ञान

(ङ) जिनवाणी में किसकी चर्चा है ?

(अ) वीतरागता की (ब) सरागता की (स) संसार की

प्रश्न २ – लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) द्वादशांग का सार क्या है ?

उत्तर – जीव जुदा पुद्गल जुदा यही सम्पूर्ण द्वादशांग का सार है।

(ख) जड़ चेतन कैसे हैं ?

उत्तर – जिनवर का यह संदेश है कि जड़ चेतन न्यारे हैं। शरीर रूपी पुद्गल में रहते हुए भी आत्मा ज्ञानमयी है।

(ग) धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – धर्म आत्मा का शुद्ध स्वरूप है। धर्म वस्तु स्वभाव है। निर्विकल्प स्वानुभूति को धर्म कहते हैं।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) अनेकांत व स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनेकांत – प्रत्येक वस्तु में वस्तुपने को उत्पन्न करने वाली अस्तित्व–नास्तित्व आदि परस्पर विरुद्ध शक्तियों का एक साथ प्रकाशित होना अनेकांत है।

स्याद्वाद – वस्तु के अनेकांत स्वरूप को समझाने वाली कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं। स्याद् = कथंचित्, वाद = कथन।

जिनवाणी अनेकांतमयी स्याद्वाद ज्ञान की गंगा है।

(ख) द्वादशांग क्या है ? उनके बारह अंगों के नाम लिखो।

उत्तर – श्रुतज्ञान के सम्पूर्ण विकास को द्वादशांग कहते हैं। द्वादशांग (बारह अंग) निम्नलिखित हैं – १. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानांग ४. समवायांग ५. व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग ६. ज्ञातृधर्मकथांग ७. उपासकाध्ययनांग ८. अंत:कृतदशांग ९. अनुत्तरोपपादकांग १०. प्रश्नव्याकरणांग ११. विपाक सूत्रांग १२. दृष्टि वादांग।

४. धर्म का स्वरूप

चेतन अचेतन द्रव्य का, संयोग यह संसार है ।
निश्चय सु दृष्टि से निहारो, आत्मा अविकार है ।।
रागादि से निर्लिप्त ध्रुव का, करो सत्श्रद्धान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। १ ।।

आतम अनातम की परख ही, जगत में सत धर्म है ।
इस धर्म का आश्रय गहो, तब ही मिले शिव शर्म है ।।
जिनवर प्रभु कहते सदा ही, भेदज्ञान महान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। २ ।।

जितनी शुभाशुभ क्रियायें, सब हेतु हैं भव भ्रमण की ।
यह देशना है वीतरागी, गुरू तारण तरण की ।।
निज में रहो ध्रुव को गहो, धर लो निजातम ध्यान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। ३ ।।

चिन्मयी शुद्ध स्वभाव में, जो भविक जन लवलीन हों ।
वे अन्तरात्मा शुद्ध दृष्टि, सब दुखों से हीन हों ।।
पल में स्वयं वे प्राप्त करते, ज्ञान मय निर्वाण हैं ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। ४ ।।

जिसमें ठहरता न कभी, शुभ अशुभ राग विकार है ।
वह भेद से भ्रम से परे, पर्याय के भी पार है ।।
जो है वही सो है वही, निज स्वानुभूति प्रमाण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। ५ ।।

सब जगत कहता है, अहिंसा परम धर्म महान है ।
निश्चय अहिंसा का परंतु, किसी को न ज्ञान है ।।
शुभ क्रियाओं को धर्म माने, यही भ्रम अज्ञान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। ६ ।।

जग तो क्रिया के अंधेरे में, कैद करके धर्म को ।
भूला स्वयं की चेतना, नित बांधता है कर्म को ।।
विपरीत दृष्टि में न होता, कभी निज कल्याण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ।। ७ ।।

मठ में रहो लुंचन करो, पढ़ लो बहुत पीछी धरो ।
पर धर्म किंचित् नहीं होगा, और न भव से तरो ॥
सब राग द्वेष विकल्प तज, ध्रुव की करो पहिचान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥ ८ ॥

निज को स्वयं निज जान लो, पर को पराया मान लो ।
यह भेदज्ञान जहान में, निज धर्म है पहिचान लो ॥
इससे प्रगटता आत्मा में, अचल केवलज्ञान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥ ९ ॥

है धर्म वस्तु स्वभाव सच्चा, जिन प्रभु ने यह कहा ।
हर द्रव्य अपने स्व चतुष्टय में, सदा ही बस रहा ॥
आतम सदा ज्योतिर्मयी, परिपूर्ण सिद्ध समान है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥१०॥

आनंद मय रहना सदा, बस यही सच्चा धर्म है ।
इस धर्म शुद्ध स्वभाव से, निर्जरित हों सब कर्म हैं ॥
रत रहो ब्रह्मानंद में, पाओ परम निर्वाण है ।
सत धर्म शुद्ध स्वभाव अपना, चेतना गुणवान है ॥११॥

जयमाल

वीतरागता धर्म है, सब शास्त्रों का सार ।
लीन रहो निज में स्वयं, समझाते गुरू तार ॥ १ ॥

सत्य धर्म शिव पंथ है, निर्विकल्प निज भान ।
भेद ज्ञान कर जान लो, चेतन तत्त्व महान ॥ २ ॥

कथनी करनी एक हो, तभी मिले शिव धाम ।
संयम तप मय हो सदा, ज्ञायक आतम राम ॥ ३ ॥

धर्म - धर्म कहते सभी, करते रहते कर्म ।
अपने को जाने बिना, होता कभी न धर्म ॥ ४ ॥

निज पर की पहिचान कर, धर लो आतम ध्यान ।
इसी धर्म पथ पर चलो, पाओ पद निर्वाण ॥ ५ ॥

धर्म आत्मा का शुद्ध स्वभाव, वस्तु स्वभाव है। धर्म किसी शुभ-अशुभ क्रिया काण्ड में नहीं होता। शुभ - अशुभ पुण्य-पाप बंध का कारण हैं। धर्म तो निर्विकल्प शुद्धात्मानुभूति है, यही सत्य धर्म है जो आत्मा के समस्त दु:खों का अभाव कर परमात्म पद प्राप्त कराने वाला है। ऐसा महान सत्य धर्म आत्मानुभूति में सदा जयवंत हो।

प्रश्न १ – सत्य असत्य चुनिये –

(अ) यह संसार चेतन अचेतन द्रव्य के संयोग से बना है। (सत्य)

(ब) इस जगत में शुभ-अशुभ भावों की परख करना ही सत् धर्म है। (असत्य)

(स) जितनी शुभ क्रियाएँ हैं, वे सभी मोक्ष की प्राप्ति में कारण हैं। (असत्य)

(द) जो भव्य जन शुद्धात्मा के अनुभवी हैं, वे सभी अंतरात्मा हैं। (सत्य)

(इ) सत्य तो यह है कि धर्म निर्विकल्पता को कहते हैं। (सत्य)

प्रश्न २ – अति लघु एवं लघु उत्तरीय प्रश्न –

(क) आत्मा के कितने प्रकार हैं ? नाम लिखिये ?

उत्तर – आत्मा के तीन प्रकार कहे हैं – बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा।

(ख) पर्याय किसे कहते हैं ? पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – गुणों के परिणमन को पर्याय कहते हैं।

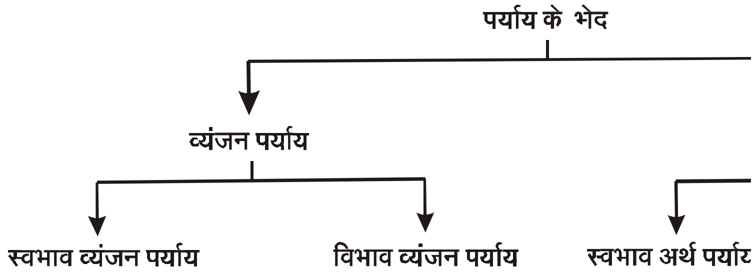

(ग) निश्चय अहिंसा किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा में राग-द्वेष आदि विकारी भावों की उत्पत्ति न होना निश्चय से अहिंसा है।

(घ) जीव किस प्रकार कर्मों का बंध करता है ?

उत्तर – अपने आत्म स्वभाव को भूलकर जीव शुभ-अशुभ क्रियाओं में राग-द्वेष आदि विभाव परिणाम करके नित्य नये कर्मों का बंध करता है।

(ङ) हमारी कथनी और करनी कैसी होना चाहिये ?

उत्तर – हमारी कथनी और करनी एक जैसी होना चाहिये तब ही मोक्ष का मार्ग मिलता है।

प्रश्न ३ – दीर्घ उत्तरीय प्रश्न –

(क) 'हर द्रव्य अपने स्वचतुष्टय में सदा ही बस रहा' पंक्ति में स्वचतुष्टय क्या है ? स्पष्ट करें।

उत्तर– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को चतुष्टय कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सदा अपने स्वचतुष्टय में रहते हैं। प्रत्येक द्रव्य की सत्ता स्वचतुष्टय अर्थात् स्व द्रव्य, स्व क्षेत्र, स्व काल, स्व भाव तक ही होती है। इसे द्रव्य का स्वचतुष्टय कहते हैं।

(ख) वास्तविक धर्म का स्वरूप क्या है ? स्पष्ट करें।

उत्तर – 'वत्थु सहावो धम्मो' वस्तु का स्वभाव धर्म है। आत्मा के शुद्ध स्वभाव को धर्म कहते हैं। धर्म किसी शुभ–अशुभ क्रिया से नहीं होता। जैसे– द्रव्यलिंग धारण करके मठ में रहना, पीछी कमंडल धारण करना, ज्योतिष विद्यादि का उपदेश देना, तीर्थयात्रा, व्रत तप आदि शुभ या अशुभ क्रियायें है इनसे धर्म नहीं होता। शुभ क्रियायें पुण्य बंध की तथा अशुभ क्रियायें पाप बंध की कारण हैं। वास्तव में सच्चा धर्म तो निर्विकल्प शुद्धात्मानुभूति है। यही सत्य धर्म, जीव के समस्त दु:खों का अभाव कर परमात्म पद प्राप्त कराने वाला है।

विद्या की महिमा

विद्या समस्त गुणों की खान है।
विद्या और धन बांटने से बढ़ता है।
विद्या धन को कोई नहीं छीन सकता।
विनम्रता बिना विद्या कार्यकारी नहीं है।
विद्या से रहित मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।
विद्यावान व्यक्ति धनवानों का भी धनवान होता है।
विद्या से युक्त व्यक्ति को कोई ठग नहीं बना सकता।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

प्रथम वर्ष (प्रवेश)

प्रथम प्रश्न पत्र – ज्ञान विज्ञान भाग – १, २

समय –३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जिन्हें .... नामकर्म की पुण्य प्रकृति का उदय होता है, वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

(ख) सात व्यसनों के त्यागपूर्वक .... क्रियाओं का पालन तारण पंथ का मूलाचार है।

(ग) जो पदार्थ सेवन करने योग्य न हों, वे .... कहलाते हैं।

(घ) आचार्य श्री जिन तारण स्वामी ने .... क्रांति करके जीवों पर उपकार किया है।

(ङ) निज अंतरात्मा सच्चा .... है।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) जिन शास्त्रों में त्रेसठ शलाका पुरुषों की जीवन गाथा हो, उसे प्रथमानुयोग कहते हैं।

(ख) निज शत्रु जो घर माँहि आवे, अपमान वाको कीजिये।

(ग) पंडित पूजा सारमत का दूसरा ग्रंथ है। (घ) तीर्थंकर अनेक होते हैं।

(ङ) मायाचारी, परिग्रह, मूर्च्छा, मिथ्या मार्ग का उपदेश आदि तिर्यंचगति का कारण है।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
संसारी और मुक्त	ऋषभनाथ
स्वाद लेना और बोलना	सप्त व्यसन
चोरी, शिकार, मांस, शराब	जीव के भेद
मरुदेवी, नाभिराय	७२ वर्ष
महावीर	रसना इंद्रिय

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) प्राण होते हैं – (१) बीस (२) तीस (३) चालीस (४) दस

(ख) ७५ गुणों में सम्मिलित हैं – (१) परमेष्ठी (२) तीर्थंकर (३) कामदेव (४) तिर्यंच

(ग) करणानुयोग का ग्रंथ है – (१) चौबीसठाणा (२) महापुराण (३) श्रावकाचार (४) ममलपाहुड़

(घ) विदेह क्षेत्र में नहीं होता – (१) पंचम काल (२) षट्काल परिवर्तन (३) २४ तीर्थंकर (४) चौथा काल

(ङ) तप करने से होती है – (१) मुक्ति (२) कर्म निर्जरा (३) क्षीणकाया (४) स्वर्ग

प्रश्न ५ – लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (कोई पाँच) (अंक ४ x ५ = २०)

(१) संसार में कितने और कौन–कौन से रत्न हैं ? उनका क्या करना चाहिये ?

(२) द्रव्यानुयोग की परिभाषा लिखकर उदाहरण बताइये।

(३) चौदह ग्रंथों के नाम लिखिये। (४) तत्त्व मंगल के अनुसार गुरु का क्या स्वरूप है, लिखिये ?

(५) अभक्ष्य किसे कहते हैं ? भेद सहित बताइये। (६) सैनी पंचेद्रिय किसे कहते हैं ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) रत्नत्रय की साधना करने का क्या आशय है ? (२) तारण पंथ का मूलाचार क्या है ? स्पष्ट कीजिये।

(३) तीर्थंकर और भगवान में क्या अंतर है ? (४) आचार्य तारण स्वामी जी ने पूजा का क्या स्वरूप बताया है ?

(५) रात्रि भोजन का त्याग क्यों करना चाहिये ? (६) षटावश्यक में निश्चय–व्यवहार रूप कथन का क्या आशय है ?

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ x १० = १०)

(अ) टिप्पणी लिखें – (१) सदाचार (२) गतियाँ (अथवा)

(ब) आध्यात्मिक क्रांतिकारी संत तारण तरण विषय पर निबंध लिखिये।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

प्रथम वर्ष (प्रवेश)

द्वितीय प्रश्न पत्र – श्री मालारोहण जी

समय – ३ घंटा पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) श्री जिन तारण स्वामी जी ने श्री मालारोहण जी ग्रंथ में .... का प्रतिपादन किया है।

(ख) ॐ मंत्र में .... समाहित हैं। (ग) तत्त्व निर्णय हेतु .... तत्त्व हैं।

(घ) धर्म के स्वरूप को नहीं जानना .... शल्य है। (ङ) न्यानं गुनं चरनस्य सुद्धस्य .... तत्त्वं।

प्रश्न २ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ X ५ = १०)

(क) वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। (ख) श्री मालारोहण षट् आवश्यक का यथार्थ स्वरूप बताता है।

(ग) पाठ आदि शुद्ध पढ़ते हुए अर्थ को गलत समझना उभयाचार है।

(घ) निश्चय से मैं अनेक हूँ, दर्शन ज्ञानमय अरूपी हूँ। (ङ) जे धर्म लीना गुन चेतनेत्वं, ते सुष्य हीना जिन सुद्ध दिस्टी।

प्रश्न ३ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ X ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
शंका कांक्षा	षट् आवश्यक
ऊमर कठूमर	गुणव्रत
प्रतिक्रमण	पंच उदम्बर
दिग्व्रत	सम्यक्ज्ञान के अंग
उपधानाचार, विनयाचार	सम्यक्दर्शन के दोष

प्रश्न ४ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ X ५ = १०)

(क) कुधर्म है – (१) मिथ्यात्व (२) अज्ञान (३) अनायतन (४) सम्यक्त्व

(ख) सिद्ध के ८ गुण में शामिल नहीं है– (१) प्रभावना (२) दर्शन (३) ज्ञान (४) वीर्यत्व

(ग) दृष्टि का विषय है – (१) पदार्थ (२) ज्ञान (३) तत्त्व (४) अस्तिकाय

(घ) काया प्रमानं त्वं – (१) शरीरं (२) आत्मनं (३) ब्रह्मरूपं (४) स्वरूपं

(ङ) आत्मा का कौन सा लक्षण धर्म है – (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चेतना (४) वीर्य

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ३० शब्दों में लिखिये – (अंक ४ X ५ = २०)

(१) किसी एक गाथा का शुद्ध रूप लिखकर उसका अर्थ स्पष्ट कीजिए ?

(२) पंक्तियाँ पूर्ण कीजिए – (क) संमिक्त सुद्धं .... षिम उत्तमाध्यं। (ख) जे सप्त तत्त्वं .... सुद्धात्म तत्त्वं।

(३) आत्मा अनंत गुणों का धारी है फिर यह निर्बल, पराश्रित, पराधीन क्यों रहता है ?

(४) परिभाषा लिखिये – शल्य, संसार, सम्यक्दर्शन, अनंत चतुष्टय। (५) केवलज्ञान की क्या विशेषता है ?

(६) रागादि भाव और पुण्य–पाप का आत्मा से क्या संबंध है ?

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ X ५ = ३०)

(१) गाथा ७ के आधार पर आत्म स्वरूप की महिमा और आत्म दर्शन की प्रेरणा का स्वरूप लिखिए।

(२) 'शुद्ध सम्यक्त्व की गुणमाला गूंथने का पुरुषार्थ करो' इसका क्या अभिप्राय है ?

(३) तत्त्व, पदार्थ, द्रव्य, अस्तिकाय को स्पष्ट कर भेद–प्रभेद लिखिए।

(४) ७५ गुण कौन से हैं, भेद सहित स्पष्ट कीजिए ? (५) मूलगुण किसे कहते हैं ? नाम सहित वर्णन कीजिए।

(६) जैनाचार्यों ने धर्म के संबंध में क्या देशना दी है ?

प्रश्न ७ – किसी एक प्रश्न का उत्तर लगभग २०० शब्दों में लिखिये – (अंक १ X १० = १०)

(अ) विवेचन कीजिए – सम्यग्दर्शन, प्रतिमा एवं व्रताचरण (अथवा)

(ब) सम्यक्दृष्टि साधक का कर्तव्य एवं 'काया प्रमानं त्वं ब्रह्मरूपं' को स्पष्ट कीजिए।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

प्रथम वर्ष (प्रवेश)

तृतीय प्रश्न पत्र – छहढाला

समय – ३ घंटा | पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) छहढाला में कुल .... पद हैं।

(ख) तीव्र कर्मोदय में युक्त न होकर जीव पुरुषार्थ द्वारा मंद कषाय रूप परिणमित हो, वह .... है।

(ग) सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन .... सो द्विविध विचारो।

(घ) देह जीव को एक गिनै .... तत्त्व मुधा है।

(ङ) पूर्ण निराकुल .... की प्राप्ति अर्थात् जीव की संपूर्ण शुद्धता वह मोक्ष का स्वरूप है।

प्रश्न २ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) नरक की भूमि नहीं है – (१) पंकप्रभा (२) माधवी (३) धूमप्रभा (४) बालुकाप्रभा

(ख) भवनवासी, व्यंतर व ज्योतिष होते हैं – (१) सच्चे देव (२) वैमानिक (३) पशु (४) देव

(ग) जो जीव निगोद से निकलकर अन्य पर्याय को प्राप्त करके पुनः निगोद में उत्पन्न होते हैं, उन्हें कहते हैं – (१) नित्यनिगोद (२) नारकी (३) मनुष्य (४) इतर निगोद

(घ) एकेंद्रिय के भेद हैं – (१) दस (२) ग्यारह (३) तीन (४) पाँच

(ङ) आत्म स्वरूप को भूलकर मोह में फँसना है – (१) जीवन (२) मरण (३) परिभ्रमण (४) मोक्ष

प्रश्न ३ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) संसार परिभ्रमण का मुख्य कारण मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है।

(ख) प्रयोजन भूत केवल आत्मा है। (ग) परद्रव्य जीव को लाभ–हानि पहुँचा सकते हैं।

(घ) त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा करने और फूल, फल, तेल चढ़ाने से धर्म होता है।

(ङ) मैं सुखी हूँ, मैं गरीब हूँ, ये धन सम्पत्ति मेरे हैं, ये स्त्री पुत्रादि मेरे हैं, ऐसी मान्यता।

प्रश्न ४ – एक शब्द में उत्तर लिखें – (अंक २ x ५ = १०)

(क) आत्महित किसमें है ? (ख) धर्म का मूल क्या है ? (ग) नय के कितने भेद हैं ?

(घ) मोक्ष का मार्ग क्या है ? (ङ) धर्म से दूर रहना/रखना क्या है ?

प्रश्न ५ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लिखिये। (अंक ४ x ५ = २०)

(१) गुणस्थान की परिभाषा एवं भेद लिखें। (२) 'मोक्षमहल की परथम सीढ़ी' का भावार्थ लिखें।

(३) तीसरी ढाल का कोई १ छंद अर्थ सहित लिखें। (४) उपयोग क्या है ? भेद सहित स्पष्ट कीजिए।

(५) पंक्तियाँ पूर्ण करें – (क) एकान्तवाद .... देन त्रास (ख) जीव अजीव .... उर आनो।

(६) सात तत्त्वों का स्वरूप लिखकर किन्हीं दो तत्त्वों का विपरीत श्रद्धान बताइये।

प्रश्न ६ – (क) अंतर बताइये – (कोई दो) (१) ग्रहीत–अग्रहीत मिथ्यात्व (२) त्रस स्थावर (३) संज्ञी असंज्ञी जीव (४) निर्जरा और मोक्ष तत्त्व का विपरीत श्रद्धान (अंक ६ x ५ = ३०)

(ख) कोई तीन परिभाषाएँ लिखिए – कुगुरु, प्रयोजन भूत तत्त्व, अग्रहीत मिथ्याचारित्र, कुधर्म, निश्चय सम्यक्त्व

(ग) अंतरात्मा, बहिरात्मा का स्वरूप स्पष्ट कीजिए। (घ) परमात्मा का लक्षण, भेद सहित बताइये।

(ङ) छह द्रव्यों के स्वरूप को तीसरी ढाल के आधार पर स्पष्ट कीजिये। (अथवा)
सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न ७ – (क) हेय ज्ञेय उपादेय पर टिप्पणी लिखिए। (अंक १ x १० = १०)

(ख) नरकों के दुःखों का वर्णन पहली ढाल के आधार पर कीजिए। (अथवा)
दूसरी ढाल का सारांश अपने शब्दों में करते हुए रुचिकर छंद लिखिए।

मॉडल प्रश्न पत्र

श्री तारण तरण मुक्त महाविद्यालय

प्रथम वर्ष (प्रवेश)

चतुर्थ प्रश्न पत्र – ममलपाहुड़, देव गुरु शास्त्र पूजा

समय – ३ घंटा | पूर्णांक – १००

नोट : सभी प्रश्न हल करना अनिवार्य है। शुद्ध स्पष्ट लेखन पर अंक दिए जावेंगे।

प्रश्न १ – सत्य/असत्य कथन चुनकर लिखिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) तत्त्वं च नंद आनन्द मउ, चेयननन्द सुभाउ। (ख) दिप्त दिप्ति तं दिस्ट समु, दिप्त दिस्ट सम भेउ।

(ग) कर्म जीव द्रव्य है। (घ) आत्मा शुद्ध परम श्रेष्ठ जिनस्वरूप है।

(ङ) परम देव परमात्मा जो अनंत चतुष्टय सहित अपने ज्ञान स्वभाव में लीन हैं।

प्रश्न २ – रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए – (अंक २ x ५ = १०)

(क) परम देउ .... सहियो, नन्तानंत सुदिट्ठी। (ख) .... परोक्ष रूप से लोकालोक को जानते हैं।

(ग) परम .... भाव ही परम धर्म में सहकारी है। (घ) .... भाव संसार के बीज हैं।

(ङ) रमने रमियो ...., भय सल्य संक विलयंतु।

प्रश्न ३ – सही विकल्प चुनकर लिखिये – (अंक २ x ५ = १०)

(क) अरस, अरूपी, अस्पर्शी विशेषण हैं– (१) अजीव (२) पुद्गल (३) जीव द्रव्य (४) धर्म

(ख) घातिया–अघातिया का क्षय होता है – (१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) आचार्य (४) साधु

(ग) ध्यान का भेद नहीं है – (१) आर्त (२) रौद्र (३) धर्म (४) कर्म

(घ) चेतन अरु पर द्रव्य का है............ संयोग – (१) आज का (२) कल का (३) अनादि का (४) आदि का

(ङ) सकल परमात्मा के किन कर्मों का घात होता है – (१) घातिया (२) वेदनीय (३) अघातिया (४) मोहनीय

प्रश्न ४ – सही जोड़ी बनाइये – (अंक २ x ५ = १०)

स्तंभ – क	स्तंभ – ख
अरिहंत हैं	निकल परमात्मा
सर्व विशुद्ध निर्मल	सर्वज्ञ चिन्मय
सकल परमात्मा	वीतरागी सद्गुरु
निर्ग्रन्थ निश्चेल	कुगुरु
उपलनाव	अरिहंत परमेष्ठी

प्रश्न ५ – (क) सद्गुरु और कुगुरु में अंतर बताइये। (अंक ४ x ५ = २०)

(ख) कोई दो परिभाषाएँ संक्षिप्त में लिखिए – ध्यान, सकल परमात्मा, निकल परमात्मा

(ग) पंक्तियाँ पूर्ण कीजिए – (१) निस्पृह अकिंचन .... नित नमन। (२) अरिहंत हैं .... मैं वंदना।

(घ) निकल परमात्मा की विशेषताएँ लिखकर बताइये कि हम निकल परमात्मा कैसे बन सकते हैं ?

(ङ) घातिया–अघातिया कर्मों के क्षय से कौन से गुण प्रगट होते हैं ? (अथवा)
ध्यान के भेद–प्रभेद लिखिए।

प्रश्न ६ – किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लगभग ५० शब्दों में दीजिये – (अंक ६ x ५ = ३०)

(१) धर्म दीप्ति गाथा की चार पंक्तियाँ लिखकर अर्थ बताइये।

(२) आस्रव और बंध तत्त्व को स्पष्ट कीजिए।

(३) कम्मह कम्म सहाई का अर्थ लिखकर कर्म का स्वरूप गाथा के आधार पर लिखिए।

(४) भावार्थ लिखिए – धरम धम्मु परमप्पय सहियो, परम भाउ उवलद्धी।
परम निरंजनु अंजन रहिओ, ममल भाव सिव सिद्धी ॥

(५) आचार्य श्री जिन तारण स्वामी का ममलपाहुड़ ग्रंथ कहने का क्या उद्देश्य है ? विवेचन कीजिये।

(६) देव दिप्ति गाथा की किन्हीं चार पंक्तियों को शुद्ध रूप में लिखिये।

प्रश्न ७ – धर्म दिप्ति, ध्यावहु फूलना में से किसी एक का सारांश लिखिये। (अंक १ x १० = १०)